महाकविभारविप्रणीतम्

किरातार्जुनीयम्

[प्रथमः सर्गः]

व्याख्याकार

डॉ० कृष्णकुमार

एम० ए०, पी-एच० डी०, साहित्याचार्य

साहित्य भण्डार

शिक्षा साहित्य के मुद्रक एवं प्रकाशक

सुभाष बाज़ार, मेरठ-२५०००२

प्रकाशक :

रतिराम शास्त्री

अध्यक्ष :

साहित्य भण्डार,

सुभाष बाजार, मेरठ–२

दूरभाष : ५१८७५४

• नवीन संस्करण २००१

मूल्य : पच्चीस रुपये [२५.००]

मुद्रक :-

दुर्गा ऑफसेट प्रिन्टर्स

मेरठ ✆ 765142

निवेदन

महाकवि भारवि की वाणी निश्चय ही नारिकेलसम्मित है। इसके रस का आस्वादन करने के लिये पाठकों को घोर परिश्रम करना पड़ेगा। परन्तु एक बार कठोर परिश्रम के पश्चात् उचित मार्ग को पा जाने पर उसके सरस और स्वादिष्ट फल का आस्वादन उनके लिए अत्यधिक रोचक होगा।

महाकवि के किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य की व्याख्या संस्कृत के अनेक आचार्यों ने की है। हिन्दी भाषा में भी इसकी अनेक टीकायें हुई हैं। तब भी महाकवि के अर्थ के गौरव के सम्बन्ध में कुछ न कुछ कहने के लिए अवशिष्ट रह ही गया है। प्रस्तुत व्याख्या में प्रथम सर्ग की विस्तृत व्याख्या है। व्याख्याकार ने यह प्रयत्न किया है कि महाकवि के अभिप्राय को विशद रूप से पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया जावे। व्याख्याकार का अभिप्राय है कि महाकवि की वाणी के रसास्वादन कें इच्छुक तथा हिन्दी के माध्यम सें संस्कृत भाषा का अध्ययन करने वाले छात्र इस काव्य में सरलता से प्रवेश करके इसको समझ सकें। छात्रों के सम्मुख आने वाली कठिनाइयों का समाधान इस व्याख्या में करने का प्रयास किया गया है।

इस व्याख्या में पूर्ववर्ती अनेक टीकाओं और समालोचनाओं का मर्म सम्मिलित है, अतः उन सभी के प्रति व्याख्याकार कृतज्ञ और विनम्र है। प्रस्तुत व्याख्या में व्याख्याकार ने भारवि के काव्यों के अर्थों को स्पष्ट करने के लिये पदों के अन्वय, संस्कृत-व्याख्या, शब्दार्थ, हिन्दी अर्थ, भाव, व्याकरण सम्बन्धी विशेषताओं, छन्द-अलङ्कार, राजनीति के तत्वों, आदि को देने के साथ प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ की प्राचीन संस्कृत टीका घण्टापथ को भी दिया है। जिससे किसी पद के अर्थ को समझने में पाठक को कोई असुविधा या भ्रम नहीं रहेगा। श्लोकों की व्याख्या करने से पहले लेखक ने महाकवि भारवि के सम्बन्ध में उत्पन्न होने वाले सभी आलोचनात्मक प्रश्नों का समाधान करने का प्रयत्न किया है।

प्रस्तुत व्याख्या को लिखने में व्याख्याकार को साहित्य भण्डार, मेरठ के व्यवस्थापक श्री रतिराम शास्त्री से प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है। लेखक उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता है।

'किरातार्जुनीयम्' के प्रथम सर्ग की इस व्याख्या से विद्यार्थी और सहृदय जन निश्चित ही लाभान्वित होंगे; व्याख्याकार को इसका पूर्ण विश्वास है।

—कृष्णकुमार

विषय-क्रम

भूमिका

काव्य की व्याख्या को प्रारम्भ करने से पहले कवि और काव्य का परिचय देना और उनकी विशेषताओं के सम्बन्ध में कुछ कहना उपयोगी होता है। इस कारण भारवि के काव्य की व्याख्या प्रस्तुत करने से पूर्व उनके और उनके काव्य का परिचय देकर उनकी विशेषताओं के सम्बन्ध में कुछ लिखा जा रहा है।

१. संस्कृत-काव्यकारों में भारवि का महत्व

संस्कृत-साहित्य के समालोचनात्मक इतिहास में महाकाव्यकारों में भारवि को प्रथम स्थान दिया जाता है। संस्कृत महाकाव्यों में रचना-कौशल और भावाभिव्यञ्जना की उत्कृष्टता के लिये दो त्रयी प्रसिद्ध हैं—लघुत्रयी और बृहत्त्रयी। लघुत्रयी में कालिदास के तीन काव्यों—'रघुवंश', 'कुमारसम्भव' और 'मेघदूत' की गणना की जाती है। बृहत्त्रयी में भारवि का 'किरातार्जुनीयम्', माघ का 'शिशुपालवध' और हर्ष का 'नैषधीयचरितम्' सम्मिलित किये जाते हैं। बृहत्त्रयी में सम्मिलित महाकाव्यों में भारवि को सबसे पहला स्थान प्राप्त है।

भारवि से पूर्व संस्कृत-काव्यों में भावपक्ष को अधिक महत्व दिया गया था। परन्तु भारवि ने उस काव्यधारा को एक नया मोड़ प्रदान किया। उन्होंने काव्य की रचना में भावाभिव्यञ्जना के साथ-साथ कलापक्ष को भी महत्व प्रदान किया। काव्य के दो पक्ष होते हैं—भावपक्ष और कलापक्ष। भारवि का मत था कि कविता-कामिनी में केवल भावात्मक सौन्दर्य ही पर्याप्त नहीं है। उसको सुन्दर अलङ्कारों में सजाया जाना भी आवश्यक है। भारवि ने अपने काव्य में इस मान्यता को समुचित रूप से निभाया है। उनके काव्य में एक ओर सुन्दर भावों की अभिव्यक्ति है और पदों के अर्थों का गाम्भीर्य है, तो दूसरी ओर विविध मनोरम अलङ्कारों की शोभा का चमत्कार भी है।

कुछ आलोचकों ने भारवि को विकृत रुचि का दोषी ठहराया है और उनके अत्यधिक [illegible] को [illegible] है। कुछ आलोचकों

के मत से भारवि ने महाकवि कालिदास की काव्य-परम्परा का उत्तराधिकारी होकर भी भावपक्ष की मार्मिकता की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया। कुछ आलोचकों का मत है कि भारवि का काव्य संस्कृत की काव्य-परम्परा को स्वाभाविकता से कृत्रिमता की ओर ले जाने वाला हुआ और इस प्रकार भारवि ने संस्कृत-साहित्य में ह्रासयुग को प्रारम्भ किया। उनका कहना है कि भारवि काव्य-सौन्दर्य को प्रदर्शित करने की अपेक्षा पाण्डित्य के प्रदर्शन की ओर अधिक रुचि रखते हैं।

परन्तु इस प्रकार की कटु आलोचनायें भारवि के महत्व को कम नहीं करतीं। भारवि के पदों में जो अर्थ की गरिमा है, पदों का सुन्दर विन्यास है और चमत्कारपूर्ण अलङ्कारों की सजावट है, ये तत्व अन्य स्थानों पर एक साथ कठिनता से ही दृष्टिगोचर हो सकेंगे। भारवि के काव्य के अध्ययन से प्रतीत होता है कि वे राजनीति के प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने विविध शास्त्रों का समुचित अध्ययन किया था। उन्होंने मानव-स्वभाव और प्रकृति को सूक्ष्मतम रूप से देखा था और उनमें काव्य-रचना करने का स्वाभाविक कौशल था।

वस्तुतः भारवि की कविता का आस्वादन करने के लिये कुछ परिश्रम, करने की आवश्यकता होती है। उनकी कविता में विविध रसों का माधुर्य तो भरा हुआ है परन्तु उसको पीने के लिए थोड़ी बुद्धि के प्रयोग की आवश्यकता होती है। उनका काव्य उस नारियल की गिरि के समान मधुर है। जो कठोर छिलके से ढका है तथा उस छिलके को तोड़कर ही उसे चखा जा सकता है। टीकाकार मल्लिनाथ ने ठीक कहा है—

> नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवेः सपदि तद् विभज्यते।
> स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरं सारमस्य रसिका यथेप्सितम्॥

२. भारवि का समय

संस्कृत के अन्य कवियों के समान भारवि के समय के सम्बन्ध में भी कोई निश्चित जानकारी नहीं प्राप्त होती। न तो भारवि ने अपने समय, स्थिति और जीवनवृत्तान्त के सम्बन्ध में कोई संकेत दिया है और ना ही उनके किसी प्रशंसक या समालोचक ने इस सम्बन्ध में कोई निश्चित एवं प्रामाणिक तथ्य उपस्थित किया है। अतः बहिरङ्ग साक्षियों के द्वारा ही उनके स्थितिकाल के

सम्बन्ध में अनुमान लगाना पड़ता है। इन साक्षियों के द्वारा ही भारवि का समय छठी शताब्दी का उत्तरार्ध निर्धारित किया जा सकता है। संक्षेप में वे साक्षियां निम्न हैं—

(१) भारवि पर निश्चित रूप से कालिदास का प्रभाव पड़ा है। संस्कृत-काव्यों के समालोचकों ने कालिदास को भारवि से सदा पहला स्थान दिया। माघ की कविता पर भारवि का बहुत अधिक प्रभाव स्पष्ट है। माघ का समय ७०० ई० के लगभग का है अतः भारवि को कालिदास का परवर्ती और माघ का पूर्ववर्ती होना चाहिये।

(२) दक्षिण भारत में ऐहोल का एक शिलालेख मिला है, जो चालुक्य वंश के राजा पुलकेशिन द्वितीय की प्रशस्ति में जैन कवि रविकीर्ति द्वारा लिखा गया था। इस प्रशस्ति में रविकीर्ति ने अपनी कवित्व शक्ति को कालिदास और भारवि के समान बताया है।[1] यह शिलालेख बीजापुर जिले के ऐहोल नामक ग्राम में एक प्राचीन मन्दिर में मिला है। इसका निर्माण ५५६ शकाब्द अर्थात् ६३४ ई० में हुआ था। इससे प्रतीत होता है कि भारवि इस समय तक श्रेष्ठ कवि के रूप में दक्षिण भारत में प्रसिद्ध हो चुके थे। अतः भारवि का समय सातवीं शताब्दी के पूर्व अर्थात् छठी शताब्दी के उत्तरार्ध का निर्धारित किया जा सकता है।

(३) 'काशिकावृत्ति' में 'किरातार्जुनीयम्' काव्य का उद्धरण दिया गया है। 'काशिकावृत्ति' की रचना वामन और जयादित्य ने ६५० ई० के लगभग की थी। अतः भारवि को सातवीं शताब्दी के पूर्व का होना चाहिये।

(४) बाणभट्ट ने, जो सम्राट् हर्षवर्धन के (राज्यकाल ६०६–६४८ ई०) सभापण्डित थे, अपने काव्यों में अनेक कवियों का उल्लेख किया है। परन्तु वे भारवि का उल्लेख नहीं करते। इससे प्रतीत होता है कि भारवि उनसे कुछ ही पहले हुए होंगे और उस समय तक उन्होंने इतनी ख्याति और प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं की होगी। अतः भारवि को बाण से कुछ पूर्व छठी शताब्दी उत्तरार्ध का माना जा सकता है।

---

१. येनायोजि न वेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रित-कालिदास-भारविकीर्तिः॥
—ऐहोल शिलालेख॥

(५) दक्षिण भारत में एक पृथ्वीकोंगणि नामक राजा का दानपात्र मिला है। इस दानपात्र के अनुसार पृथ्वीकोंगणि ने एक जैन मन्दिर की सेवा-पूजा के लिए एक गाँव दान में दिया था। इस दानपत्र में उल्लेख है कि उससे सात पीढ़ी पहले दुर्विनीत नाम का पूर्वज हुआ था। वह कोंकण के महाराज अविनीत का पुत्र था। वह बहुत विद्वान् था। उससे 'शब्दावतार' नाम से संस्कृत में 'बृहत्कथा' को निबद्ध किया था और 'किरातार्जुनीयम्' के पन्द्रहवें सर्ग की टीका की थी।[1]

यह दानपत्र ६९८ शक-संवत् अर्थात् ७७६ ई० में लिखा गया था।[2] अतः पृथ्वीकोंगणि का यही समय होना चाहिये। यदि प्रत्येक पीढ़ी के लिये पच्चीस वर्ष का समय दे दिया जावे, तो दुर्विनीत का समय इससे १७५ वर्ष पूर्व अर्थात् ६०० ई० का होगा। इस आधार पर 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के रचयिता का समय इससे पहले का अर्थात् छठी शताब्दी के उत्तरार्ध का निर्धारित किया जा सकता है।

(६) दण्डी रचित 'अवन्तिसुन्दरीकथा'[3] से भारवि के समय के सम्बन्ध में कुछ अनुमान किया जा सकता है। काञ्ची के पल्लवनरेश सिंहविष्णु वर्मा ने एक गन्धर्व से भारवि की, जिनका वास्तविक नाम दामोदर था, प्रशंसा सुनकर उनको अपने पास बुलाकर उनका सम्मान किया। भारवि पहले दुर्विनीत के मित्र थे और उसके साथ रहा करते थे। अब सिंहविष्णु वर्मा से उसकी मित्रता हो गई।

इतिहास के अनुसार दुर्विनीत और सिंहविष्णु वर्मा समकालीन थे। सिंहविष्णु वर्मा का समय ५७५ से ६०० ई० का था। उसने मलय और पाण्ड्य राजाओं को पराजित किया। उसका पुत्र महेन्द्रवर्मन (६००–६२५ ई०) था। उसने मत्तविलास नामक प्रहसन की रचना की थी। सिंहविष्णु वर्मा के इस

---

१. श्रीमत्कोंकणमहाराजाधिराजस्य अविनीतनाम्नः पुत्रेण शब्दावतारकारेण देवभारतीनिबद्धबृहत्कथेन किरातार्जुनीयपञ्चदशसर्गटीकाकारेण दुर्विनीतनामधेयेन। दानपत्र का एक अंश॥

२. अष्टानवत्युत्तरशतेषु शकवर्षेवातितेषु॥ दानपत्र का अंश॥

३ अनन्तशयनम् ग्रन्थमाला संख्या १७२ मद्रास १९५४ से इस पुस्तक का प्रकाशन हुआ।

सम्बन्ध के आधार पर भी भारवि का समय छठी शताब्दी का उत्तरार्ध होता है।

इन बाह्य साक्षियों के आधार पर भारवि को छठी शताब्दी के उत्तरार्ध का मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

३. भारवि का स्थान और जीवनवृत्त

भारवि के समय के समान ही उसके स्थान और जीवनवृत्त के सम्बन्ध में भी उतना ही अनिश्चय है। 'अवन्तिसुन्दरीकथा' से भारवि के जीवन के सम्बन्ध में कुछ परिचय मिलता है, यद्यपि अधिकांश विद्वान् इसको प्रामाणिक नहीं मानते। इसके अनुसार दण्डी भारवि के प्रपौत्र थे। भारवि कौशिक कुल में उत्पन्न हुए थे। इसके पूर्व व पश्चिमोत्तर प्रदेश (गुजरात) में आनन्दपुर में रहते थे। वहाँ से वे नासिक गये और वहाँ से अचलापुर नामक स्थान में जाकर रहने लगे। इस कुल में नारायणस्वामी नाम के व्यक्ति उत्पन्न हुये। वे भारवि के पिता थे। 'अवन्तिसुन्दरीकथा' के प्रसङ्ग से यह भी ज्ञात होता है कि भारवि का वास्तविक नाम दामोदर था और भारवि इनका विरुद रहा होगा। भारवि की मित्रता कोंकण के राजा अविनीत के पुत्र दुर्विनीत से हुई, जिसके साहचर्य में रहकर उनको अनुचित आचरण का भागी बनना पड़ा। इससे वे अत्यधिक दुःखी हुए। इसके बाद उनकी मित्रता पल्लववंशी काञ्चीनरेश सिंहविष्णु वर्मा से हुई। महाराज सिंहविष्णु वर्मा ने भारवि के कवित्व से प्रभावित होकर उनका बहुत अधिक आदर किया।

'अवन्तिसुन्दरीकथा' के इस विवरण को यदि प्रामाणिक मान लिया जावे, तो स्पष्ट होता है कि भारवि दक्षिणी भारत के नासिक क्षेत्र के निवासी थे। इन्होंने अपना अधिकांश समय काञ्ची में बिताया था।

भारवि की कवि के रूप में प्रसिद्धि दक्षिण भारत में सातवीं शताब्दी के आरम्भ में ही हो गयी थी। दक्षिण भारत के ऐहोल के ६३४ ई० के अभिलेख में उनको कालिदास के साथ परिगणित किया गया है। इस प्रकार सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दक्षिण भारत में भारवि की प्रसिद्धि हो जाने पर भी सम्भवतः उस समय तक उत्तर भारत में नहीं हुई थी। अन्यथा महाकवि बाण अन्य कवियों के साथ उनका भी उल्लेख करते।

अनेक समालोचक भारवि के काव्यों में वर्णित स्थानों के आधार पर उनके जन्म-स्थान के सम्बन्ध में विभिन्न अनुमान करते हैं। 'किरातार्जुनीयम्' के

भौगोलिक वृत्तों के आधार पर उनको उत्तर भारत का, मध्य भारत का और सह्याद्रि समुद्र तटवर्ती प्रदेशों का भी सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। उन वर्णनों से यह सिद्ध करना बहुत कठिन है कि भारवि वस्तुतः उन्हीं स्थानों के रहने वाले थे, परन्तु उनसे यह अवश्य सिद्ध हो जाता है कि भारवि ने उन सभी स्थानों का भ्रमण करके प्रकृति का सूक्ष्म अध्ययन किया होगा। लेकिन साहित्यिक पुस्तकों और अभिलेखों के आधार पर उनको दक्षिण भारत का ही समझना अधिक उपयुक्त होगा।

भारवि के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में कोई विशेष बात नहीं मिलती और इस सम्बन्ध में हम अन्धकार ही में हैं। तथापि संस्कृत कवियों में उनके सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियां प्रसिद्ध हैं।

एक किंवदन्ती के अनुसार भारवि धारानगरी के निवासी थे और भोज के समकालीन थे। उनके पिता का नाम श्रीधर और माता का नाम सुशीला था। उनका रसिका या रसिकावती नाम की कन्या के साथ विवाह हुआ था। वह भृगुकच्छ भड़ौच के निवासी चन्द्रकीर्ति की पुत्री थी। भारवि के पिता भी प्रकाण्ड पण्डित थे। परन्तु भारवि उनसे भी बढ़कर विद्वान् हुये। भारवि को अपनी विद्या का बड़ा घमण्ड था और वे उद्धत हो गये। पिता के समझाने पर भी उनमें विनम्रता नहीं आई इसलिये उनके पिता बहुधा भारवि की प्रताड़ना किया करते थे। इससे भारवि बहुत अधिक क्षुब्ध हुए और उन्होंने पिता का वध करने का निश्चय कर लिया। एक समय में वे पिता का वध करने के लिए गए, तो द्वार के बाहर से उन्होंने पिता को अपनी अत्यधिक प्रशंसा करते हुए सुना। इससे उनको अत्यधिक लज्जा का अनुभव हुआ। वे पिता के प्रति विरोध के भाव को छोड़कर उनका आदर करने लगे। वस्तुतः उनके पिता चाहते थे कि भारवि में पाण्डित्य के साथ-साथ निरभिमानिता का भी गुण आवे। इसलिए वे पुत्र की प्रताडना किया करते थे।

पिता के प्रति मैंने अनुचित व्यवहार किया है, इससे लज्जित होकर भारवि प्रायश्चित करने के लिए पत्नी को साथ लेकर ससुराल में रहने लगे। वहाँ छः मास तक रहकर उन्होंने महाकाव्य की रचना प्रारम्भ कर दी। परन्तु बहुत समय तक ससुराल में रहने से उनका अनादर होने लगा। उनकी पत्नी भी दुःखी रहने लगी और उनको धन के अभाव का बहुत कष्ट होने लगा।

पत्नी को धन के बहुत अभाव में देखकर एक बार भारवि ने एक श्लोक का आधा हिस्सा लिखा। उसको पत्नी को देकर कहा कि वह इसे किसी गुणी पुरुष को देकर बदले में धन ले आवे। भारवि की पत्नी उस श्लोकार्ध को वर्धमान नामक सेठ की पत्नी को देकर कुछ धन ले आयी। उस समय वह सेठ व्यापार के कार्य से परदेश गया हुआ था। सेठ की पत्नी ने उस श्लोकार्ध को लकड़ी के पट्ट पर लिखवाकर अपने शयनकक्ष में टांग लिया। लगभग १५ वर्षों के बाद सेठ बाहर से लौटा।

बाहर से आते ही सेठ ने देखा कि कोई नवयुवक उसकी पत्नी के पास सो रहा है। पत्नी को दुश्चरित समझकर सेठ पत्नी का और उस नवयुवक का बध करने के लिये उद्यत हो गया। तभी उसकी दृष्टि सहसा उस श्लोकार्ध पर पड़ी। उसका अर्थ था कि किसी कार्य को बिना सोचे समझे एकाएक नहीं कर बैठना चाहिये, क्योंकि अविवेक परम आपत्तियों का स्थान होता है। यह देखकर वह रुक गया। उसने अपनी पत्नी को जगाकर सारी बात पूछी।

पत्नी ने बताया कि जब आप बाहर गये थे, उस समय मैं गर्भवती थी। आपके जाने के बाद मुझसे यह पुत्र उत्पन्न हुआ। अब यह पन्द्रह वर्ष का हो गया है। सब वृत्तान्त जानकर सेठ को श्लोकार्ध की रचना करने वाले कवि के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। उसने भारवि कवि को बहुत सा धन देकर उस श्लोक को पूरा कराया। वह श्लोक इस प्रकार है—

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।

वृणुते ही विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः॥ किरात० २/३॥

अर्थात् किसी कार्य को एकाएक नहीं करना चाहिये। अविवेक परम आपत्तियों का स्थान है। गुण की लोभी सम्पत्तियाँ सोच समझकर कार्य करने वाले का स्वयं ही वरण कर लेती हैं।

इस प्रकार की जनश्रुतियों में चाहे हमको भारवि के जीवनवृत्त का सही ज्ञान न होता हो, तथापि उनकी कविताओं और सूक्तियों का महत्व अवश्य ही विदित होता है।

४. भारवि का कृतित्व और "किरातार्जुनीयम्" की कथावस्तु का सारांश

भारवि की एक ही रचना "किरातार्जुनीयम्" प्राप्त होती है। इस एक ही

काव्य ने कवि को अक्षय यश प्रदान किया है और उनकी गणना संस्कृत के श्रेष्ठ महाकवियों में की जाती है। उसके काव्यों को संस्कृत वृहत्त्रयी में सबसे प्रथम स्थान दिया गया है।

"किरातार्जुनीयम्" महाकाव्य का मूल कथानक 'महाभारत' से लिया गया है। इसको कवि ने अपनी निजी कल्पनाओं और काव्य-प्रतिभा से बहुत अधिक बढ़ा लिया है। यदि केवल महाभारत के कथानक को ही लेते, तो ये केवल चार-पाँच सर्गों में ही समाप्त हो जाता। परन्तु कवि के वर्णनों ने इस कथानक को बढ़ाकर अठारह सर्गों के विशाल महाकाव्य में परिणत कर दिया।

कथावस्तु का सारांश

काव्य का प्रारम्भ युधिष्ठिर द्वारा गुप्तचर बनाकर भेजे गये किरात के लौट आने से होता है। द्यूत में हारकर पाँचों पाण्डव शर्त के अनुसार बारह वर्षों की वनवास की अवधि को बिताने के लिये द्वैतवन में रहने लगे। युधिष्ठिर को चिन्ता हुई कि क्या पता दुर्योधन हमारा राज्य वापस करेगा या नहीं। उन्होंने एक किरात को गुप्तचर नियुक्त करके दुर्योधन के राज्य की व्यवस्था और उसके मनोभावों को जानने के लिये हस्तिनापुर भेजा। वह किरात ब्रह्मचारी का वेश धारण करके हस्तिनापुर गया और सब समाचारों को ज्ञात करके द्वैतवन में युधिष्ठिर के पास वापिस आया।

गुप्तचर ने सूचना दी कि दुर्योधन ने (काव्य में दुर्योधन के लिये सुयोधन नाम का प्रयोग हुआ है) अपनी उत्तम प्रशासन की नीतियों से प्रजा को प्रसन्न कर लिया है। उनके सेवक उनके प्रति अनुरक्त हैं। अधीनस्थ राजा उससे स्नेह करते हैं और उसके पास ऐसे पराक्रमी वीर हैं, जो उसके लिए प्राणों को उत्सर्ग करने के लिये सन्नद्ध हैं। किन्तु वह आप (पाण्डवों) से भयभीत है और गुप्त रूप से आप सबका वध कर देना चाहता है। किरात द्वारा लाये गये इन समाचारों को जानकर द्रौपदी अत्यधिक क्रुद्ध हुई। उसने युधिष्ठिर के क्रोध को जाग्रत करने के लिये अपनी और पाण्डवों की दयनीय स्थिति का वर्णन किया। उसने शान्त स्वभाव के युधिष्ठिर को ताने देकर युद्ध के लिये उत्साहित करना चाहा (सर्ग—१)।

पाण्डवों और द्रौपदी का इस सम्बन्ध में वार्तालाप हुआ। भीम ने द्रौपदी के कथन का समर्थन किया। उसने कहा कि हम भाइयों के तेज का कौन शत्रु

सहन कर सकता है। परन्तु युधिष्ठिर भीम के मत से सहमत नहीं हुये। उन्होंने नीतियुक्त उक्तियों से भीम के क्रोध को शान्त किया और कहा कि परिस्थितियाँ अभी हमारे अनुकूल नहीं है। परिस्थितियों के अनुकूल होने पर ही हमको युद्ध करना चाहिये। इसी समय भगवान् वेदव्यास वहाँ आये। (सर्ग—२)॥

परामर्श लेने पर व्यास जी ने कहा कि दुर्योधन के साथ युद्ध होना तो अनिआर्य है। परन्तु दुर्योधन बहुत बलवान् है। इसीलिये पाण्डवों को पहले शक्ति का संग्रह करना चाहिये। इसके लिये उन्होंने परामर्श किया कि अर्जुन भगवान् शिव की आराधना करके उनसे शस्त्र प्राप्त करे। वे अर्जुन को तपस्या करने की विधि बताकर तिरोहित हो गये। इसी समय एक यक्ष वहाँ प्रकट हुआ। द्रौपदी और भाईयों के शुभाशंसनों से प्रोत्साहित अर्जुन ने शिव की आराधना के लिये यक्ष के साथ इन्द्रकील पर्वत की ओर प्रस्थान किया। (सर्ग—३)। इन्द्रकील पर्वत की ओर जाते हुये अर्जुन ने शरद् ऋतु की शोभा को देखा। शरद् के सौन्दर्य से मुग्ध यक्ष ने उसका सुन्दर वर्णन अर्जुन के सामने किया। अर्जुन और यक्ष उस ऋतु के सौन्दर्य का अवलोकन करते हुये हिमालय पर पहुँचे। (सर्ग—४)।

यक्ष ने हिमालय के सौन्दर्य का चित्रण करके इस पर्वत का शिव और पार्वति के साथ सम्बन्ध बताया। वह अर्जुन को सावधान और संयतेन्त्रिय रह कर इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या करने के लिये कह कर तिरोहित हो गया। (सर्ग—५)। उस रमणीक पर्वत पर अर्जुन ने कठोर तप करना प्रारम्भ किया इससे वहाँ रहने वाले यक्ष भवभीत हो गये। वे सहायता के लिये देवराज इन्द्र, के पास गये अर्जुन की तपस्या से डरे हुए इन्द्र ने देवाङ्गनाओं और गन्धर्वों को आदेश दिया कि वे इन्द्रकील पर्वत पर जावें और अर्जुन की तपस्या को भंग करे। (सर्ग—६)।

इन्द्र द्वारा भेजी गई देवङ्गनायें और गन्धर्व वायुमार्ग से इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचे और उन्होंने वहाँ अपना डेरा डाल दिया। (सर्ग—७) अपनी मायावी शक्ति से बनाये गये प्रासादों से निकलकर देवाङ्गनायें वनविहार के लिये चलीं। लताकुञ्जों में पुष्पों का चयन करने और विविध प्रकार की सरस काम-क्रीडायें करने लगीं। गंगा में स्नान करने के लिये उनको आमन्त्रित किया।

देवाङ्गनायें और गन्धर्व आकर्षक कामक्रीडायें करते हुये स्नान करने लगे। (सर्ग—८)। इन सरस कामक्रीड़ाओं में दिन समाप्त हो गया। सन्ध्या हुई। सूर्य अस्त हुआ और चन्द्रमा का उदय हुआ। इस मादक वातावरण ने देवाङ्ग-नाओं को कामपीड़ित कर दिया। वे अपने प्रेमियों के साथ सुरापन करती हुई रतिसुख का अनुभव करने लगीं। इन्हीं विलासों में रात्रि समाप्त होकर प्रभात हो गया। (सर्ग—९)।

अब देवाङ्गनायें अपने कार्य को पूरा करने के लिये निकली। उन्होंने उन्मद वातावरण को उत्पन्न किया। अर्जुन के व्रत डिगाने के लिये उन्होंने छः ऋतुओं की सहायता ली और उस युवक तपस्वी पर अपनी सारी मोहक शक्ति लगा दी। गन्धर्वों ने वीणा बजाई, अप्सराओं ने नृत्य किया। परन्तु युवक तपस्वी को वे विचलित नहीं कर सके। अर्जुन के सौन्दर्य के प्रति अप्सरायें आसक्त हो गई। अन्त में अपने प्रयत्नों में असफल होकर गन्धर्व और अप्सरायें लौट गये। (सर्ग—१०)। सेवकों की असफलता और अर्जुन की दृढ़ता को देखकर इन्द्र प्रभावित हुए। वे मुनिवेश धारण करके अर्जुन के पास आये। अर्जुन के उत्साह की प्रशंसा करते हुए उन्होंने तपस्या का उद्देश्य जानने का प्रयत्न किया। उन्होंने कहा कि शस्त्र धारण करना और तपस्या करना परस्पर विरोधी है। इन्द्र के अधिक्षेप को स्वीकार करके अर्जुन ने अपनी कथा कही कि मुझे अपने शत्रु से प्रतिशोध लेना है। उसने कहा कि या तो मैं तपस्या करता हुआ इस पर्वत पर अपना जीवन समाप्त कर दूंगा या शिव को प्रसन्न करके निन्दा रूपी कांटे को निकाल दूंगा। प्रभावित होकर इन्द्र ने अपना रूप प्रकट किया और अर्जुन से शिव की कृपा को प्राप्त करने के लिये कहकर अन्तर्हित हो गये। (सर्ग—११)।

अर्जुन शिव की आराधना में लीन हो गया। उसकी कठोर तपस्या से विह्वल हुए ऋषि-मुनि शिव से प्रार्थना करने लगे। शिव ने ऋषियों को अर्जुन का वास्तविक रूप समझाया। अर्जुन आदिपुरुष विष्णु के अंशरूप नर का अवतार है। वह प्रजा को पीड़ित करने वाले शत्रुओं का विनाश करने के लिये मेरी आराधना कर रहा है। इसी समय मूक नाम का एक दानव वराह का रूप धर कर अर्जुन को मारने के लिये तैयार हुआ। किरात का रूप रखकर शिव उसकी रक्षा करने के लिये जाने लगे और उन्होंने अपने गणों को पी

आने का आदेश दिया। (सर्ग--१२)। वराह अर्जुन को मारने के लिये सामने आया। उस समय अर्जुन और किरात ने एक साथ बाण मारे। किरात का बाण तो लक्ष्य को बेधकर भूमि में घुस गया परन्तु अर्जुन का बाण वराह के शरीर में बिंधा रह गया। बाणों से विद्ध वराह मृत होकर भूमि पर गिर गया। शिव का किरात वेषधारी एक गण और अर्जुन बाण को लेने के लिये वराह के पास आये उसने बाण के स्वामित्व के सम्बन्ध में विवाद हुआ। गण ने अपने स्वामी के नाम पर एक बाण को माँगा। (सर्ग--१३)।

अर्जुन ने एक लम्बे भाषण द्वारा बाण देना अस्वीकार कर दिया। किरात वापिस चला गया। तब शिव ने गणों की सेना को अर्जुन से युद्ध करने के लिये भेजा। इस सेना ने अर्जुन पर आक्रमण किया। परन्तु अर्जुन ने इनके बाणों की वर्षा को अनायास ही झेल लिया। शिव की सेना पराजित होकर भाग गयी। (सर्ग--१४)। शिव और स्कन्द ने भागती हुई सेना को धैर्य बंधा-कर रोका। अब अर्जुन और शिव का बाणों से घोर युद्ध हुआ। (सर्ग--१५)। किरात की रणकुशलता को देखकर अर्जुन का क्रोध भड़क उठा, परन्तु उसकी शक्ति असफल रही। अपनी असफलता पर उसको आश्चर्य हुआ। उसने दिव्य अस्त्रों—ब्रह्मास्त्र, वरुणास्त्र आदि का प्रयोग किया। परन्तु उसको भी शिव ने विफल कर दिया। तब अर्जुन धनुष को छोड़कर मल्लयुद्ध करने के लिये तत्पर हो गये। (सर्ग--१६)।

शिव की बाण-वर्षा से क्रोधित अर्जुन ने पुनः गाण्डीव उठा लिया और ऐसी बाण-वर्षा की कि शिव की सेना घबरा गई। शिव ने अर्जुन के बाणों को काटकर उसके कवच, धनुष आदि सबको एक-एक करके निष्फल कर दिया। अब अर्जुन बड़ी-बड़ी चट्टानों और पेड़ों के तनों से शिव पर प्रहार करने लगे। परन्तु वे सब भी निष्फल हो गये। (सर्ग--१७)। शस्त्रों के निष्फल हो जाने पर अर्जुन शिव पर मुक्कों का प्रहार करने लगे। दोनों में भयङ्कर मल्लयुद्ध होने लगा। उस समय अर्जुन पर प्रहार करने के लिये जब शिव ऊपर को उछले, अर्जुन ने उनको गिराने के लिये उनके दोनों पैर ऊपर ही पकड़ लिये। अब शिव ने अपना वास्तविक रूप प्रकट किया। अर्जुन ने शिव की महत्ता की स्तुति की और उनसे युद्ध में विजय दिलाने वाली युद्ध-

विद्या की याचना की। शिव ने अर्जुन को पाशुपत अस्त्र धारण करा कर धनुर्वेद की विद्या दी। धनुर्वेद को प्राप्त करने के अनन्तर शिव की अनुमति प्राप्त करके इन्द्र आदि लोकपालों ने अपने दिव्य अस्त्रों को अर्जुन के लिये प्रदान किया। तदनन्तर शिव से शत्रुओं को जीतने का आशीर्वाद पा अर्जुन ने घर लौटकर बड़े भाई युधिष्ठिर को प्रणाम किया—

वज्र जय रिपुलोकं पादपद्मनानतः सन्,
गदित इति शिवेन श्लाघितो देवसंघैः।
निजगृहस्थं गत्वा सादरं पाण्डुपुत्रो
धृतगुरुजयलक्ष्मीर्धर्मसूनुं ननाम ॥ कि० १८/४८॥

५. 'किरातार्जुनीयम्' का महाकाव्यत्व

महाकवि भारवि की रचना 'किरातार्जुनीयम्' को महाकाव्य की संज्ञा दी जाती है। आचार्य दन्डी ने महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार दिया है—

सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
अशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्॥
इतिहासकथोद्भूतमितरद् वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्गफलायत्तं चतुरोदात्तनायकम्॥
नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रो सूर्योदयवर्णनैः।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोसवैः॥
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः।
मन्त्रदूतप्रयाणादिनायकाभ्युदयैरपि॥
अलंकृतमसंक्षिप्तं रसभावनिरन्तरम्।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तसुसन्धिभिः॥
सर्वत्र भिन्नवृतान्तैरुपेतं लोकरञ्जकम्।
काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायते सदलंकृति॥

काव्यादर्श १/१४-१९॥

काव्य अनेक सर्गों का होता है। इसको आशीर्वाद, देवता के प्रति नमस्कार या कथावस्तु का निर्देश करके प्रारम्भ किया जाता है। इसका कथानक किसी ऐतिहासिक कथा के या किसी सत्पुरुष की कथा के आधार पर रचित होता है। यह धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की सिद्धि के लिये लिखा जाता है। नायक चतुर और उदात्त होता है। महाकाव्य में नगरों, समुद्रों, पर्वतों, ऋतुओं,

चन्द्रोदय, सूर्योदय आदि का वर्णन किया जाता है। इसमें उद्यान-विहार, जल-क्रीड़ायें, मधुपान, संभोग; शृङ्गार, विवाह, कुमारों का जन्म, नायक की विजय आदि का वर्णन रहता है। वर्णनों में अलङ्कारों का चमत्कार होना चाहिए और वे संक्षिप्त नहीं होने चाहिये। उनमें रस और भावों की अभिव्यञ्जना होनी चाहिए। सर्ग बहुत लम्बे नहीं होने चाहियें। छन्द सुन्दर और गेय होने चाहियें। सन्धियों का सम्यक् रूप से निर्वाह करना चाहिये। सर्गों में विभिन्न घटनायें होनी चाहियें और सर्ग के अन्त में छन्द बदल देना चाहिये। इस प्रकार का काव्य पाठकों और श्रोताओं के लिये मनोरञ्जक होता है और कवि की कीर्ति को प्रलय पर्यन्त अक्षय रखता है।

इन लक्षणों के अनुसार भारवि के 'किरातार्जुनीयम्' को महाकाव्यों की श्रेणी में रखा जा सकता है। इसमें १८ सर्ग हैं। इसको कथावस्तु के निर्देश के साथ प्रारम्भ किया गया है। इसका कथानक 'महाभारत' की इतिहास प्रसिद्ध घटना के आधार पर निबद्ध हुआ है। यह चतुर्वर्ग की प्राप्ति में सहायक है। काव्य का नायक अर्जुन चतुर और उदात्त है। इस महाकाव्य में विभिन्न स्थानों, ऋतुओं, उपवन-विहार, जलक्रीडा मधुपान, शृगार, युद्ध, नायक की विजय आदि का विस्तृत और सरस वर्णन है। ये वर्णन विभिन्न अलङ्कारों से अलंकृत हैं। इसमें रस और भावों की उत्तम अभिव्यञ्जना है। सर्ग न तो बहुत छोटे हैं और न बहुत विस्तृत। छन्द श्रव्य और गेय हैं। सन्धियों का सम्यक् आयोजन किया गया है। सर्गों में विभिन्न घटनाओं का संयोजन है, सर्ग के अन्त में भिन्न छन्दों का प्रयोग हुआ है।

इस प्रकार 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य पाठकों और श्रोताओं का मनोरञ्जन करने वाला होकर महाकवि भारवि की कीर्ति को चिरस्थायी कर रहा है।

६. किरातार्जुनीयम् महाकाव्य पर शास्त्रीय दृष्टि से विचार

काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण के विचार करने के लिये इस प्रकरण में निम्न विषयों की समलोचना की गयी है—काव्य का नायक, चरित्र-चित्रण, काव्य की शैली, रस की अभिव्यक्ति, प्रकृति-चित्रण, अलंकारों का आयोजन और छन्द-विधान।

(क) काव्य का नायक

"किरातार्जुनीयम्" महाकाव्य का नायक अर्जुन है। 'किरातार्जुनीयम्' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—"किरातश्च अर्जुनश्च किरातार्जुनौ, तौ

अधिकृत्यं कृतं काव्यम्" अर्थ में 'छ' प्रत्यय होकर 'छ' को 'ईय' होकर 'किरातार्जुनीय' रूप निष्पन्न होता है। काव्य के नाम में ही स्पष्ट है कि इसमें किरात और अर्जुन का वर्णन प्रमुख है। क्योंकि काव्य का मुख्य उद्देश्य किरात रूपधारी शिव से अर्जुन को विजय प्राप्त कराने वाली शस्त्रविद्या को दिलवाना है। अतः मुख्य फल को प्राप्त करने वाला होने से अर्जुन ही इस काव्य का नायक है। मल्लिनाथ में अर्जुन को ही इस महाकाव्य का नायक माना है।

परन्तु 'किरातार्जुनीयम् के दूसरे टीकाकार चित्रभानु इस काव्य का नायक अर्जुन को न मानकर युधिष्ठिर को मानते हैं। उनका कहना है कि कथा के प्रारम्भ में, कथा के मध्य में और कथा के अन्त में युधिष्ठिर ही मुख्य रूप से आते हैं। प्रारम्भ में तो वे हैं ही। बनेचर उन्हीं के पास आकर दुर्योधन का सारा वृत्तान्त कहता है। मध्य में भी कवि ने अर्जुन के द्वारा उन्हीं के महत्व की प्रतिष्ठा कराई है[1] और अन्त में भी अर्जुन दिव्य शस्त्रों को प्राप्त करके उन्हीं के चरणों में प्रणाम करता है[2]। वस्तुतः अर्जुन द्वारा दिव्य शस्त्रों को प्राप्त करना युधिष्ठिर की विजयों के लिये साधनरूप है, अतः युधिष्ठिर ही इस काव्य का नायक है।

परन्तु ये तर्क अधिक संगत नहीं हैं। काव्य में अर्जुन का महत्व युधिष्ठिर की अपेक्षा बहुत अधिक है। यद्यपि अर्जुन पहले सर्ग में नहीं आते, तो भी तीसरे सर्ग से लेकर काव्य के अन्त तक उन्हीं के चरित का कवि ने मुख्य रूप में वर्णन किया है। तीसरे सर्ग के बाद इस काव्य में युधिष्ठिर प्रत्यक्ष रूप से कहीं उपस्थित नहीं होते। कहीं-कहीं उनका नाम अवश्य आ जाता है। कवि ने स्वयं काव्य का नाम 'किरातार्जुनीयम्' रखकर युधिष्ठिर की अपेक्षा अर्जुन को अधिक महत्व दिया है। इसलिये अर्जुन को ही इस काव्य का नायक मानना चाहिये। मल्लिनाथ का यह कहना ठीक ही है कि इस काव्य का नायक मध्यम पाण्डव अर्जुन है। उसी के उत्कर्ष का इस काव्य में वर्णन है और उसी को दिव्य अस्त्रों की प्राप्ति रूप फल मिलता है।[3]

---

१. किरातार्जुनीयम् ११/४५ और ११/७७ ।।

२. किरातार्जुनीयम् १८/४८

३. नेता मध्यमपाण्डवो भगवती नारायणस्यांशज–
स्तस्योत्कर्षकृतेऽनुवर्ण्यचरितो दिव्यः किरातः पुनः ।। मल्लिनाथ ।।

(ख) चरित्र-चित्रण

'किरातार्जुनीयम्' का कथानक 'महाभारत' से गृहीत होने के कारण इनके पात्र लोकविश्रुत हैं और इनकी विशेषताओं से भी परिचित हैं। कवि ने अपनी प्रतिभा कल्पना और प्रौढ़ उक्तियों द्वारा इनमें एक नये जीवन का सन्निवेश किया है। इस पुस्तक में केवल प्रथम सर्ग की ही व्याख्या होने के कारण इस सर्ग में आये पात्रों के चरित्रों की विशेषतायें बताई जा रही हैं।

युधिष्ठिर—

यद्यपि प्रथम सर्ग में युधिष्ठिर के मुख से किसी उक्ति को नहीं कहलाया गया, तथापि अन्य वर्णनों से उनकी अनेक विशेषतायें अभिव्यक्त हो जाती हैं। युधिष्ठिर सत्य का पालन करने वाले, धर्म पर दृढ़ रहने वाले, सहनशील और राजनीति में चतुर हैं। द्यूत में हार कर वनों में रहते हुये भी वे इस ओर से उदासीन नहीं हैं कि उनका शत्रु दुर्योधन क्या कर रहा है। उनके विचारों, उद्देश्यों और कार्यों को जानने के लिये वे गुप्तचर भेजते रहे हैं। शत्रु पर आक्रमण करने से पहले वे उसकी सम्पूर्ण गतिविधि जान लेना चाहते हैं। वे इस अवसर की प्रतीक्षा में हैं कि कब उनका शत्रु कमजोर होता है और वे उस पर आक्रमण करके विजय प्राप्त कर सके। पूरी शक्ति का संग्रह किये बिना वे आक्रमण करना उचित नहीं समझते।[1] द्रौपदी और भीम द्वारा उलाहना दिये जाने पर भी उनके मन में विकार उत्पन्न नहीं होता और वे स्नेहभाव से सहज और युक्ति-युक्त शब्दों में अपनी नीतियों को उनको समझा देते हैं।

वनेचर—

प्रथम सर्ग के गुप्तचर के रूप में भेजे गये वनेचर के हस्तिनापुर से वापिस लौटने से प्रारम्भ होता है। प्राचीन राजनीति में अपने राष्ट्र की गतिविधियों को जानने और शत्रुओं के गुप्त भेदों का पता करने के लिये तथा उनमे भेद उत्पन्न कराने के लिये सुसंगठित गुप्तचर व्यवस्था का होना अत्यन्त आवश्यक होता था। राजा गुप्तचरों द्वारा राष्ट्रों की गतिविधियों को जानकर अपने कर्त्तव्य कार्यों का निर्धारण करता था। अतः राजाओं को चारचक्षु कहा जाता था।[2]

---

१. 'किरातार्जुनीयम्' २/४४–७७ ॥
२. 'किरातार्जुनीयम्' १/४।

गुप्तचर के लिये चार गुणों का होना अनिवार्य होता था—अमूढता; अशैथिल्य, सत्यपरता और ठीक प्रकार से अनुमान कर सकने की क्षमता। युधिष्ठिर द्वारा गुप्तचर बनाकर भेजे गये गुप्तचर में ये सभी गुण थे। उसने ब्रह्मचारी का वेष बनाकर और हस्तिनापुर जाकर दुर्योधन के सभी विचारों, योजनाओं, कार्यों और उद्देश्यों को ठीक प्रकार से जान लिया और आकर युधिष्ठिर को बताया। यद्यपि उनके द्वारा लाये गये समाचार युधिष्ठिर के लिये अप्रिय थे, तथापि वह उनके कहने में हिचकिचाया नहीं। युधिष्ठिर के कर्त्तव्य कार्यों को उसने स्पष्ट रूप से उसके सम्मुख कह दिया।

वनेचर कार्य करने में चतुर था। उसने दुर्योधन की दुरभिसन्धियों और तैयारियों को पूरी तरह से जान लिया। अपनी बात को उसने स्पष्ट और ठीक रूप से तथा प्रभावशाली ढंग से कहा। उसकी वाणी सौष्ठव और औदार्य गुणों से युक्त थी और उसके कथन प्रमाणों से निश्चित अर्थ को व्यक्त करते थे[१]। वह राजा का हितैषी था और अप्रिय लगने वाले भी हितकारी वचनों को कहने में हिचकिचाता नहीं था।[२] तथापि वह अति विनम्र था और अपने कार्यों की सफलता के लिए उसने स्वामी की कृपा को ही श्रेय दिया[३]।

सुयोधन—

काव्य के प्रथम सर्ग में कवि ने सुयोधन के चरित्र और नीतियों को संक्षेप में बताया है। इस प्रसङ्ग में कवि ने दुर्योधन को सुयोधन नाम से अभिहित किया, क्योंकि उसकी नीतियाँ प्रजा को सुख पहुँचाने वाली थीं। वस्तुतः कवि ने सुयोधन की नीतियों का उल्लेख करने में राजा के कर्त्तव्यों का उल्लेख किया था।

'किरातार्जुनीयम्' का सुयोधन एक नीतिमान् और प्रजावत्सल राजा है। वह जानता है कि उसके राज्य की स्थिरता और सुख, प्रजा और सेवकों की अनुरक्ति पर निर्भर है। देश को धन और धान्य से समृद्ध बनाने के लिये वह कृषि की उन्नति करना अपना कर्त्तव्य समझता है और कृत्रिम सिंचाई के साधन

---

१. स सौष्ठवौदार्य विशेषशालिनीं विनिश्चतार्थामिति वाचमाददे।

२. न विव्यथे तस्यो मनो न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः। कि० १/२॥

३. तवानुभावोऽयमवेदि यन्मया निगूढतत्त्वं नयवर्त्म विद्विषाम्। कि० १/६।

प्रस्तुत करता है[1]। सेवकों को उसने अपना अनुरक्त बना लिया था। वह अहंकार से शून्य होकर उनके साथ मित्रों के समान व्यवहार करता था। उसने पराक्रमी वीर अपने पास एकत्र किये थे, जो उसके उत्तम व्यवहार के कारण प्राणों से भी उसका हित करना चाहते थे[2]।

दुर्योधन के सामन्त राजा के प्रति भय के कारण नहीं, अपितु श्रद्धा और प्रेम के कारण उसके आदेशों का पालन करते थे। उसको कभी क्रोध करने अथवा शस्त्रों को उठाने की आवश्यकता नहीं होती थी[3]। राजनीति के छः अंगों—सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संशय और द्वैधीभाव का प्रयोग करने में वह कुशल था। चार उपायों—साम, दान, दण्ड और भेद के प्रयोगों को वह सफलता के साथ कर सकता था[4]। न्याय करने में वह पक्षपात नहीं करता था[5]।

प्रजा के अपने प्रति अनुरागी होने पर और पराक्रमी योद्धाओं और सामन्तों का स्वामी होने पर भी शत्रु की शक्ति से वह उदासीन नहीं था। भीम और अर्जुन की सामर्थ्य को वह जानता था और कूटनीति का प्रयोग करके इन कंटकों को किसी भी प्रकार से निकाल देने के लिये उद्यत था।

द्रौपदी—

"किरातार्जुनीयम्" की द्रौपदी विशेष तेजस्वी गुणों से युक्त है। युधिष्ठिर की नीतियाँ, सत्यप्रतिज्ञा के पालन और शान्त स्वभाव के कारण सबसे अधिक कष्ट और अपमान उसी को झेलने पड़े थे। इस कारण दुर्योधन से प्रतिशोध लेने की आकांक्षा सबसे अधिक उसी को थी। शत्रु की सफलता के समाचारों से उसका क्रोध भड़क जाता है और वह अपने को नियन्त्रण में नहीं रख सकती। वह ओजस्विनी वाणी में युधिष्ठिर के क्रोध को भड़काने का प्रयत्न करती है[6]। वह युधिष्ठिर से कहती है कि तुम जैसा कायर और कौन होगा जो स्वयं ही

---

१. 'किरातार्जुनीयम्' १/१७ ॥

२. महौजसो मानधना: धनार्चिता: धनुर्भृत: संयति लब्धकीर्तय: ।
न संहतास्तस्य न भेदवृत्तय: प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभि: समीहितुम् ॥
कि० १/१९ ॥ ३. 'किरातार्जुनीयम्' १/२१ ॥

४. 'किरातार्जुनीयम्' १/१२४-१४ ॥ ५. 'किरातार्जुनीयम्' १/१३ ॥

६. 'किरातार्जुनीयम्' १/२७ ।

अपनी राजलक्ष्मी और कुलवधू का शत्रुओं द्वारा अपहरण करा दे[1]। वह युधिष्ठिर को क्षत्रियों तथा राजाओं के समान आचरण करने का उपदेश करती है और उसकी सत्य प्रतिज्ञा को ढोंग कहती है। वह पहले भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को प्राप्त होने वाले कष्टों का वर्णन करती है और उसके बाद स्वयं युधिष्ठिर को होने वाले दुःखों और अपमानों को बताती है[2] और ये सब विपत्तियाँ स्वयं नहीं आईं, अपितु शत्रु दुर्योधन द्वारा उत्पन्न की गई थी।

द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है कि जो मनुष्य क्रोध नहीं कर सकता, शत्रु उससे भय नहीं करते और उसका आदर नहीं करते[3]। इसलिये युधिष्ठिर को चाहिये कि वह किसी बहाने से सन्धि को तोड़ दे और समय की प्रतीक्षा न करके अपने पराक्रम से शत्रुओं को जीत ले[4]। शान्ति और क्षमा मुनियों के लिये ही उचित है, राजाओं के लिये नहीं। यदि शान्ति और क्षमा का पालन करना ही है, तो उसको राजाओं के चिह्न धनुष को छोड़कर जटाओं को धारण करने, अग्नि में आहुति देते रहना ही उचित है[5]।

(ग) काव्य की शैली

भारवि ने काव्य में कलापक्ष और भावपक्ष दोनों के ही महत्व को स्वीकार किया है। उनका मत है कि काव्य में शब्द और अर्थ दोनों का ही महत्व है। जो बात कही जावे, वह निश्चित अर्थ वाली एवं प्रमाणों से युक्त होनी चाहिये[6]। काव्य में जो वाणियाँ कही जावें, उनके पदों का अर्थ स्पष्ट होना चाहिये। उसमें अर्थ का गौरव होना चाहिये और अर्थों में पुनरुक्ति भी नहीं होनी चाहिये। वे अभीप्सित अभिप्राय को प्रकट करने में समर्थ होने चाहियें।

भारवि की काव्य-शैली के सम्बन्ध में आलोचकों की प्रसिद्ध उक्ति है—'भारवेरर्थगौरवम्'। अर्थात् भारवि के काव्य की विशेषता अर्थों में गौरव का होना है। स्वयं भारवि ने 'किरातार्जुनीयम्' में स्थान-स्थान पर अपनी इस काव्यगत विशेषता का समर्थन किया है। चौदहवें सर्ग में अर्जुन द्वारा किरात

---

१. 'किरातार्जुनीयम्' १/३१ ॥ २. 'किरातार्जुनीयम्' १/३४-४० ॥
३. 'किरातार्जुनीयम्' १/३३ ॥ ४. 'किरातार्जुनीयम्' १/४५ ॥
५. 'किरातार्जुनीयम्' १/४४ ॥
६. 'किरातार्जुनीयम्' १/३ ॥

की बात का उत्तर देते हुए वे वाणी की विशेषता का निम्न प्रकार से वर्णन करते हैं—

> विविक्तवर्णाभरणा सुखश्रुतिः प्रसादयन्ति हृदयान्यपि द्विषाम् ।
> प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती ॥
> भवन्ति ते सभ्यतमा विपश्चितां मनोगतं वाचि निवेशयन्ति ये ।
> नयन्ति तेष्वुपपन्ननैपुणा गम्भीरमर्थं कतिचित्प्रकाशताम् ॥
> स्तुवन्ति गुर्वीमभिधेयसंपदं विशुद्धिमुक्तेरपरे विपश्चितः ।
> इति स्थितायां प्रति पुरुषं रुचौ सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः ॥
> कि० १४/३.५॥

अर्थात् वाणी के वर्ण स्पष्ट रूप से उच्चारित होने चाहिये। वे सुनने में सुखकर होने चाहिये और शत्रुओं के भी हृदय को प्रसन्न करने वाले होने चाहियें। पदों में स्वच्छता और गाम्भीर्य होना चाहिये। वे अर्थों को प्रकाशित करने वाले होने चाहियें। कुछ व्यक्ति वाच्यार्थ की गम्भीरता को अधिक श्रेष्ठ बताते हैं और कुछ शब्द-सामर्थ्य की प्रशंसा करते हैं। परन्तु उत्तम वाणी इन दोनों विशेषताओं से युक्त होती है। उत्तम काव्य वही होता है जो इन सब गुणों से सम्पन्न होकर मनोरम हो।

'किरातार्जुनीयम्' में भारवि ने इन सभी विशेषताओं को बनाये रखा है। शब्दों की सामर्थ्य के साथ उनकी वाच्यार्थ सम्पत्ति और अर्थ गाम्भीर्य प्रशंसा के योग्य हैं। इस काव्य के सम्वादों में भारवि ने अपनी उक्तियों को वाणी के इन सभी गुणों से सम्भृत किया है। वे कम से कम शब्दों में बहुत सरल ढंग के साथ अधिक से अधिक अर्थों की अभिव्यंजना कर देते हैं। इन शब्दों में कितनी मार्मिकता है, जबकि कुरुओं की राजसभा में आए हुए अपमान की अग्नि से दग्ध द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है—

> गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः कुलाभिमानी कुलजां नराधिपः ।
> परैस्त्वदन्यः क इवापहारयेन्मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम् ॥
> कि० १/३१॥

अर्थात् आपके अतिरिक्त और कौन ऐसा कुलाभिमानी राजा होगा, जो

---

१. स्फुटता न पदैरपाकृता न च स्वीकृतमर्थगौरवम् ।
रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित् ॥ कि० २/२७॥

प्रेम करने वाली, कुलीन, सुन्दर अपनी कुलवधू और राजलक्ष्मी का स्वयं शत्रुओं द्वारा अपहरण करा दे।

संस्कृत काव्यों के विकास में भारवि को यद्यपि कलापक्ष का प्रारम्भ करने वाला कहा जाता है, तथापि उनका काव्य आडम्बरयुक्त और समासबहुल पदों द्वारा बहुत क्लिष्ट नहीं होने पाया है। इसके काव्य की रीति को वैदर्भी कहा जाना चाहिये, यद्यपि इनमें कालिदास के समान माधुर्य व्यञ्जक वर्णों की अधिकता नहीं है, जो वीर रस के काव्य के लिये अधिक उपयुक्त भी नहीं होती। तथापि अल्पकाल युक्त और समासरहित पदों की रचना का बाहुल्य होने से इनकी रीति वैदर्भी ही है। द्रौपदी के निम्न ओजपूर्ण वचनों को निश्चय ही वैदर्भी रीति में रखा जा सकता है।

पुरःसरा धामवतां यशोधनाः सुदुःसहं प्राप्य निकारमीदृशम्।
भवादृशाश्चेदधिकुर्वते रतिं निराश्रया हन्त हता मनस्विता॥

कि० १/४३॥

परन्तु जिन स्थानों पर कवि ने शृङ्गार रस की अभिव्यञ्जना की है और प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है, वहाँ निश्चय ही माधुर्यव्यञ्जक वर्णों का प्रयोग है—

संवाता मुहुरनिलेन नीयमाने दिव्यस्त्रीजघनवरांशुक विवृतिम्।
पर्यस्यत्पृथुमणिमेखलांशजालं अ जज्ञे युक्तकमिवान्तरायमूर्वी॥

कि० ७/१४॥

परन्तु युद्ध के निम्न वर्णन में निश्चय ही गौडी रीति का सौन्दर्य विद्यमान है—

जलौघसम्मूर्च्छनमूर्छितस्वनः प्रसक्तविद्युल्लसितैधृ तद्युतिः।
प्रशान्तिमेष्यन्घृतधूममण्डलो बभूव भूयानिव तत्र पावकः॥

कि० १६/५६॥

(घ) रस की अभिव्यक्ति

'किरातार्जुनीयम्' में वीर रस की प्रधानता है। इसमें अन्य शृङ्गार आदि रसों का आयोजन अंग रूप से किया गया है। भारवि ने अर्थ के गाम्भीर्य की रक्षा करते हुए रसों का जो आयोजन किया है, वह सरल कार्य नहीं है। कृष्ण कवि ने इसी गुण के कारण भारवि के काव्य की प्रशंसा की है—

प्रदेशवृत्त्यापि महान्तमर्थं प्रदर्शयन्ती रसमादधाना।
सा भारवेः सत्पथदीपिकेव रम्याकृतिः कैरिव नोपजीव्या॥

अर्थात् महान् अर्थ को प्रकट करती हुई और रस को धारण करती हुई भारवि की रमणीय कृति उत्तम कार्य को दिखाने वाले दीपक के समान किन कवियों के मार्ग का निर्देशन कर सकती।

शारदातनय ने भी भारवि के काव्यों में विद्यमान और रस की प्रशंसा की है—

तादात्म्यं भावरसयोः स्पष्टमूचिवान् ।

भारवि के काव्य में प्रधान रूप से वीर रस की तथा अंग रूप में शृङ्गार आदि रसों की अभिव्यक्ति है। अंगी रसों में भी शृङ्गार ही मुख्य रूप से है। वीर रस की अभिव्यक्ति काव्य के प्रथम सर्ग से ही प्रारम्भ हो जाती है, जबकि द्रौपदी युधिष्ठिर के उत्साह को प्रबोधित करने और शत्रुओं से प्रतिशोध लेने के लिये ओज से भरे हुये शब्दों को कहती है। द्रौपदी के निम्न शब्दों में—

अवन्ध्यकोपस्य दिहन्तुरापदां भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः ।
अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषादरः ॥

वीर रस की निश्चय जागृति होती है। उसी प्रकार दूसरे सर्ग में भीम के वचनों में वीर रस की निश्चय अभिव्यक्ति है—

द्विरदानिव दिग्विभावितांश्चतुरस्तोयनिधीनिवायतः ।
प्रहसेत रणे तवानुजान् द्विषतां कः शतमन्यु तेजसः ॥ कि० २/२३ ॥

अर्थात् शत्रुओं में ऐसा कौन है, जो चार दिग्गजो और चार समुद्रों के समान, युद्धक्षेत्र में प्रस्थान करते हुये इन्द्र के समान तेजस्वी तुम्हारे छोटे भाईयों के पराक्रम को सहन कर सके ?

किरात और अर्जुन के युद्ध में कवि ने अर्जुन को आश्रय बनाकर वीररस की उत्तम व्यञ्जना की है। जब किरात के साथ युद्ध करते हुये अर्जुन के सभी शस्त्र असफल हो गये और उसके द्वारा फेंके गये वृक्षों और शिलाओं के प्रहार विफल रहे तब गंगा के प्रवाह को चीरते हुये मगर के समान अर्जुन ने शिव द्वारा फेंके गये बाणों को नदी के सम्मुख उपस्थित होकर सुवर्ण की चट्टान के समान सहन कर शिव के वक्षस्थल पर भुजाओं से प्रहार किया—

उन्मज्जन्मकर इवामरापगाया वेगेन प्रतिमुखमेत्य बाणनद्या ।
गाण्डीवी कनकशिलानिभं भुजाभ्यामाजघ्ने विषमलोचनस्य वक्षः ॥
कि० १७/६३ ॥

---

१. शृङ्गारादिरसोऽङ्गमत्र विजयी वीरः प्रधानो रसः । —मल्लिनाथ ।

'किरातार्जुनीयम्' के आठवें, नौवें और दसवें सर्गों में देवांगनाओं के वन-विहार, जलक्रीडा, रतिकेलि और अर्जुन को लुभाने के प्रयत्नों का वर्णन करने में कवि ने शृङ्गार रस की उत्तम अभिव्यञ्जना की है। परन्तु भारवि के ये शृङ्गार कालिदास और अश्वघोष के शृङ्गार के समान उदात्त और मर्यादित नहीं हैं। भारवि का शृङ्गार-वर्णन विलासवृत्ति और कामुकता को उभारने वाला है। भारवि के परवर्ती कवियों में इस अतिरञ्जित और अमर्यादित शृङ्गार की ओर प्रवृति उत्तरोत्तर बढ़ती गई है। भारवि के शृङ्गार के कुछ उदाहरण यहाँ देना उचित होगा—

लोलदृष्टिवदनं दयितायाश्चुम्बति प्रियतमेन रभसेन ।
व्रीडया सह विनीवि नितम्बादंशुकं शिथिलतामुपपेदे ।।

कि० ६/४७ ।।

प्रियतम द्वारा प्रियतमा के चञ्चल नेत्रों वाले मुख को जबरदस्ती चूसने पर नीवी के खुल जाने से लज्जा के साथ ही उनका वस्त्र भी नितम्ब से खुल गया।

अथवा–

व्यपोहितु लोचनतो मुखानिलैरपारयन्तं किल पुष्पजं रजः ।
पयोधरेणोरसि काचिदुन्मनाः प्रियं जघानोन्नतपीवरस्तनी ।।

कि० ८/१६ ।।

नेत्रों से फूलों के पराग को फूंक मारकर उड़ाने से असमर्थ प्रियतम की छाती पर किसी उन्मत्त हुई ऊँचे उठे हुये कठोर मोटे स्तनों वाली सुराङ्गना ने अपने स्तन से प्रहार किया।

अथवा—

अभिमुनि सहसा हृते परस्याः धनमरुता जघनांशुकैकदेशे ।
चकितमवसनोरु सत्रपायाः प्रतियुवतीरपि विस्मयं निनाय ।।

कि० १०/४५ ।।

तपस्वी अर्जुन के सम्मुख जाने पर वायु से जांघों के वस्त्रों के सहसा अपहृत हो जाने पर लज्जा करती हुई सुरांगना की जांघों के निरावरण हो जाने पर दूसरी युवतियाँ भी आश्चर्य से चकित हो गईं।

'किरातार्जुनीयम्' के आठवें, नौवें और दसवें सर्गों में कवि ने शृङ्गार का जो चित्रण किया है वह किसी एक कथानक का नैरन्तर्य प्रतीत न होकर मुक्त

शृङ्गार वर्णनों का समुदाय सा प्रतीत होता है। इसमें कोई कथानक का प्रवाह हो, ऐसा नहीं है, अपितु ये श्लोक नायक-नायिकाओं की शृङ्गार की विभिन्न अवस्थाओं के द्योतक हैं।

(ङ) प्रकृति चित्रण

भारवि ने अपने काव्य में यद्यपि प्रकृति का बहुत सुन्दर वर्णन किया है, तथापि उसका प्रकृति-चित्रण कालिदास के समान संवेदनशील नहीं है और उसकी मानवता के साथ तादात्म्यता नहीं होती। कालिदास की प्रकृति केवल उद्दीपन और आलम्बन ही नहीं है, अपितु वह पात्रों के साथ एकरूप हो जाती है। उसकी शकुन्तला वस्तुतः प्रकृति का एक रूप है। उसका शृङ्गार करने के लिये प्रकृति स्वयं वस्त्र-आभूषण और शृङ्गार-सामग्री उपहार में देती हैं। उनकी विदा में हरिणियाँ घास खाना छोड़ देती हैं और लतायें आँसू गिराती हैं। परन्तु भारवि प्रकृति के साथ अपने पात्रों की इतनी तादात्म्यता उत्पन्न नहीं कर पाये।

भारवि ने प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन दोनों रूपों का वर्णन किया है। महाकाव्यों की परम्परा के अनुरूप 'किरातार्जुनीयम्' में सूर्यास्त-वर्णन रात्रि-वर्णन, प्रभात-वर्णन, पर्वत-वर्णन, छः ऋतुओं का वर्णन आदि प्रकृति के सभी अंगों का वर्णन विशद रूप से है। परन्तु भारवि का यह प्रकृति-वर्णन प्रायः अलङ्कारों के बोझ से बोझिल हो गया है। प्रकृति के स्वाभाविक चित्रणों में यमक जैसे शब्दालंकारों की योजना करके कवि ने उनकी मनोरमता को कम ही किया है।

> कुररीगणः कृतरवस्तरवः कुसुमानताः सकलं कमलम्।
> इह सिन्धवश्च वरणवरणः करिणां मुदे सनलदानलदाः॥

किº ५/२५

यहाँ कुररी पक्षी बोल रहे हैं, वृक्ष फूलों से झुके हुए हैं, जल कमलों से युक्त है, नदियाँ वृक्षों से आवृत हैं, जल से युक्त हैं और ताप को दूर करती हैं। वे हाथियों को प्रसन्न करती हैं।

इस पद्य में प्रकृति के चित्रण की अपेक्षा यमक अलङ्कार की शोभा ही अधिक है। तरवः—तरवः, कमल—कमलम्, वरणा—वरणा, नलदा—नलदा में वर्णसमूह की आवृत्ति होकर यमक अलङ्कार का चमत्कार प्रदर्शित किया

गया है। तथापि अनेक स्थलों पर प्रकृति का चित्रण अनलंकृत होते हुये भी बहुत सुन्दर स्वाभाविक और मार्मिक है।

यथा—

विपाण्डु संव्यानमिवानिलोद्धतं निरुन्धतीः सप्तपलाशजं रजः।
अनाविलोन्मीलितबाणचक्षुषः सपुष्पहासा वनराजयोषितः॥

शुभ्र वर्ण के वायु से उड़ाये जाते हुये सप्तपर्ण के पराग को उत्तरीय के समान संभालती हुई निर्मल और खिले हुये बाण के वृक्षों रूप आँखों वाली एवं पुष्परूप हँसी हँसती हुई वनपंक्तियों रूपी युवतियों को उसने देखा।

अथवा

उपैति सस्यं परिणामरम्यतां नदीरनौद्धत्यमपङ्कतां मही।
नवैर्गुणैः संप्रति संस्तवस्थिरं तिरोहितं प्रेम घनागमश्रियः॥

कि० ४/२२॥

धान पक कर रमणीय प्रतीत होते हैं। नदी उद्धतता को छोड़कर रमणीय हो गई है। पृथिवी कीचड़ से रहित हो गई है। शरद् ऋतु ने अपने नवीन गुणों से वर्षा-ऋतु की शोभा के पुराने दृढ़ प्रेम को भी तिरोहित कर दिया है।

निम्न पद्य में गौओं से सायंकाल के समय घर लौटने के अति मनोरम वर्णन है—

उपारताः पश्चिमरात्रिगोचरादपारयन्तः पतितुं जवेन गाम्।
तमुत्सुकाश्चकुरवेक्षणोत्सुकं गवां गणाः प्रस्नुतपीवरोधसः॥

अर्थात् रात्रि से पिछले प्रहर में गोचर भूमि से लौटती हुई परन्तु तेजी से भूमि पर दौड़ने में असमर्थ होती हुई मोटे थनों से दूध को बहाती हुई गौओं ने अर्जुन को देखने के लिये उत्सुक बना दिया।

निम्न पद में कमलों के पराग के सौन्दर्य का वर्णन है—

उत्फुल्लस्थलनलिनीवनादमुष्मादुद्धूतः सरसिजसम्भवः परागः।
वात्याभिर्वियति विवर्तितः समन्तादाधत्ते कनकमयातपत्रलक्ष्मीम्॥

स्थल कमल खिल रहे हैं, उनसे पराग बिखर रहा है, बवण्डर द्वारा ऊपर उड़ाया जाकर वह स्वर्णनिर्मित छत्र की शोभा को धारण कर रहा है।

भारवि का यह वर्णन और बवण्डर से उड़ते हुये पराग की स्वर्णमय आत-

पत्र से उपमा देना कवियों में अतिप्रसिद्ध हुआ और इसने भारवि को आतपत्र भारवि की उपाधि प्रदान की।

वस्तुत: भारवि का प्रकृति-चित्रण आलम्बन की अपेक्षा उद्दीपन अधिक है। सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, छः ऋतुओं का वर्णन आदि कवि ने देवाङ्गनाओं द्वारा किये जाने वाले बिलासों की मादकता में वृद्धि करने के लिये किये है। उनका वर्णन इसीलिये है, कि उनसे कवि को उन्मादक वातावरण प्रस्तुत करने में अधिक सफलता मिली है। छः ऋतुओं का अलग-अलग आकाश और वन मे आविर्भाव अप्सराओं के आदेश से उन्मादक वातावरण के सर्जन के लिये ही होता है। वसन्त के वर्णन में—

श्वसनचलितपल्लवाधरोष्ठे नवनिहितेर्ष्यमिवावधूनयन्ती।
मधुसुरभिणि-षट्पदेन पुष्पे मुख इव शालनतावधूश्चुचुम्बे॥

कि० १०/३४॥

मानों नवीन ईर्ष्या से मान करती हुई शाल लता रूपी वधू के वायु रूप श्वसन से काँपते पल्लव रूप होठ वाले मकरन्द आदि मे सुगन्धित पुष्परूप मुख का भ्रमर ने चुम्बन किया।

(च) अलङ्कारों का आयोजन

भारवि ने काव्य में अलङ्कारों का प्रयोग अत्यधिक निपुणता से किया है। कवि ने शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार दोनों का यथास्थान प्रयोग किया है। तथापि इस विधान में भारवि पाण्डित्य प्रदर्शन के लोभ में फँस गये हैं। अनेक स्थलों पर उन्होंने अतिक्लिष्ट यमक एवं प्रहेलिकामय अलङ्कारों की योजना की है। परन्तु इस प्रकार के अलङ्कार आकृति के और युद्ध के चित्रणों में ही अधिक है। कवि जहाँ गम्भीर अर्थों से भरी वाणी का प्रयोग करते हैं, वहाँ उन्होंने उपमा, अर्थान्तरन्यास आदि सरल और स्वाभाविक अर्थालङ्कार का ही अधिक प्रयोग किया है। निम्न पद्य में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार हैं—

तथाऽपि जिह्मः स भवज्जिगीषया तनोति शुभ्रं गुणसम्पदा यशः।
समुन्नयन्भूतिमनार्यसंगमाद् वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः॥

कि० १/८॥

निम्न पद्य में भारवि ने श्लेष से अनुप्राणित उपमा की योजना की है—

कथाप्रसंगेन जनैरुदाहृतादनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः ।
तवाभिधानाद् व्यथते नताननः सः दुःसहान्मन्त्रपदादिवोरगः ॥

कि० १/२४ ॥

भारवि के अलङ्कारों की योजना में पाण्डित्य-प्रदर्शन की भावना का दर्शन हमको उनके चित्रालङ्कारों में मिलता है। ये अलंकार काव्य में यद्यपि अनेक स्थलों पर हैं, तथापि पन्द्रहवे सर्ग में इनका प्राचुर्य है। पन्द्रहवाँ सर्ग वस्तुतः कवि ने अलङ्कारों की कारीगरी को ही प्रदर्शित करने के लिये रचा प्रतीत होता है। निम्न श्लोक में गोमूत्रिकाबन्ध का चमत्कार है—

वेत्रशाककुंजे शैलेऽलेशैंजेऽकुंकशात्रवे ।
यात किं विदिशो जेतु तुंजेशो दिवि किं तया ॥ कि० १४/१५ ॥

इस पद्य में प्रत्येक पंक्ति को उल्टा सीधा पढ़ने से एक सा ही पढ़ा जायेगा। निम्न पद्य में प्रत्येक पाद में केवल एक वर्ण का प्रयोग है—

स सासिः सासुसूः सासो येयायेयाययाययः ।
ललौ लीलां ललोऽलोलः शशीशाशिशुशीः शशन् ॥ कि० १/१५ ॥

निम्न पद्य के चारों पदों में प्रत्येक बार उन्हीं पदों की आवृत्ति है, परन्तु उनका अर्थ भिन्न है—

विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणाः ।
विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणाः ॥

कि० १५/१२ ॥

निम्न पद्य में केवल एक ही वर्ण का प्रयोग है—

न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु ।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत् ॥ कि० १५/१४ ॥

(छ) छन्द विधान

भारवि ने 'किरातार्जुनीयम्' में लगभग १२ छन्दों का प्रयोग किया है। प्रथम सर्ग में १ से ४४ तक वंशस्थ, ४५ में पुष्पिताग्रा और ४६ में मालिनी छन्द है।

भारवि के वंशस्थ छन्द की आलोचकों ने प्रशंसा की है। श्री क्षेमेन्द्र उसकी प्रशंसा में कहते हैं—

वृतच्छत्रस्य सा काहि वंशस्थस्य विचित्रता ।
प्रतिभा भारवेर्येन सच्छायेनाधिकीकृता ॥

७. पूर्ववर्ती और परवर्ती कवियों के सन्दर्भ में भारवि

संस्कृत काव्यों की धारा में तीन मोड़ स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। पहला मोड़ 'रामायण' और 'महाभारत' का है। इनके रचयिता बाल्मीकि और व्यास हैं। इनको कवि की अपेक्षा महर्षि के नाम से अधिक जाना जाता है। इन काव्यों को भी काव्यों की अपेक्षा धार्मिक साहित्य के रूप में अधिक आदर मिला है। इन काव्यों में काव्य सम्बन्धी प्रतिभा के महान् उच्च मोहक और रंगीन विस्तृत दर्शन तो पहले ही हैं, साथ ही प्राचीन जनजीवन की, भारतीय महापुरुषों की, उनके धर्म, संस्कृति और सभ्यता की शक्तिशाली झाँकी मिलती है। इसके साथ ही यह भी माना जाता है कि ये काव्य कवियों ने अपने उस युग में लिखे; जबकि उनके काव्यों के पात्र स्वयं भी जीवित थे। बाल्मीकि को राम का और व्यास को युधिष्ठिर का समकालीन स्वीकार किया जाता है। इसीलिए उन काव्यों में जीवन की सचित्र अभिव्यक्तियाँ अधिक स्वाभाविक हैं। यद्यपि उनमें काव्यत्व है, भावों और रसों का स्मरण है, अलङ्कारों की सजावट है, पात्रों की अतिशयोक्ति से भरे हुए सौन्दर्य और वीरत्व का चित्रण है, तो भी काव्य वास्तविक जीवन की अभिव्यक्ति करते हैं और उनमें वर्णित घटनायें सत्य प्रतीत होती हैं। यद्यपि वे काव्य राजवंशों के चरित्र को प्रस्तुत करते हैं, तो भी उनमें सामान्य जनों के चित्रणों के साथ ही राष्ट्रीय एवं सामाजिक विशेषताओं की अभिव्यक्ति भी। यद्यपि उस युग में भारतवर्ष छोटे स्वाधीन राज्यों में बँटा हुआ था, तो भी वे राज्य राष्ट्र नहीं थे। उन ऋषियों की दृष्टि में सांस्कृतिक दृष्टि से एकता में घिरे हुए सभी राज्यों का समूह ही राष्ट्र था और उनको राजनीतिक दृष्टि से एकता में बाँधना कवियों को अच्छा प्रतीत होता था। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' जैसी देशभक्ति की भावनायें भी 'रामायण' जैसे काव्यों की ही देन हैं।

न केवल भावनात्मक और सांस्कृतिक दृष्टि से ही ये उच्च हैं, अपितु कविता के कौशल के विधान से भी ये कला के उच्च शिखर पर पहुँचे हुए हैं। इन काव्यों में कथानक का संगठन सशक्त और सुगठित है तथा भाषा का प्रवाह

सरल और प्रसाद गुण युक्त है। अलङ्कारों का इनमें स्वाभाविक सौन्दर्य है और विभिन्न रसों की सरस और स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। कवियों ने इनमें अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन करके क्लिष्टता उत्पन्न नहीं की। उन्होंने काव्य की सजावट के लिए उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा अर्थान्तरन्यास, स्वभावोक्ति आदि सरल और स्वाभाविक अलङ्कारों का ही प्रयोग किया है। इनके छन्द भी सरल और गेय हैं। यही कारण है कि इन काव्यों का भारतीय जनजीवन में बहुत अधिक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। ये काव्य केवल पण्डितों के लिए ही नहीं थे, अपितु जन सामान्य की सम्पत्ति वन गये थे। यही कारण है कि परवर्ती कवियों के लिए काव्य उपजीव्य हो गये और इनके आधार को लेकर उन्होंने अपनी रचनाओं का प्रणयन किया है।

काव्यधारा का दूसरा मोड़ कालिदास और अश्वघोष जैसे महाकवियों का रचनाओं में मिलता है। 'कुमारसम्भव', 'रघुवंश', 'मेघदूत', 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्', 'सौन्दरनन्द', 'बुद्धचरित' आदि काव्यों में इस नई धारा के दर्शन होते हैं। ये लेखक ऋषि नहीं हैं, अपितु महाकवि हैं। इनके काव्यों में 'रामायण' और 'महाभारत' का जनजीवन नहीं है, परन्तु इन्होंने काव्यों की शैली का और अधिक परिष्कार किया है। कथानक के संगठन, भाषा का सहज प्रवाह, भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति और कला के आदर्श का इनमें निश्चय ही परिष्कार हुआ है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि इन कवियों की रचनाओं में काव्यत्व का अधिक विकास हुआ है। वस्तुतः कालिदास के काव्यों में हमको संस्कृत काव्यों की भावात्मकता और कला के चरम परिष्कार और सर्वोत्कृष्टता के दर्शन होते हैं। इससे सभी कवियों और आलोचकों द्वारा प्रशंसित होकर वे राष्ट्रीय कविता के प्रतीक बन गये। कालिदास के बिना संस्कृत काव्यों का समूह निर्जीव सा प्रतीत होता है।

कालिदास के काव्यों में कथावस्तु के संगठन, पात्रों के चरित्र-चित्रण, भावों की अभिव्यक्ति और भाषा के सौन्दर्य का समुचित सन्तुलन हुआ है। इसने उनके काव्यों को भावी कवियों के लिये आदर्श बना दिया। यद्यपि कालिदास के काव्यों में काव्यशास्त्रीय नियमों का अन्धानुसरण नहीं है, तथापि वे शब्दों के उचित चयन, भावों के योग्य भाषा, अलङ्कारों के सरल और स्वाभाविक समावेश

एवं सरस तथा रोचक कल्पनाओं के कारण इसकी सर्जना करते हैं। उनके काव्यों में भावों और कला का उचित समन्वय है, जीवन की सरस संगति है और इसके साथ ही राष्ट्रीय संस्कृति का आदर्श भी है। कालिदास काव्य के बाह्य रूप की अपेक्षा आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति को अधिक महत्व देते हैं।

कालिदास के काव्यों में पात्रों को आदर्श रूप से प्रस्तुत करने के कारण नायकपक्षीय पात्रों के गुण ही दिखाये गये हैं। परन्तु 'रामायण' और 'महाभारत' में गुणों के साथ दोषों को बताने में भी संकोच नहीं किया गया। राम जहाँ मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, धीर हैं, गम्भीर हैं और सबको मार्ग दिखाने वाले हैं, वे भी अपने दुःखों में धैर्य छोड़कर अत्यधिक विह्वल हो जाते हैं। सीता का विछोह उनकी धीरता को विलुप्त कर देता है। युधिष्ठिर सभी गुणों से सम्पन्न होते हुए भी द्यूत के व्यसनी हैं और द्यूतक्रीड़ा करते हुए उचित और अनुचित को भूलकर अपने भाइयों तथा पत्नी को भी दाँव पर लगा देते हैं। नायक के दोष के लिये कवि उसे क्षमा नहीं करता।

इसके विपरीत कालिदास के नायक-पक्षीय पात्र दोषों से रहित तथा गुणों से सम्पन्न हैं, कवि उनके दोषों को अपने काव्य-कौशल से छिपा देता है। निर्दोष पतिव्रता सीता के परित्याग करने वाले राम को आक्षिप्त करने के लिये उनके पास एक शब्द नहीं था। इसका कारण सम्भवतः यह रहा होगा कि उस युग में राम अवतार के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे और पुरुष रूप में अवतीर्ण भगवान् में दोषों की उद्भावना लोकमानस की भावना के विपरीत होती। परन्तु उनके अन्य काव्यों में यही प्रवृत्ति दिखाई देती है। शकुन्तला का परित्याग करने में दोषी दुष्यन्त के अपराध को उन्होंने दुर्वासा के शाप की कल्पना करके छिपाया।

कालिदास द्वारा नायक में किसी दोष को न दिखाना परवर्ती कवियों के लिये स्वीकरणीय आदर्श बन गया और काव्यशास्त्रों में यह नियम बना कि कवि को नायक में दोषों की उद्भावना नहीं करनी चाहिये। यदि उसमें कोई दोष हो तो उसको अन्य प्रकार से इस प्रकार लिखना चाहिये कि दोष प्रतीत न हो।[1]

---

१. यत्स्यादनुचितं वस्तु नायकस्य रसस्य वा।
विरुद्धं तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत्॥ साहित्यदर्पण ६/५०

कालिदास और अश्वघोष के बाद संस्कृत काव्य की धारा को भारवि ने एक ओर मोड़ दिया। भारवि के पास अपने से पहले के कवियों,—बाल्मीकि, व्यास, कालिदास, अश्वघोष, आदि की समृद्ध परम्परा विरासत के रूप में उपलब्ध थी। उन्होंने इस परम्परा को ग्रहण करके भी एक नया मोड़ दिया। अब तक कविताओं में भावपक्ष और कलापक्ष का उचित सन्तुलन था और उसमें कवियों ने भावपक्ष को अधिक महत्व दिया था। परन्तु भारवि ने अपने काव्य में कलापक्ष और पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति को अधिक महत्व दिया। यद्यपि भारवि जहाँ काव्य की वाणी की विशेषताओं को बताते हैं वहाँ पदों के तथा अर्थों के गौरव को अधिक महत्व देते हैं। परन्तु व्यवहार में वे शब्दों की क्रीड़ा, चित्रालङ्कारों के प्रयोग और पाण्डित्य-प्रदर्शन के मोह में भी फँस जाते हैं। काव्य के प्रारम्भ में इस प्रकार की प्रवृत्ति न होने पर भी काव्य के प्रवाह के आगे बढ़ाने के साथ उनकी यह प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। "किरातार्जुनीयम्" के पन्द्रहवें सर्ग में यह प्रवृत्ति चरम अवस्था तक पहुँचती हुई दिखाई देती है।

कालिदास के समान भारवि की रीति वैदर्भी है। परन्तु यह इस प्रकार की वैदर्भी नहीं हैं, जैसी कालिदास की है। भारवि ने लम्बे समासों और क्लिष्ट पदावली का अधिक प्रयोग नहीं किया, तथापि उनके पदों के अर्थों में वह लालित्य, सरलता और स्पष्टता नहीं है, जो कालिदास के काव्यों में दिखाई देती है। इसीलिए मल्लिनाथ ने भारवि के काव्य को नारिकेलसम्मित कहा। इसके कठोर आवरण को परिश्रम से तोड़कर ही अन्दर का मीठा सरस फल चखा जा सकता है।

भारवि के पूर्ववर्ती काव्यों में विभिन्न प्रकार के वर्णनों के होने पर भी उनकी कथा-धारा मन्थर गति से अविच्छिन्न रूप से चलती जाती थी। उसमें अवरोध बहुत कम था। परन्तु भारवि ने नवीन पद्धति का प्रचलन किया। उन्होंने एक छोटे से कथानक को बड़े महाकाव्य के रूप में फैला दिया। इसमें कथा अंश तो कम हो गया परन्तु वर्णनों का प्राचुर्य हुआ। इस कारण कथा का अवरोध तो हुआ ही, वर्णनों की अधिकता से उनमें पुनरावृत्ति का दोष भी अनेक स्थानों पर उत्पन्न हुआ। प्रबन्धकाव्यों में कथा के प्रवाह का बार-बार अवरोध उसकी प्रभावोत्पादकता को कम कर देता है।

भारवि से पूर्व के कवियों में हमको अति विनयशीलता के दर्शन होते हैं। रघुवंश को प्रारम्भ करने वाले महाकवि कालिदास में चरम विनयशीलता है। वे कहते हैं कि कहाँ तो महान् सूर्यवंश और कहाँ मेरी छोटी-सी तुच्छ बुद्धि। मैं छोटी-सी नौका से विशाल समुन्दर को पार करने के लिये उद्यत हुआ हूँ। यश को चाहने वाला मैं मूर्ख कवि सबके उपहास का पात्र बनूंगा।[1] मेरा प्रयत्न ऐसा ही है, जैसा एक बौना हाथों को उठाकर ऊँचे फल को प्राप्त करना चाहता है। परन्तु भारवि में हमें इस विनीत स्वभाव के दर्शन नहीं होते। वे अपने काव्य की वाणी के गुणों को दृढ़ शब्दों में घोषित करते हैं कि इसमें पदों और अर्थों की गुरुता है। यह गर्वीली प्रकृति कवियों में उत्तरोत्तर बढ़ती गई है। श्रीहर्ष में यह प्रकृति यहाँ तक पहुँची कि उन्होंने अपने काव्य में घोषणा की कि उनके काव्य को हर कोई नहीं पढ़ सकता। इसमें बड़े प्रयत्न से गांठे लगा दी गई हैं, जिन्होंने श्रद्धा के साथ गुरु की सेवा की हो वे ही इस काव्य-रस का आस्वादन कर सकते हैं।[2]

भारवि से पहले के काव्यों में काव्य की सफलता के लिये ईश्वर की वन्दना को अवश्य ध्यान दिया जाता था। 'रघुवंश' को प्रारम्भ करते हुए कालिदास शिव और पार्वती की वन्दना करते हैं। 'कुमारसम्भव' को यद्यपि कथावस्तु से प्रारम्भ होने वाला काव्य कहा जाता है, तथापि उसमें पहले अनेक पद्यों में हिमालय की वन्दना की गई है। हिमालय को आर्य विचारधारा के अनुसार देवरूप समझा जाता है। भारवि सीधा विषयवस्तु को लेकर काव्य को प्रारम्भ करते हैं। महाकाव्य के लक्षण में दण्डी ने कहा—'आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो

---

१. क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुः दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्॥
मन्दः कवि यशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः॥ रघुवंश १/२-३॥

२. ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित्क्वचिदपि न्यस्ता प्रयत्नान्मया
प्राज्ञंमन्यमना: हठेन पठिती माऽस्मिन् खलः खेलतु।
श्रद्धाराद्धगुरुश्लथीकृतदृढग्रन्थिः समासादय-
त्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जनं पण्डितः॥ नैषध० २२/१५२॥

वापि तन्मुखम्''। अर्थात् महाकाव्य का प्रारम्भ आशीर्वाद और नमस्कार के अतिरिक्त कथावस्तु को निर्देश करके भी किया जा सकता है। सम्भवतः यह कथन भारवि के काव्य का अवलोकन करके ही हुआ होगा। भारवि की इस पद्धति का अनुसरण संस्कृत के अन्य महाकाव्यकारों ने भी किया यद्यपि इनमें प्रकारान्तर से मंगलाचरण भी समालोचकों ने सिद्ध किया है। भारवि और माघ के काव्य इस दृष्टि से अधिक समान हैं। दोनों ही श्री शब्द से प्रारम्भ होते हैं। इस शब्द को मङ्गलसूचक समझा जाता है। 'नैषधीयचरितम्' का प्रारम्भ राजा नल से किया जाता है, इसकी कीर्तन करना कलि को विनाश करने वाला समझा जाता है।

भारवि ने काव्यों में भावपक्ष के साथ-साथ कलापक्ष के महत्व को भी बढ़ाया। उन्होंने पाण्डित्य-प्रदर्शन को भी प्रश्रय दिया। काव्यात्मक प्रतिभा की दृष्टि से इस प्रवृत्ति को आधुनिक समालोचक अधिक ग्राह्य नहीं समझते। इसलिए आधुनिक समालोचकों के मत में भारवि संस्कृत महाकाव्यों में ह्रास के युग को प्रारम्भ करने वाले हैं।

भारवि की इस वृत्ति का प्रभाव संस्कृत के परवर्ती कवियों पर निश्चित रूप से पड़ा है। वृहत्त्रयी के अन्य दोनों काव्यों—माघ के 'शिशुपालवध' और श्रीहर्ष के नैषधीयचरितम्' पर भारवि की कृत्रिम और पाण्डित्य-प्रदर्शन की शैली स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है और वे इस विषय में भारवि से कहीं आगे बढ़ गये हैं। भारवि के बाद काव्यों में शाब्दिक क्रीडाओं, अलङ्कारिक चमत्कारों, अनेकार्थक शब्दों के प्रयोगों, लम्बे-लम्बे वर्णनों आदि के द्वारा पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति बढ़ती ही गई है। महाकवि श्रीहर्ष में तो यह प्रवृत्ति यहाँ तक बढ़ी कि वे गर्वपूर्वक कहते हैं कि उन्होंने अपने काव्यों में प्रयत्न पूर्वक ग्रन्थियों को निहित किया है। अपने आपको वृथा ही बुद्धिमान् समझने वाले खल इनसे न खेलें। इस प्रकार भारवि के पश्चात् काव्यों में भावपक्ष निर्बल होकर कलापक्ष अधिक प्रबल हो गया। केवल महाकाव्यों की रचना में ही नहीं अपितु अन्य प्रकार की कविताओं में भी शास्त्रीय ज्ञान और पाण्डित्य के प्रदर्शन की प्रवृत्ति बढ़ी रही है।

भारवि ने कलापक्ष को महत्व देते हुए भी भावपक्ष के महत्व को कम नहीं

---

१. काव्यादर्श १/१४॥

माना। अलंकृत काव्य-शैली को अपनाकर भी वे रसाभिव्यञ्जना से दूर नहीं होते। इस सम्बन्ध में वे कालिदास का अनुवर्तन करते हैं। उनके काव्यों में शब्दों की गुरुता, अर्थों का गौरव, अलङ्कारों की समुचित योजना, कल्पनाओं का उच्च विकास, वर्णनों की सजीवता, शास्त्रों का ज्ञान, रसों की अभिव्यञ्जना सभी तत्व, उपस्थित हैं और उन्होंने इन सबका उचित सन्तुलन किया है।

भारवि का सबसे अधिक प्रभाव माघ की रचना 'शिशुपालवध' में देखा जा सकता है। भारवि के समान माघ ने भी अपनी कथावस्तु को 'महाभारत' से लिया है। वे काव्य को कथावस्तु के निर्देश के साथ 'श्र' शब्द से प्रारम्भ करते हैं। भारवि के समान वे राजनीतिक संवाद, प्रकृति के विविध चित्रण, विविध छन्दों की रचना, चित्रकाव्य का निर्माण आदि में रुचि लेते हैं। परन्तु भारवि के समान वे शब्द और अर्थों की गुरुता को भी किसी सीमा तक बनाये रखते हैं। यद्यपि भारवि की अपेक्षा पाण्डित्य-प्रदर्शन की ओर उनकी प्रवृत्ति अधिक बढ़ी है।

उन परवर्ती कवियों से भावपक्ष और कलापक्ष का सन्तुलन बना नहीं रह सका। उस युग की प्रवृत्ति ही इस प्रकार की हो गई थी कि कविता में भावों की प्रवणता की अपेक्षा पाण्डित्य-प्रदर्शन का ही अधिक आदर था। इसीलिये बृहत्त्रयी के तीनों काव्यों की तुलना करते हुए एक आलोचक ने यह वचन कहा—

> तावद् भा: भारवे: भाति यावन्माघस्य नोदय:।
> उदिते नैषधे काव्ये क्व माघ: क्व च भारवि:॥

अर्थात् भारवि की कान्ति उसी समय तक है, जब तक माघ का उदय नहीं होता। किन्तु नैषध काव्य का उदय होने पर कहाँ माघ रहता है और कहाँ भारवि रहता है।

८. 'किरातार्जुनीयम्' की प्राचीन टीकायें

भारवि के अर्थगौरव ने विद्वानों को अपनी ओर आकृष्ट किया और 'किरातार्जुनीयम्' की व्याख्या करने के लिए अनेक टीकायें लिखी गई। श्री कृष्णमाचारी ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में 'किरातार्जुनीयम्' की ३४ टीकाओं का उल्लेख किया। परन्तु इस समय मुख्य रूप से दो टीकायें उपलब्ध होती हैं—(१) मल्लिनाथ की घण्टापथ टीका और (२) चित्रभानु की शब्दार्थ-

दीपिका टीका। इन दोनों में मल्लिनाथ का घण्टापथ टीका अधिक प्रचलित है। मल्लिनाथ की टीका पूरे 'किरातार्जुनीयम्' पर है, परन्तु चित्रभानु की टीका केवल पहले तीन सर्गों पर उपलब्ध होती है।

मल्लिनाथ

संस्कृत साहित्य में टीकाकारों के रूप में मल्लिनाथ बहुत प्रसिद्ध है। आपने 'किरातार्जुनीयम्' के अतिरिक्त 'मेघदूत', 'रघुवंश', 'कुमारसम्भव', 'शिशुपालवध', 'नैषधीयचरितम्', 'भट्टिकाव्य', 'तार्किकरक्षा', 'नलोदय', 'प्रशस्तपादभाष्य' और 'लघुशब्देन्दुशेखर', पर टीकायें लिखी हैं। उनकी टीकाओं को देखने से विदित होता है कि वे व्याकरण, कोष, दर्शन और पुराणों के प्रकाण्ड पण्डित थे। इन शास्त्रों के अध्ययन का आपने अपनी टीकाओं में यथास्थान प्रयोग किया है।

मल्लिनाथ, काश्यप गोत्र में उत्पन्न हुये तेलगू ब्राह्मण थे। इनके वंश की उपाधि कोलाचल थी। विद्वत्ता के कारण ये महामहोपाध्याय कोलाचल मल्लिनाथ कहलाते थे।

मल्लिनाथ के पितामह का नाम मल्लिनाथ और पिता का नाम कपर्दिन् था। इनके दो पुत्र थे—पेड्डिभट्ट और कुमारस्वामिन्। कुमारस्वामिन् भी प्रसिद्ध टीकाकार हुये। उन्होंने काव्यशास्त्र के पसिद्ध ग्रन्थ 'प्रतापरुद्रीय' पर टीका लिखी थी।

मल्लिनाथ चौदहवीं शताब्दी के अन्त और पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुये थे। रेचर्ल वंश के राजा सर्वज्ञ भूपालसिंह ने उनका कनकाभिषेक कराया था। काञ्ची के निकट प्राप्त एक अभिलेख के अनुसार विजय नगर के राजा देवराज प्रथम ने उनको वैंग्य और व्यापारी शब्दों के निर्णय के लिये बुलवाया था। इस निर्णय की पाण्डुलिपि सुरक्षित है और उनके अनुसार उसका समय १४००–१४१४ ई० होता है।

मल्लिनाथ को अपनी विद्या पर गर्व था। उन्होंने अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया था। 'किरातार्जुनीयम्' की टीका के प्रारम्भ में वे अपने विषय में लिखते हैं—

वाणीं काणभुजीमजीगणदवाशासीच्च वैयासकी-
मन्तस्तन्त्रमरंस्त पन्नगगवीगुम्फेषु चाजागरीत्।

योषामाचकलत्रहस्यमखिलं यश्चाक्षपादस्फुरं
लोकोऽभूद् यदुपज्ञमेव विदुषां सौजन्यजन्यं यशः ॥
मल्लिनाथकविः सोऽयं महामहोपाध्यायशब्दभाक् ।
तत्किरातार्जुनीयाख्यं काव्यं व्याख्यातुमिच्छति ॥

इसके साथ ही वे लिखते हैं कि अर्थगाम्भीर्य की दृष्टि से 'किरातार्जुनीयम्' महत्वपूर्ण है। सामान्य पाठक के लिये इसका अर्थ समझ पाना कठिन है। पाठकों को इस काव्य में सुखपूर्वक प्रवेश कराने के लिये मल्लिनाथ ने इसके पदों की व्याख्या की। भारवि-काव्य नारिकेल के फल के समान है, जो ऊपर से कठोर आवरण से ढका हुआ है, परन्तु भीतर से रसभरा तथा स्वादिष्ट है। मल्लिनाथ को धन्यवाद है, जो उन्होंने इस कठोर आवरण को हटाकर सहृदयों को इस स्वादिष्ट फल के रस के आस्वादन का अवसर दिया।

चित्रभानु

'किरातार्जुनीयम्' के दूसरे प्रसिद्ध टीकाकार चित्रभानु हैं। उनकी टीका सम्पूर्ण काव्य पर नहीं है, अपितु केवल पहले तीन सर्गों पर है। इसका प्रकाशन त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज की तिरेसठवीं संख्या में हुआ है। इसका सम्पादन महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री ने किया है। इस टीका का नाम शब्दार्थ-दीपिका है। तीन सर्गों की टीका होने के कारण इसको 'त्रिसागरिका' भी कहते हैं। चित्रभानु न इस टीका के द्वारा भारवि के काव्य के अध्ययन और रसास्वादन का मार्ग प्रशस्त किया है। उन्होंने सारे ग्रन्थ पर अपने आप टीका न लिखकर सहृदय पाठकों को अवसर दिया है कि वे उनके मार्ग से परिचित होकर स्वयं ही काव्य के रस का आस्वादन करें। उन्होंने लिखा है—

स्फुरन् मनाग् भारविभारतीगतं मनोरमं वस्तु गभीरमद्भुतम् ।
अपुष्कलो लक्षणलक्ष्यगोचरः श्रम : वाचालतरं करोति माम् ॥

मल्लिनाथ और चित्रभानु की टीका में बहुत अन्तर है। मल्लिनाथ ने काव्य की सामान्य व्याख्या की है। उनके द्वारा की गयी व्याख्या सम्पूर्ण काव्य की होने के कारण उसका कलेवर बहुत विस्तृत हो गया था और लम्बी व्याख्या करने के लिये उनके पास स्थान नहीं था। परन्तु चित्रभानु ने केवल तीन सर्गों की व्याख्या की है और उसने प्रत्येक पद के मार्मिक अर्थ को स्पष्ट किया है। उन्होंने प्रत्येक शब्द,कारक, प्रकृति-प्रत्यय, लकार के प्रयोग, परस्मैपद-आत्मनेपद

के प्रयोग आदि का सूक्ष्म विवेचन करके कवि की वाणी के मर्म तक पहुँचने में पाठकों की सहायता की। इस दृष्टि से चित्रभानु की व्याख्या मल्लिनाथ की व्याख्या की अपेक्षा अधिक गम्भीर और विशद है।

'किरातार्जुनीयम्' का प्रथम सर्ग

'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य भारवि की एकमात्र रचना उपलब्ध है और इस एक रचना ने ही उनको कवियों की सबसे आगे की पंक्ति में स्थान दे दिया है। काव्य का प्रथम सर्ग भारवि की कविता का सबसे श्रेष्ठ उदाहरण है। इसमें भारवि की काव्यप्रतिभा, वर्णन, कौशल, शब्दगौरव, राजनीतिक ज्ञान आदि गुण अभिव्यञ्जित होते हैं। इसलिये प्रथम सर्ग पर कुछ विस्तृत विचार प्रकट करना अधिक उपयुक्त होगा। प्रथम सर्ग में भारवि ने दो घटनाओं का वर्णन किया है—वनेचर द्वारा युधिष्ठिर को दुर्योधन के समाचार देना और द्रौपदी द्वारा युधिष्ठिर के क्रोध को उभारने का प्रयत्न करना—

(क) वनेचर द्वारा युधिष्ठिर को प्रदत्त सूचनायें

द्वैतवन में रहते हुये युधिष्ठिर ने दुर्योधन के विचारों और कार्यों के सम्बन्ध में समाचार को जानने के लिये एक वनेचर को गुप्तचर के रूप में नियुक्त किया। वह ब्रह्मचारी के वेष में कुरुक्षेत्र में घूमता रहा और वहाँ के सारे वृत्तान्तों को जानकर द्वैतवन में युधिष्ठिर के पास आया। राजा को प्रणाम करके उसने स्पष्ट शब्दों में दुर्योधन की नीतियों, कार्यों और इरादों के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा—

राजन्! आपसे जुए में राज्य को जीतकर भी आपके वन में रहने पर भी दुर्योधन आपसे सदा आशङ्कित रहता है। अब वह नीति के मार्ग का प्रयोग करके उस राज्य को सुदृढ़ करने में लगा हुआ है। इन्द्रियों को वश में करके वह सेवकों और सामन्तों को अपने प्रति अनुरक्त बना रहा है और प्रजा के हितकारी कार्यों को कर रहा है।

दुर्योधन ने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मत्सर इन छः शत्रुओं को जीत लिया है। प्रशासन का संचालन करने के लिये वह नीति और पराक्रम दोनों का प्रयोग करता है, सेवकों और बन्धुओं को वह सदा प्रसन्न करता है। धर्म, अर्थ और काम इन पुरुषार्थों को सिद्ध करने के लिये वह सदा उचित साधनों का प्रयोग करता है। साम, दान, दण्ड और भेद इन चारों उपायों का

उसने सफलता के साथ प्रयोग किया है। वह गुणी जनों का आदर करता है और उनको प्रभूत मात्रा में उपहार देता रहता है। उसके अनुयायी उससे प्रभूत धन प्राप्त करके उसके कृतज्ञ हैं। उसके प्रशासन में पक्षापात नहीं है। वह समदर्शी होकर दण्ड का प्रयोग करके धर्म की रक्षा करता है।

राजन् ! सामन्त राजा प्रभूत उपहारों को देकर दुर्योधन के कोष में निरन्तर वृद्धि करते हैं अपने आदेश का पालन करने के लिये उसको बल का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं होती। दुर्योधन के गुणों के कारण वे प्रसन्नता से उसके आदेश का पालन स्वयं ही करते हैं। दुर्योधन ने शक्तिशाली धनुर्धारी योद्धाओं को संगृहीत किया है। वे ओजस्वी और अभिमानी है। युद्धों में उन्होंने यश प्राप्त किया है। दुर्योधन से वे मान और धन प्राप्त करते हैं, इसलिये उनको तोड़ा नहीं जा सकता। प्राणों को देकर भी वे दुर्योधन का इष्ट करेंगे।

प्रजा का रञ्जन दुर्योधन को इष्ट है। उसने सिचाई के लिये नहर आदि साधनों का प्रबन्ध किया है। इसलिये किसान केवल वर्षा पर निर्भर नहीं हैं। उनके खेतों में प्रभूत अन्न होता है। इससे वह राज्य यज्ञों से सम्पन्न हो गया है। दुर्योधन धार्मिक अनुष्ठान की ओर से भी उदासीन नहीं है। दुःशासन को युवराज बनाकर वह यज्ञों का अनुष्ठान कर रहा है।

राजन् ! इस प्रकार इतने बड़े राज्य का स्वामी होकर, प्रशासन को सुदृढ़ करके भी वह आपके भय से बेचैन रहता है। अर्जुन के पराक्रम का स्मरण करके उसका हृदय सदा व्यथित होता रहता है। इसके लिये वह आप सब भाईयों को मारने की योजना, बना रहा है। अब इस सम्बन्ध में आपको शीघ्र से शीघ्र उचित प्रतिकार करना चाहिये।

(ख) द्रौपदी द्वारा युधिष्ठिर को उद्बोधन

वनेचर द्वारा लाये गये समाचार को सुनकर युधिष्ठिर ने उसको यथोचित पारितोषिक दिया। उसके चले जाने पर वे द्रौपदी के पास गये। उस समय उसके चारों छोटे भाई भी वहाँ बैठे हुये थे। युधिष्ठिर से दुर्योधन की सफलता को सुनकर द्रौपदी अपने क्रोध पर नियन्त्रण न रख सकी। वह क्रोध को भड़काने वाले निम्न वाक्यों को कहने लगी—

यद्यपि मुझ नारी का आपको उपदेश देना आपके प्रति आक्षेप ही है, तथापि मुझ पर जो विपत्तियाँ आयी हैं, उन्ही से बाधित होकर मैं इस प्रकार कह रही

हूँ। जिस राज्य को इन्द्र के समान पराक्रमी आपके पूर्वज चिरकाल तक धारण करते रहे, उसे आपने अपने ही कार्यों से गवा दिया। वे व्यक्ति मूर्ख होते हैं, जो कपटी शत्रुओं के प्रति कपट का आवरण नहीं करते। आप जैसा कुलाभिमानी संसार में और कौन हो सकता है जो साधन सम्पन्न न होने पर भी कुलपरम्परा से आई राजलक्ष्मी को और प्रेम करने वाली सुन्दर कुलवधू को स्वयं ही शत्रुओं से अपहृत करा दे। हे मनुष्यों में देवता! आश्चर्य है कि राजा होकर भी इस प्रकार का निन्दनीय जीवन व्यतीत करते हुये आपका हृदय क्रोध से जल नहीं जाता। सफल क्रोध करने वाले व्यक्ति सबको अनायास वश में कर लेते हैं। किन्तु जो क्रोध नहीं कर सकता, मित्र उसका आदर नहीं करते और शत्रु भी उसका भय नहीं खाते।

देखिये आपके भाईयों की कैसी दुर्दशा है। जो भीम सदा लाल चन्दन का लेप करता था, वह धूलि से धूसरित हो रहा है। जिस अर्जुन ने अनेकों देशों को जीतकर आपको प्रभूत धन दिया था, वह वल्कल वस्त्रों का संचय कर रहा है। वन की कठोर भूमि पर सोने से नकुल और सहदेव का स्वरूप बिगड़ गया है।

आपकी बुद्धि को मैं नहीं जानती। परन्तु आपकी आपत्तियों को देखकर मेरे मन में बहुत पीड़ा होती है। कहाँ तो प्रासादों में बहुमूल्य शैय्याओं पर सोये हुये आपको जगाने के लिये मङ्गल गान गाये जाते थे और कहाँ अब कुशबहुल वन भूमि में सोये आप गीदड़ियों की रुदन ध्वनि से जागते हैं। कहाँ आप ब्राह्मणों को भोजन कराकर नाना प्रकार के स्वादिष्ट और पौष्टिक भोजन किया करते थे और कहाँ अब वन्य फल खाकर कृश हो रहे हैं। कहाँ मणिजटित चौकी पर रखे आपके चरणों में राजा प्रणाम किया करते थे और कहाँ अब वनों में उन्हीं चरणों में नोकीली कुशायें चुभती है।

मुझे पीड़ा इसलिये भी अधिक होती है कि सब ये आपत्तियाँ शत्रु द्वारा उत्पन्न की गई हैं और आपने इन्हें कायरतावश स्वीकार कर लिया है। पराक्रम को प्रदर्शित करके हार जाना भी अच्छा है। इसीलिये हे राजन्! शान्ति को छोड़कर तेजस्विता प्रकट करते हुये आप शत्रुओं के वध के लिये उद्यत हो जाइये। शान्ति मुनियों के लिये ही होती है, राजाओं के लिए नहीं। यदि आप जैसे तेजस्वी और यशस्वी भी इस प्रकार के अपमान को सहन कर लेंगे तो संसार से स्वाभिमान ही समाप्त हो जायेगा।

राजन् ! यदि आप समझते हैं कि एकमात्र शान्ति ही सुख का साधन है, तो राज्य के चिन्ह इस धनुष को त्याग दीजिये और जटाओं को धारण करके यहाँ अग्नि में आहुतियाँ देते रहिये। यदि आप यह सोचते हैं कि हमको प्रतिज्ञा का पालन करना उचित है एवं वनवास तथा अज्ञातवास की अवधि की प्रतीक्षा करनी चाहिये तो यह भी उचित नहीं है। विजय को प्राप्त करने के इच्छुक राजा बहाने बनाकर संधियाँ तोड़ देते हैं। अब प्रतिज्ञा की रक्षा के निमित्त और अधिक प्रतिक्षा करना उचित नहीं हैं आप शत्रुओं का संहार करके पुनः राज्यलक्ष्मी को प्राप्त कीजिये।

(ग) राजनीतिक विचार

भारवि राजनीति के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनकी यह राजनीतिज्ञता "किरातार्जुनीयम्" के प्रथम सर्ग से ही व्यञ्जित होती आरम्भ होनी है। प्रथम सर्ग में उन्होंने राजनीति के जिन प्रयोगों का उल्लेख किया है, उनको संक्षेप में नीचे दिया जाता है—

१) गुप्तचर-व्यवस्था—अपने देश तथा दूसरे देशों की स्थितियों और वृत्तान्तों का जानने के लिये राजा को गुप्तचरों की नियुक्ति करनी चाहिये। राजाओं को चारचक्षु कहा जाता है। गुप्तचरों द्वारा लाये गये समाचारों के आधार पर ही राजा अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर सकता है।

गुप्तचर अनेक प्रकार के वेशों को वनाने में निपुण होने चाहियें। उनको राजा का हितैषी होना चाहिये और राजा की प्रसन्नता या अप्रसन्नता का विचार न करके अच्छे या बुरे समाचारों को कहने में संकोच नहीं करना चाहिये। वे शत्रुओं के गुप्ततम भेदों को भी निकाल लाने में समर्थ होने चाहिये। राजा के पास वे जो समाचार ले जावें, वे प्रमाणों द्वारा निश्चित होने चाहिये।[1]

(२) राजा और मन्त्रियों में सदा एकमत रहना चाहिये। उमके एक-दूसरे के अनुकूल रहने पर ही राजा की समृद्धि रहती है।[2]

(३) राजा अपनी इन्द्रियों को वश में करके काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर इन छः आन्तरिक शत्रुओं को जीते। तभी सफल हो सकता है।[3]

(४) केवल नीति का प्रयोग या केवल पराक्रम, प्रशासन को स्थिर नहीं

---

१. किरातार्जुनीयम् १/३ ॥

२. किरातार्जुनीयम् १/५ ॥ ३. किरातार्जुनीयम् १/६ ॥

रख सकते। अवसर के अनुकूल नीति और पराक्रम दोनों का प्रयोग आवश्यक है।[१]

(५) राजा के लिये धर्म, अर्थ और काम तीनों की सिद्धि आवश्यक है। तीनों को प्राप्त करने के उसे यथोचित उपाय करने चाहिये।[२]

(६) अनुरक्त सेवक ही प्रशासन को दृढ़ कर सकते हैं। राजा को इस प्रकार व्यवहार करना चाहिये कि सेवक उनको अपना स्नेही मित्र समझे।[३] उसे चाहिये कि वह गुणों के अनुसार सेवकों का सम्मान करे और उनको प्रचुर धन दे।[४]

(७) राजनीति में साम, दान, दण्ड और भेद इन चारों उपायों का यथोचित प्रयोग सफलता देने वाला होता है।[५]

(८) राजा को इतना प्रभावशाली होना चाहिये कि आदेशों का पालन कराने के लिये उसे बल प्रयोग का सहारा न लेना पड़े। उसके गुणों के प्रति अनुरक्त होकर ही उसके अधीनस्थ व्यक्ति उसके आदेशों का पालन करते रहें।[६]

(९) प्रजा की समृद्धि और प्रसन्नता में ही राजा की समृद्धि और स्थिरता है। प्रजा की समृद्धि के लिये उसे सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये। कृषि की समृद्धि राज्य की समृद्धि है। राजा को चाहिये कि वह कृत्रिम सिंचाई के साधनों, नहरों, कुंओं आदि का प्रबन्ध करता रहे। कृषि केवल वर्षा पर ही निर्भर रहे।[७]

(१०) राज्य की रक्षा के लिये राजा को तेजस्वी, पराक्रमी और युद्ध-विद्या में कुशल योद्धाओं का संग्रह करना चाहिये। उसे उनका मान और धन से सदा सत्कार करना चाहिये, जिससे कि शत्रु उनको अपनी ओर फोड़ न सके।[८]

(११) राजा को केवल राजनीतिक-कार्यों की ओर ही ध्यान न देकर धार्मिक कर्त्तव्यों के पालन में भी प्रयत्नशील रहना चाहिये।[९]

---

१. किरातार्जुनीयम् १/६ ॥ २. किरातार्जुनीयम् १/११ ॥
३. किरातार्जुनीयम् १/१० ॥ ४. किरातार्जुनीयम् १/१२ ॥
५. किरातार्जुनीयम् १/१२–१४ ॥ ६. किरातार्जुनीयम् १/२१ ॥
७. किरातार्जुनीयम् १/१७ ॥ ८. किरातार्जुनीयम् १/१६ ॥
९. किरातार्जुनीयम् १/२२ ॥

(१२) राजा को पक्षपात से रहित होकर शासन करना चाहिये। न्याय की व्यवस्था में चाहे कोई शत्रु हो, चाहे स्नेही, सम्बन्धी, सभी समान होने चाहियें।[१]

(१३) राजा को चाहिये कि वह "शठे शाठ्यं समाचरेत्" की नीति का पालन करे। कपटी व्यक्तियों के प्रति कपट का व्यवहार करना उचित है।[२]

(१४) केवल क्षमाशील होने और शान्ति का पालन करने से राज्यों का शासन नहीं चलता। जो राजा क्रोध नहीं कर सकता और अपने क्रोध को सफल नहीं बना सकता मित्र उसका आदर नहीं करते और शत्रु उससे भय नहीं खाते[३]।

(१५) विजय के इच्छुक राजाओं को चाहिये कि वे सन्धियों की अधिक परवाह न करें। वे समय की प्रतीक्षा न करते हुये बहाना बनाकर सन्धियों को तोड़ दें और शत्रुओं पर आक्रमण कर दे।[४]

(घ) प्रथम सर्ग की सूक्तियाँ

भारवि का काव्य, सूक्तियों के सौन्दर्य के लिये प्रसिद्ध है। उन्होंने अनेक सूक्तियों की रचना की है। प्रथम सर्ग की सूक्तियाँ निम्न हैं—

	श्लोक संख्या
(१) न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः।	२
(२) हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।	४
(३) सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः।	५
(४) स किं सखा साधु न शास्ति योऽधिपं हितान्न यः संशृणुते स किं प्रभुः।	५
(५) वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः।	८
(६) निरत्ययं साम न दानवर्जितम्।	१२
(७) न भूरि दानं विरहय्य सत्क्रियाम्।	१२
(८) गुणानुरोधेन बिना न सत्क्रिया।	१२
(९) अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता।	२३
(१०) तथापि वक्तुं व्यवसाययन्ति मां, निरस्तनारीसमया दुराधयः॥	२८
(११) व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं, भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः॥	३०

---

१. किरातार्जुनीयम् १/१३॥ २. किरातार्जुनीयम् १/३०॥
३. किरातार्जुनीयम् १/४२॥ ४. किरातार्जुनीयम् १/४५॥

(१२) अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां
भवन्ति वश्या. स्वयमेव देहिनः ।। ३३

(१३) अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना
न जातहार्देन न विद्विषादरः ।। ३३

(१४) विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः । ३७

(१५) परैरपर्यासितवीर्यसम्पदां
पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम् । ४१

(१६) व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहा
शमेन सिद्धिर्मुनयोः न भूभृतः । ४२

(१७) निराश्रया हन्त हता मनस्विता । ४३

(१८) अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशाः
विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि । ४५

१०. मल्लिनाथ का "किरातार्जुनीयम्" की व्याख्या प्रारम्भ करने से पूर्व का मङ्गलाचरण और वक्तव्य

अर्द्धाङ्गीकृतदाम्पत्यमपि गाढानुरागि यत् ।
पितृभ्यां जगतस्तस्मै कस्मैचिन्महसे नमः ।।

आधे अङ्ग में दाम्पत्य को स्वीकार करके भी जो प्रभूत स्नेह करने वाले संसार के माता-पित उन शिव-पार्वती को हम किसी महान् कल्याण को प्राप्त करने के लिए नमस्कार करते हैं।

आलम्बे जगदालम्बं हेरम्बचरणाम्बुजम् ।
शुष्यन्ति यद्रजः स्पर्शात् सद्यः प्रत्यूहवार्धयः ।।

संसार को आश्रय देने वाले गणेश के चरणकमलों का मैं आश्रय लेता हूँ, जिनकी धूलियों के स्पर्श से विघ्नों की वृद्धियाँ तत्काल सूख जाती हैं, अर्थात् विघ्न तुरन्त नष्ट हो जाते हैं।

तद्दिव्यमव्ययं धाम सारस्वतमुपास्महे ।
यत्प्रकाशात्प्रलीयन्ते मोहान्धतमसश्छटाः ।।

सरस्वती के उस दिव्य अविनाशी धाम की हम उपासना करते हैं, जिसके प्रकाश से मोह रूपी घने अन्धकार नष्ट हो जाते हैं।

वाणी काणभुजीमजीगणदवाशासीच्च वैयासकी-
मन्तस्तन्त्रमरंस्त पन्नगगवीगुम्फेषु चाजागरीत् ।
वाचामाचकलद् रहस्यमखिलं यश्चाक्षपादस्फुरां
लोकेऽभूद्यदुपज्ञमेव विदुषां सौजन्यजन्यं यशः ॥

जिसने कणाद की वाणी को गिन लिया था, जिसने व्यास की वाणी का उपदेश पाया था, जिसने तन्त्रों के अन्दर रमण किया था, जो पतञ्जलि की वाणी के गुम्फनों में जागता रहा था, जिसने गौतम के मुख से स्फुरित वाणियों के सम्पूर्ण रहस्य को जाना था, अर्थात् जिसने इन ऋषियों द्वारा प्रणीत विद्याओं का सम्यक् प्रकार से अध्ययन करके ज्ञान प्राप्त किया था।

मल्लिनाथकविः सोऽयं मन्दात्मानुजिघृक्षया ।
तत्किरातार्जुनाख्यं काव्य व्याख्यातुमिच्छति ॥

महामहोपाध्याय उपाधि धारण करने वाला वह मल्लिनाथ नाम का कवि 'किरातार्जुनीयम्' नाम के काव्य की व्याख्या करना चाहता है—

नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवेः सपदि तद्विभज्यते ।
स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरं सारमस्य रसिका यथेप्सितम् ॥

भारवि कवि की नारिकेल के फल तुल्य वाणी की मल्लिनाथ व्याख्या कर रहे हैं। रसिक जन रस से भरे हुए इसके सार का आस्वादन करें। भाव यह है कि जिस प्रकार नारिकेल के फल के ऊपर कठोर आवरण होता है और उसके अन्दर रस में भरा हुआ फल रहता है, उसी प्रकार भारवि की वाणी के ऊपर क्लिष्ट आवरण है परन्तु उसके अन्दर रमणीय आनन्दकारी अर्थ हैं। मल्लिनाथ काव्य की क्लिष्टता की व्याख्या करके सहृदयों को काव्य के आनन्द का आस्वादन कराते हैं।

नाना निबन्धविषमैकपदैर्नितान्तं,
साशङ्कचङ्क्रमणखिन्नधियामशङ्कम् ।
कर्तुं प्रवेशमिह भारविकाव्यबन्धे,
घण्टापथं कमपि नूतनमातनिष्ये ॥

भारवि के काव्य में अनेक प्रकार के कठिन पद हैं, जिनमें निरन्तर आशङ्का के साथ भ्रमण करने से बुद्धि खिन्न हो जाती है। भारवि द्वारा रचित इस 'किरातार्जुनीयम्' काव्य में सहृदयों का प्रवेश कराने के लिए मैं इस घण्टापथ नामक नवीन टीका का निर्माण करूँगा।

इहान्वयमुखेनैव सर्वं व्याख्यायते मया।
नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते ॥

कोई वस्तु बिना किसी आधार के नहीं लिखी जाती और बिना किसी अपेक्षा के कही नहीं जाती। इस प्रकार इस काव्य में संगत अर्थों द्वारा ही व्याख्या कर रहा हूँ।

तत्र भवान्भारविनामा कविः "काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये सद्यः परनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे" इत्याद्यलङ्कारिकवचनप्रामाण्यात्काव्यस्यानेकश्रेयः साधततां, काव्यालापांश्च वर्जयेद्' इति निषेधशास्त्रस्यासत्काव्यविषयतां च पश्यन् किरातार्जुनीयाख्यं महाकाव्यं चिकीर्षुश्चिकीर्षितार्थविघ्नपरिसमाप्तिसम्प्रपायाविच्छेदलक्षणफलसाधनत्वाद् 'आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्' इत्याद्याशीर्वादाद्यन्यतमस्य प्रबन्धमुखलक्षणत्वाच्च वनेचरस्य युधिष्ठिरप्राप्तिरूपं वस्तु निर्दिशन्कथामुपक्षिपति।

काव्यशास्त्रों के अनुसार मम्मट ने काव्य की रचना करने के छः प्रयोजन बताये हैं—यश को प्राप्त करना धन को प्राप्त करना, सांसारिक व्यवहार को जानना, अमङ्गल का निवारण करना, आनन्द की अनुभूति प्राप्त करना और कान्तासम्मित उपदेश प्राप्त करना। भारवि इन उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए इस काव्य की रचना कर रहे हैं। शास्त्रों में लिखा है कि काव्यों में अलाप का परित्याग कर देना चाहिये। भारवि का मत है कि यह कथन दुष्ट काव्यों के लिये ही हैं, उत्तम काव्यों के लिए नहीं। इस हेतु वे उत्तम काव्य 'किरातार्जुनीयम्' की रचना करना चाहते हैं। काव्यशास्त्रीय नियमों के अनुसार काव्य के निर्विघ्न परिसमाप्ति के लिए और काव्य के फलों को प्राप्त करने के लिए उसको तीन प्रकार से प्रारम्भ किया जा सकता है—देवताओं से आशीर्वाद प्राप्त करने का निर्देश करके, देवताओं को नमस्कार करके अथवा कथावस्तु का निर्देश करके। भारवि कवि कथा का निर्देश करके काव्य को प्रारम्भ करते हैं। काव्य की कथा का प्रारम्भ वनेचर द्वारा युधिष्ठिर को दुर्योधन के समाचारों को बताने से प्रारम्भ होता है, इस कारण कवि सबसे पहले वनेचर को युधिष्ठिर के पास उपस्थित करते हैं।

किरातार्जुनीयम् प्रथम सर्ग

कथावस्तु का प्रसङ्ग—

कौरवों और पाण्डवों में जुआ हुआ। जुए की अन्तिम शर्त यह थी कि जो पक्ष हार जावे वह अपना राज्य विजेता को देकर बारह वर्ष के लिये वनवास करे और उसके बाद एक वर्ष के लिये अज्ञातवास करे। तेरह वर्षं के बाद लौटकर आने पर वह अपना राज्य वापस पावेगा। जुए में पाण्डव हार गये। शर्तं के अनुसार वे वनों की ओर चले गये और द्वैतवन में रहने लगे। युधिष्ठिर को दुर्योधन की नीयत पर सन्देह था कि वह अवधि पूरी होने पर भी हमारा राज्य वापस देगा या नहीं। उसने एक किरात को गुप्तचर नियुक्त कर ब्रह्मचारी के वेश में हस्तिनापुर भेजा कि वह पता लगाकर आवे कि इस समय दुर्योधन क्या तैयारियाँ कर रहा है और हम राज्य को वापिस पायेंगे भी या नहीं। हस्तिनापुर जाकर और वहाँ के समाचार जानकर वह किरात युधिष्ठिर की सेवा में उपस्थित हुआ—

श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीं
प्रजासु वृत्तिं यमयुङ्क्त वेदितुम्।
स वर्णिलिङ्गी विदितः समाययौ
युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः ॥१॥

अन्वयः—कुरुणाम् अधिपस्य श्रियः पालनीम् प्रजासु वृत्तिम् वेदितुम् यम् अयुङ्क्त वर्णिलिङ्गी स वनेचरः विदितः द्वैतवने युधिष्ठिरम् समाययौ ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—'कुरुणां' तन्नामकस्य जनपदस्य 'अधिपस्य' स्वामिनः दुर्योधनस्य 'श्रियः' राजलक्ष्म्याः 'पालनीं' प्रतिष्ठापिका 'प्रजासु वृत्तिं लोकविषयकं व्यापारं वेदितुं ज्ञातुं यं वनेचरं युधिष्ठिरः 'अयुङ्क्त' नियुक्तवान्, 'वर्णिलिङ्गी' वर्णिनः ब्रह्मचारिणः लिङ्गं वेषः यस्य तथाभूतः ब्रह्मचारिवेषधारी इत्यर्थः स 'वनेचरः, किरातः 'विदितः' ज्ञातवृत्तान्तः 'द्वैतवने' द्वैताख्ये वने 'युधिष्ठिरं' तन्नामकं पाण्डवाग्रजं समाययौ समाजगाम ॥१॥

शब्दार्थ—श्रियः=राजलक्ष्मी का । **कुरूणामाधिपस्य** । **कुरूणाम्**=कुरु देश के । **अधिपस्य**=स्वामी का । **पालनीम्**=संरक्षा करने वाले । **प्रजासु**=प्रजा के प्रति । **वृत्तिम्**=व्यवहार को । **यमयुङ्क्त** । **यम्**=जिसको । **अयुङ्क्त**=नियुक्त किया था । **स**=वह । **वर्णिलिङ्गी**=ब्रह्मचारी के वेश को धारण करने वाला । **विदितः**=वृत्तान्त को जानकर । **समाययौ**=आया । **युधिष्ठिरम्**=युधिष्ठिर के पास । **द्वैतवनम्**=द्वैतवन में । **वनेचरः**=वन में रहने वाला किरात ।

हिन्दी अर्थ—कुरु देश के स्वामी दुर्योधन को राजलक्ष्मी की संरक्षा करने वाले प्रजा के प्रति व्यवहार को जानने के लिये युधिष्ठिर ने जिसकी नियुक्ति की थी ब्रह्मचारी के वेष को धारण करने वाला वह किरात दुर्योधन के वृत्तान्त को जानकर द्वैतवन में युधिष्ठिर के पास आया ॥१॥

भाव—दुर्योधन से जुये में हारकर पाण्डव द्वैतवन में रहने लगे थे । दुर्योधन किस प्रकार राज्य का प्रशासन कर रहा है, उसका प्रजा के प्रति किस प्रकार का व्यवहार है, प्रजा उससे सन्तुष्ट है या नहीं, वनवास की अवधि व्यतीत हो जाने पर भी वह राज्य को वापिस करेगा भी या नहीं, इत्यादि बातों को जानने के लिये युधिष्ठिर ने एक किरात को गुप्तचर नियुक्त किया था । यह ब्रह्मचारी का वेश धारण करके हस्तिनापुर गया और वहाँ के सम्पूर्ण वृत्तान्त को जानकर और लौटकर युधिष्ठिर के पास आया ।

वाच्यपरिवर्तन—कुरूणाम् अधिपस्य श्रियः पालनीं प्रजासु वृत्तिं वेदितुं यः आयुज्यत वर्णिलिङ्गिना तेन वनेचरेण विदितेन द्वैतवने युधिष्ठरः समायातः ।

टिप्पणियाँ—श्रियः=श्रयति पुरुषम्, अर्थ में √श्री + क्विप्=श्री । षष्ठी विभक्ति का एकवचन=श्रियः । **कुरूणाम्**—कुरूणां निवासाः जनपदाः कुरवः । कुरु जाति के निवास स्थान जनपद कुरु कहलाते हैं । यहाँ जनपद अर्थ में 'तस्यनिवासः' सूत्र से 'अण्' प्रत्यय होकर 'जनपदे लुप्' सूत्र से उसका लोप हो जाता है । जनपद वाची शब्द बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं । षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में—कुरूणाम् । **अधिपस्य**—अधि पाति रक्षति इस अर्थ अधि + √पा + क=अधिप । षष्ठी विभक्ति का एकवचन=अधिपस्य । **पालनीम्**=√पाल + ल्युट् (अन्) + ङीप्=पालनी । द्वितीया विभक्ति का एकवचन=

पालनीम् । प्र + √जन् + ड + टाप् = प्रजा । सप्तमी विभक्ति का बहुवचन = प्रजासु । वृत्तिम्—√वृत् + क्तिन = वृत्ति । द्वितीया विभक्ति का एकवचन वृत्तिम् । यम्—यत् सर्वनाम से पुल्लिङ्ग में द्वितीया के एकवचन में = यम् । अयुङ्क्त—√युज् धातु से लुङ् लकार में प्रथम पुरुष का एकवचन । वेदितुम् = √विद् + तुमुन् = वेदितुम् । वर्णिलिङ्गी—वर्णः प्रशस्तः अस्य अस्ति इस अर्थ में वर्ण + इनि = वर्णिन् । वर्णिनः लिंगं चिह्नम् अस्य अस्ति स वर्णिन् + लिंग + इनि = वर्णिलिंगी । विदितः—√विद् धातु से कर्म में क्त प्रत्यय होकर = विदित । विदितम् अस्य अस्ति अर्थ में 'अर्श आदिभ्यो अच्' सूत्र से अच् प्रत्यय । विदित + अच्' = विदित । वृत्तान्त को जानने वाला । अथवा विदितः वृत्तान्तः येन सः—उत्तरपदलोपी बहुव्रीहि समास = विदितवृत्तान्तः अर्थ हुआ । युधिष्ठिरः—युधि रणे स्थिरः । सप्तमी तत्पुरुष समास पाण्डवों में सबसे बड़े भाई का नाम युधिष्ठिर था । द्वैतवने—द्वौ इतौ गतौ यस्मात् तद् द्वैतम् । जहाँ से शोक और मोह ये दोनों चले गये हों, वह स्थान । द्वैतं वनं इस विग्रह में कर्मधारय समास होकर द्वैतवन् बना । सप्तमी विभक्ति के एकवचन में द्वैतवने । वनेचरः—वने चरति अर्थ में 'चरेष्टः' सूत्र में ट प्रत्यय । वने + √चर् + ट = वनेचर । यहाँ समास में 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' नियम से सप्तमी विभक्ति का लोप नहीं हुआ । वने चरति इति वनेचरः

अलङ्कार—वृत्यनुप्रास ।

वने वनेचरः—में स्वरों और व्यञ्जनों के समुदाय की एक ही बार आवृत्ति में वृत्ति अनुप्रास अलङ्कार है ।

छन्द—वंशस्थ । वंशस्थ का लक्षण—

जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ—

जिस छन्द में एक जगण (ISI), एक तगण (SSI) एक जगण (ISI) और एक रगण (SIS) हों तो वह छन्द वंशस्थ होता है ।

I S I S S I I S I S I S

श्रि यः कु रू णा म धि प स्य पा ल नीं

I S I S I I S I S I I

प्र जा सु वृ त्ति य म यु ङ्क्त वे दि तुम्

। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ
स व र्णि लि ङ्गी वि दि तः स मा य यौ
। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ
यु धि ष्ठि रं द्वैत वने वने च रः ॥

विशेष कथन—संस्कृत काव्यों की परम्परा के अनुसार काव्यों का प्रारम्भ मंगलकारी वचनों से करना चाहिये। काव्य शास्त्रों के नियम के अनुसार काव्य को आशिस्, नमस्कार और कथावस्तु का निर्देश करके प्रारम्भ किया जा सकता है। कथावस्तु का निर्देश करना भी मंगलकारी समझा जाता है। इस काव्य को 'श्री' शब्द से प्रारम्भ किया गया है, जो मंगल की सूचना देने वाला है।

घण्टापथ टीका—श्रिय इति। आदितः श्रीशब्दप्रयोगाद् वर्णगणादिशुद्धि र्नात्रातीवोपयुज्यते। तदुक्तं—देवतावाचकाः शब्दा ये च भद्रादिवाचकाः। ते सर्वे नैव निन्द्याः स्युर्लिपितो गणतोऽपि वा'॥ इति। कुरूणां निवासाः कुरवो जनपदाः। 'तस्य निवासः' इत्यण् प्रत्यय। 'जनपदे लुप्'। तेषामधिपस्य दुर्योधनस्य संबन्धिनीम्। शेषे षष्ठी। श्रियो राजलक्ष्म्याः 'कर्तृकर्मणोः कृति' इति कर्मणि षष्ठी। पाल्यतेऽनयेति पालनी. ताम्। प्रतिष्ठापिकाम् इत्यर्थः। प्रजा रागमूलत्वात्सम्पद इति भावः। 'करणाधिकरणयोश्च' इति करणे ल्युट् 'टिड्ढाणञ्' इत्यादिना ङीप्। प्रजासु जनेषु विषये। 'प्रजा स्यत्सन्ततौ जने' इत्यमरः। वृत्ति व्यवहारं वेदितुं ज्ञातुं यं वनेचरमयुङ्क्त नियुक्तवान्। वर्णः प्रशस्तिरस्यास्तीति वर्णी ब्रह्मचारी। तदुक्तं—'स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्। संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिवृत्तिरेव च॥ एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः। विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम्'॥ एतदष्टविधमैथुनाभावः प्रशस्तिः। 'वर्णात् ब्रह्मचारिणि' इतीनि प्रत्ययः। तस्य लिङ्गं चिह्नमस्यास्तीति वर्णिलिङ्गी। ब्रह्मचारिवेषवानित्यर्थः। स नियुक्तः, वने चरतीति वनेचरः किरातः। भेदाः किरातशबरपुलिन्दा म्लेच्छजातयः' इत्यमरः। 'चरेष्टः' इति ट प्रत्ययः। 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' इत्यलुक्। विदित वेदनमस्यास्तीति विदितः। परवृत्तान्तज्ञानवान् इत्यर्थः। अर्श आदिभ्योऽच्' इत्यच्प्रत्ययः अथवा कर्तरि कर्मधर्मोपचाराद् विदितवृत्तान्तो विदित इत्मुच्यते। उभयत्रादि 'पीता गावः', 'भुक्ता ब्राह्मणाः, विभक्ता भ्रातरः'। इत्यादिवत्साधुत्वं, न तु कर्तरि

क्तः, सकर्मकेभ्यस्तस्य विधानाभात् । अतएव भाष्यकारः—अकारो मत्वर्थीयः' । विभक्तमेषामस्तीति विभक्ताः । 'पीतमेषामस्तीति पीताः' इति सर्वत्र । अथवोत्तरपदलोपोऽत्र द्रष्टव्यः । 'विभक्तधना' विभक्ताः, पीतोदका पीताः, इति । अत्र लोपशब्दार्थमाह कैयटः—'गम्यार्थस्याप्रयोग एव लोपोऽभिमतः' । विभक्ता भ्रातरः' इत्यत्र च धनस्य यद् विभक्तत्वं यद् भ्रातृषूपचरितम् । पीतोदका गावः, इत्यत्रात्युदकस्य पीतत्वं गोष्वारोप्यते' इति । तद्वदत्रापि वृत्तिगतं विदितत्वं वेदितरि वनेचर उपचयते । एतेन 'वनाय पीतप्रतिबद्धवत्साम', 'पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या' एवमादयो व्याख्याताः । अथवा विदितः विदितवान् । सकर्मकादप्यविवक्षिते कर्मणि कर्त्तरि क्तः । यथा 'आशितः कर्ता' इत्यादौ । तथाऽऽहुः—धातोरर्थान्तरे वृत्तेर्धात्वर्थेनोपसंग्रहात् । प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिका क्रिया' ।। इति । द्वैतवने द्वैताख्येतपोवने ।' यद्वा द्वे इते गते यस्मात्तद् द्वीतं, द्वीतमेव द्वैतं, तच्च तद्वनं च तस्मिन्, शोकमोहादिवर्जित इत्यर्थः । युधिष्ठिरं धर्मराजम् । 'हलन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम्' इत्यलुक् । 'गवियुधिभ्यां स्थिरः' इति षत्वम् । समाययौ सम्प्राप्तः । अत्र वने वनेचरः, इति द्वयो स्वरव्यञ्जनसमुदाययोरेकदैवावृत्यावृत्यनुप्रासोनामालङ्कारः । अस्मिन्सर्गे वंशस्थवृत्तं तल्लक्षणं 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ' इति ।।१।।

प्रकरण—युधिष्ठिर द्वारा नियुक्त किया हुआ किरात हस्तिनापुर के समाचारों को जानकर अपने स्वामी की सेवा में उपस्थित हुआ । समाचार शुभ नहीं थे, तथापि स्वामी का हितैषी होने के कारण वह उनको सुनाने से रुकता नहीं—

> कृतप्रणामस्य महीं महीभुजे
> जितां सपत्नेन निवेदयिष्यतः ।
> न विव्यथे तस्य मनो न हि प्रियं
> प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः ।।२।।

अन्वयः—कृतप्रणामस्य सपत्नेन जितां महीं महीभुजे निवेदयिष्यतः तस्य मनः न विव्यथे हि हितैषिणः मृषा प्रियं प्रवक्तुं न इच्छन्ति ।।२।।

संस्कृत-व्याख्या—'कृतप्रणामस्य' कृतः विहितः प्रणामः अभिवादनं येन तस्य

'सपत्नेन' शत्रुणा 'जितां' द्यूतेन स्वाधीनां विहितां 'महीं' पृथिवीं तद् विषयक समाचारं 'महीभुजे' राज्ञे युधिष्ठिराय निवेदयिष्यतः' ज्ञापयिष्यतः तस्य वने-चरस्य 'मनः' चित्ते, न 'विव्यथे' व्यथितं न बभूव। 'हि' यतः 'हितैषिणः' स्वामिनः 'हितेच्छुकः' सेवकाः 'मृषा' असत्यं 'प्रियं' मधुरवचनं 'प्रवक्तुं' कथयितुं न 'इच्छन्ति' अभिलषन्ति ॥२॥

शब्दार्थ—**कृतप्रणामस्य** = प्रणाम करने वाले। **महीम्** = पृथिवी के विषय में। **महीभुजे** = राजा के लिये। **जिताम्** = जीती हुई। **सपत्नेन** = शत्रु द्वारा। **निवेदयिष्यतः** = कहते हुये। **न** = नहीं। **विव्यथे** = व्यथित हुआ। **तस्य** = उसका। **मनः** = मन। **हि** = निश्चय से। **प्रियम्** = प्रिय। **प्रवक्तुमिच्छन्ति**। **प्रवक्तुम** = कहने के लिये। **इच्छन्ति** = इच्छुक होते हैं। **मृषा** = झूठ। **हितैषिणः** = हित को चाहने वाले।

हिन्दी अर्थ—प्रणाम करने के अनन्तर शत्रु द्वारा जीती हुई पृथिवी के समाचार को राजा युधिष्ठिर से कहते हुये उस किरात का मन व्यथित नहीं हुआ क्योंकि हितैषी सेवक असत्य प्रिय बात कहने के इच्छुक नहीं होते ॥२॥

भाव—उस किरात गुप्तचर ने पहले राजा को प्रणाम किया। अब वह हस्तिनापुर का समाचार युधिष्ठिर से कहने के लिया उद्यत हुआ। युधिष्ठिर का राज्य पहले दुर्योधन ने द्यूत में जीत लिया था। उस राज्य को अपने अधिकार में स्थिर रखने के लिये दुर्योधन अनेक प्रकार के उपाय कर रहा था। अतः युधिष्ठिर के लिये वहाँ का वृत्तान्त प्रिय नहीं था। तथापि राजा को पीड़ा होगी, इस कारण से ही किरात उस वृत्तान्त को सच-सच कहने में हिच-किचाया नहीं। हितैषी वे ही होते हैं जो सुनने वाले की प्रसन्नता का विचार न करके सत्य बात को कह देते हैं।

वाच्यपरिवर्तन—कृतप्रणामस्य सपत्नेन जितां महीं महीभुजे निवेदयिष्यतः, तस्य मनसा न व्यथितम्। हि हितैषिभिः मृषा प्रवक्तुं न इष्यते।

टिप्पणियाँ—**कृतप्रणामस्य** = कृतः प्रणामः येन तस्य। बहुव्रीहि समास। √कृ + क्त = कृत। प्र + √नम् + घञ् = प्रणाम। **महीभुजे** = महीं भुनक्ति अर्थ में मही + √भुज् + क्विप् = महीभुक्। पृथिवी का भोग करने वाला। चतुर्थी विभक्ति का एकवचन = महीभुजे। 'महीभुजं बोधयितुम्' राजा को

जतलाने के लिये इस अर्थ में 'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः', सूत्र से क्रियार्थ क्रिया उपपद होने पर स्थानी क्रिया के तुमुन् के अर्थ में अर्थात् 'बोधयितुं' क्रिया के तुमुन् के अर्थ को द्योतित करने के लिये महीभुजे में चतुर्थी विभक्ति हुई। **जिताम्**—√जि + क्त + टाप् = जिता। द्वितीया विभक्ति का एकवचन = जिताम्। **सपत्नेन**—सह एकार्थे पतति अर्थ में सह + √पत् + न = सपत्न। तृतीया विभक्ति का एकवचन = सपत्नेन। **निवेदयिष्यतः**—नि + √विद् + णिच् + शतृ (लृट् लकार के अर्थ में) = निवेदयिष्यन्। षष्ठी विभक्ति का एकवचन = निवेदयिष्यतः। राजा के सम्मुख जो अभी निवेदन करेगा उसका। **विव्यथे**—√व्यथ् धातु लिट् लकार प्रथम पुरुष का एकवचन। **प्रवक्तुम्**—प्र + √वच् + तुमुन = प्रवक्तुम्। **हितैषिणः** = हितम् इच्छन्ति इस अर्थ में हित + √इष् + णिनि—हितैषिन्। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन = हितैषिणः।

अलङ्कार—अर्थान्तरन्यास। अर्थान्तरन्यास अलङ्कार का लक्षण—

सामान्यं वा विशेषो वा यदन्येन समर्थ्यते।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा॥

जब सामान्य का विशेष से या विशेष का सामान्य से साधर्म्य या वैधर्म्य द्वारा समर्थन किया जाता है, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार होता है। इस श्लोक में उस वनेचर का मन अप्रिय सत्य को कहने में नहीं हिचकिचाया, इस विशेष का समर्थन हितैषी व्यक्ति असत्य ही प्रिय बात को कहने की इच्छा नहीं करते, इस सामान्य से साधर्म्य द्वारा किया गया है। अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—गुप्तचर में चतुराई, स्फूर्ति स्वामी को सत्य-सत्य बात बताना और ठीक प्रकार से अनुमान कर सकना ये चार गुण होने चाहियें।

घण्टापथ टीका—कृतप्रणामस्येति। कृतप्रणामस्य तत्कालोचितत्वात्कृतनमस्कारस्य। सपत्नेन रिपुणा दुर्योधनेन। 'रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः' इत्यमरः। जितां स्वायत्तीकृतां महीं महीभुजे युधिष्ठिराय क्रियाग्रहणात् संप्रदानत्वम्। निवेदयिष्यतो ज्ञापयिष्यतः। 'लृटः सद्वा' इति शतृप्रत्ययः। तस्य वने-

चरस्य मनो न विव्यथे। कथमीदृगप्रियं राज्ञे विज्ञापयामीति मनसि न चचा-लेत्यर्थः। 'व्यथ भयचलनयोः' इति धातोर्लिट् उक्तमर्थमर्थान्तरन्यासेन समर्थयते न हीति। हि यस्माद्। हितमिच्छन्तीति हितैषिणः स्वामिहितार्थिनः पुरुषाः मिथ्याभूतं प्रियं प्रवक्तुं नेच्छन्ति, अन्यथा कार्यविघातकतया स्वामिद्रोहिणः स्युरिति भावः 'अमौढ्यममान्द्यममृषाभाषित्वमभ्यूहकत्वं चेति चारगुणाः' इति नीति-वाक्यामृते ॥२॥

प्रकरण—क्योंकि वनेचर द्वारा लाया गया समाचार राजा के लिये प्रिय नहीं था, अतः पहले उसने स्वामी से उसको सुनाने की अनुमति ली, तदनन्तर वह कहने लगा—

द्विषां विघाताय विधातुमिच्छतो
रहस्यनुज्ञामधिगम्य भूभृतः।
स सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं
विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे ॥३॥

अन्वयः—द्विषां विघाताय विधातुम् इच्छतः भूभृतः रहसि अनुज्ञाम् अधि-गम्य स सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीम् विनिश्चितार्थाम् इति वाचम् आददे ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—'द्विषां' शत्रूणां 'विघाताय विनाशाय' 'विधातुं' प्रयत्नानि कर्तुम् इच्छतः, अभिलषतः 'भूभृतः' राज्ञः युधिष्ठिरस्य 'रहसि' एकान्ते 'अनुज्ञाम्' अनुमतिम् 'अधिगम्य, प्राप्य स वनेचरः सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं सौष्ठवस्य शब्दसामर्थ्यस्य औदार्यस्य अर्थसामर्थ्यस्य च विशेषणं अतिशयेन विशेषैः प्रमाणैः निश्चितः निर्णीतः अर्थः स्वरूपं यस्याः तादृशीम् 'इति' 'एवंविधां' वाचं वाणीम् 'आददे', स्वीचकार कथयामास इत्यर्थः॥३॥

शब्दार्थ—**द्विषाम्**=शत्रुओं का। **विघाताय**=विनाश करने के लिये। विधातुमिच्छता। **विधातुम्**=प्रयत्नों का विधान करने के लिये। **इच्छतः**=इच्छा करने वाले। रहस्यनुज्ञामधिगम्य। **रहसि**=एकान्त में। **अनुज्ञाम्**=अनुमति को। **अधिगम्य**=प्राप्त करके। **सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीम्**=शब्दों और अर्थों की गरिमा से युक्त। विनिश्चितार्थामिति। **विनिश्चितार्थाम्**=

निश्चित अर्थ वाली। इति = इस प्रकार की। वाचमाददे। वाचम् = वाणी को। आददे = कहा।

हिन्दी अर्थ—शत्रुओं का विनाश करने के लिये प्रयत्नों को करने की इच्छा वाले राजा युधिष्ठिर की एकान्त में अनुमति को प्राप्त करके उस वनेचर ने शब्दों और अर्थों की गरिमा से युक्त एवं प्रमाणों से निश्चित अर्थ वाली वाणी को कहा ॥३॥

भाव—वनेचर द्वारा लाया गया समाचार राजा के लिये प्रिय नहीं था। परन्तु राजा तो शत्रुओं का विनाश करने के लिये प्रयत्न करते थे, अतः अप्रिय बात को बताने के लिये किरात ने पहले राजा से अनुमति ली। इसके बाद उसने जो बात कही, वह शब्दों और अर्थों की गरिमा से भरी हुई थी और उसका प्रत्येक कथन निश्चित प्रमाणों पर आधारित था।

वाच्यपरिवर्तन—द्विषां विघाताय विधातुम् इच्छतः भूभृतः रहसि अनुज्ञाम् अधिगम्य तेन सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनी विनिश्चितार्था इति वाग् आदत्ता।

टिप्पणियाँ—द्विषाम्—द्विषन्ति इस अर्थ में √द्विष् + क्विप् = द्विष्। षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में—द्विषाम्। विघाताय—वि + √हन् + घञ् = विघात। चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में = विघाताय। यहाँ 'विहन्तुम्' इस तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में भाव अर्थ में किये गये घञ् प्रत्ययान्त शब्द से 'तुमर्थाच्च भाववचनात्' सूत्र से चतुर्थी विभक्ति हुई। विधातुम्—वि + √धा + तुमुन् = विधातुम्। इच्छतः—√इष् + शतृ = इच्छत्। षष्ठी विभक्ति का एकवचन = इच्छतः। अनुज्ञाम्—अनु + √ज्ञा + अङ् + टाप् = अनुज्ञा। द्वितीया विभक्ति का एकवचन = अनुज्ञाम्। अधिगम्य—अधि + √गम् + क्त्वा + ल्यप् = अधिगम्य। भूभृतः—भुवं बिभर्ति अर्थ में भू + √भृ + क्विप् = भूभृत्। षष्ठी विभक्ति का एकवचन = भूभृतः। सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनी!—सौष्ठवं च औदार्यं च सौष्ठवौदार्ये। इतरेतर द्वन्द्व समास। सौष्ठवौदार्ययोः विशेषः सौष्ठवौदार्यविशेषः। षष्ठी तत्पुरुष समास। तेन शालते शोभते इति ताम्। सौष्ठव, औदार्य + विशेष + शाल + इनि + ङीप् = सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनी। द्वितीया विभक्ति के एकवचन में = सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीम्। सुष्ठु + अण् = सौष्ठव। उदारस्य भावः अर्थ में उदार + ष्यञ् = औदार्य। सौष्ठव—जिसमें शब्दों की रमणीयता हो। औदार्य—जिसमें अर्थों की गम्भीरता हो। विनिश्चिताम्—विशेषैः निश्चितः

अर्थः यस्याः ताम् । बहुव्रीहि समास । निस् + √चि + क्त = निश्चित । आददे-
आ + √दा धातु से आत्मनेपद के लिट् लकार में प्रथम पुरुष एकवचन ।

छन्द—वंशस्थ ।

विशेष-कथन—आलोचकों ने भारवि की विशेषता बतलाई है कि उसके काव्यों में अर्थ का गौरव है 'भारवेरर्थगौरवम्' । भारवि के अनुसार काव्य की वाणी में तीन विशेषतायें होनी चाहिये—१. सौष्ठव—पदों में विन्यास की रमणीयता होनी चाहिये । २. औदर्य—पदो के अर्थों में गम्भीरता होनी चाहिये । ३. विनिश्चितार्थता—जो भी बात कही जावे, वह प्रमाणों द्वारा निश्चित होनी चाहिये ।

घण्टापथ टीका—द्विषामिति । रहस्ये एकान्ते च स वनेचरो द्विषां शत्रूणाम् कर्मणि षष्ठी । विघाताय विहन्तुमित्यर्थः । 'तुमर्थाच्च भाववचनाद्' इति चतुर्थी । 'भाववचनाश्च' इति तुमर्थे घञ् प्रत्यय । अत्र तादर्थ्यमपि न दोष । तथाऽपि प्रयोगवैचित्रीविशेषस्याप्यलङ्कारत्वादेवं व्याचक्षते । विधातुं व्यापारं कर्तुमिच्छतः। समानकर्तृकेषु 'तुमुन्' द्विषो विहन्तुमुद्युक्तज्ञानस्येत्यर्थः । अत एव भूभृतो युधिष्ठिरस्यानुज्ञामधिगम्य । सुष्ठुभावः सौष्ठव शब्दसामर्थ्यम् । सुष्ठुशब्दा-दव्ययादुद्गात्रादित्वादञ्प्रत्ययः । उदारस्य भावः । औदार्यसमर्थसम्पत्तिः । तयोर्द्वन्द्वः सौष्ठवौदार्ये । अत्रौदार्यशब्दस्याल्पाच्तरत्वेऽपि 'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः' इत्यत्राल्पस्वरस्यापि हेतुशब्दस्य पूर्वनिपातमकुर्वता सूत्रकृतैव पूर्वनिपातस्या-नित्यत्वज्ञापनान्न पूर्वनिपातः । उक्तं च काशिकायाम्—'अयमेव लक्षणहेत्वोरिति निर्देशः पूर्वनिपातव्यभिचारचिह्नम् इति । तयोर्वा विशेषः । तेन शालते शोभते इति सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनी ताम् । ताच्छील्ये णिनिः । विनिश्चितार्था विशेषतः प्रमाणतो निर्णीतार्थामिति वक्ष्यमाणरूपां वाचमाददे स्वीकृतवान् । उवाचेत्यर्थः ॥३॥

****

प्रकरण—प्रिय समाचार को सुनने की अनुमति प्राप्त करके भी स्वामी के मन में खेद उत्पन्न न हो अतः विनय प्रकट करता हुआ वनेचर पहले क्षमा मांगता है—

क्रियासु युक्तैर्नृप ! चारचक्षुषो
न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः ।

अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधुसाधु वा
हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ॥४॥

अन्वयः—नृप ! क्रियासु युक्तैः अनुजीविभिः चारचक्षुषः न वञ्चनीयाः। अतः साधु असाधु वा क्षन्तुम् अर्हसि। हितम् मनोहारि च वचः दुर्लभम् ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—'नृप ! हे राजन् ! क्रियासु' राज्ञा निर्दिष्टेषु व्यापारेषु 'युक्तैः' नियोजितैः 'अनुजीविभिः' सेवकैः 'चारचक्षुषः' चाराः गुप्तचराः एव चक्षूंषि नेत्राणि येषां ते 'प्रभवः' स्वामिनः 'न वञ्चनीयाः' मिथ्यावचनैः न प्रतारणीयाः 'अतः' अस्मात् कारणात् 'साधु' प्रियम् 'असाधु' अप्रियं वा यन्मदुक्तं तत् 'क्षन्तुं सोढुम 'अर्हसि' योग्यः असि। अहं यत् प्रियं वा अप्रियं वा कथयेयम् तत् त्वं क्षमस्व इत्यर्थः। 'हितं' हितकारि 'मनोहारि' मनः चित्तं हरति रञ्जयति इति तथाभूतं 'वचः' वचनं 'दुर्लभम्' दुःखेन लभ्यते। अतः मम अप्रियाण्यपि परं हितकारीणि वचनानि श्रुत्वा भवान् न क्रुध्येत् ॥४॥

शब्दार्थ—**क्रियासु**=कार्यों में। युक्तैर्नृप। **युक्तैः**=नियुक्त किये गये। **नृप**=हे राजन्। **चारचक्षुषः**=गुप्तचरों की आँखों वाले। **न**=नहीं। **वञ्चनीयाः**=ठगना चाहिये। प्रभवोऽनुजीविभिः। **प्रभवः**=स्वामी। **अनुजीविभिः**=सेवकों के द्वारा। अतोऽर्हसि। **अतः**=इसलिये। **अर्हसि**=योग्य हो। क्षन्तुमसाधु। **क्षन्तुम्**=क्षमा करने के लिये। **असाधु**=अप्रिय। **साधु**=प्रिय। **वा**=अथवा। **हितम्**=हितकारी। **मनोहारि**=मन को प्रसन्न करने वाला। **च**=और। **दुर्लभम्**=कठिनता से मिलने वाला। **वचः**=वाणी।

हिन्दी अर्थ—हे राजन् ! विभिन्न कार्यों में नियुक्त किये गये सेवकों को चाहिये कि वे गुप्तचरों की आँखों से देखने वाले स्वामियों को ठगें नहीं। अतः मैं जो प्रिय-अप्रिय बात कहूँ, आप उसके लिये मुझको क्षमा कर दें। हितकारी और मन को प्रसन्न करने वाली दोनों गुणों से युक्त वाणी कठिनता से मिलती है ॥४॥

भाव—हे राजन् ! राजा विभिन्न कार्यों के लिये विभिन्न सेवकों को नियुक्त करते हैं। स्वदेश और विदेशों के समाचारों को वे गुप्तचरों द्वारा ही जान सकते हैं। यदि सेवक यह विचार करेंगे कि अप्रिय बात को बताने से राजा क्रोधित होंगे तो वे केवल प्रिय बात ही कहेंगे और यथार्थ बात का पता

नहीं लगेगा। राजा ठगा जायेगा और वह विपत्ति को दूर करने के उपाय नहीं कर सकेगा। मेरे कथन में कुछ बातें ऐसी भी हो सकती हैं, जो आपको अप्रिय लगे। आप उस अप्रिय कथन के लिये मुझको क्षमा कर दें। ऐसे वचन कहना बहुत कठिन होता है जो श्रोता के लिये हितकारी भी हो और सुनने में भी प्रिय लगें।

वाच्यपरिवर्तन—हे नृप ! क्रियासु युक्ताः अनुजीविनः चारचक्षुषः प्रभून् न वञ्चयेयुः। अतः भवता असाधु साधु वा क्षन्तुम् अर्ह्यते। हितेन मनोहारिणा च वचसा दुर्लभेन भूयते।

टिप्पणियाँ—**युक्तैः**—√युज् + क्त = युक्त। तृतीया विभक्ति का बहुवचन = युक्तैः। **नृप** = नृन् पाति अर्थ में नृ + √पा + क = नृप। सम्बोधन का एकवचन। **चारचक्षुषः**—चाराः चक्षूंषि येषां ते बहुव्रीहि समास। **वञ्चनीयाः**—√वञ्च् + अनीयर् = वञ्चनीय। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन = वञ्चनीयाः। **अनुजीविभिः**—अनु जीवितुं शीलं येषां ते अर्थ में अनु + √जीव् + णिनि = अनुजीविन्। तृतीया विभक्ति का बहुवचन अनुजीविभिः। कर्ता में तृतीया विभक्ति हुई। **अतः**—एतस्माद् अर्थ में एतत् + तसिल् = अतः। **क्षन्तुम्**—√क्षम् + तुमुन् = क्षन्तुम्। **साधु**—साध् + उण् = साधु। **असाधु**—न साधु = असाधु। नञ्तत्पुरुष समास। **हितम्**—√धा + क्त = हित। **मनोहारि**—मनः हर्तुम् शीलं यस्य तत् अर्थ में मनस् + √हृ + णिनि = मनोहारिन्। नपुंसकलिंग में प्रथमा विभक्ति का एकवचन मनोहारि। **दुर्लभम्**—दुर + √लभ् + अच— दुर्लभ।

अलङ्कार—अर्थान्तरन्यास।

प्रस्तुत श्लोक में 'हित मनोहारि च दुर्लभं वचः' इस सामान्य के द्वारा साधर्म्य में अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा' इस विशेष का समर्थन किया गया है। अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—राजा चारचक्षु कहलाते हैं। वे गुप्तचरों की आँखों से देखते हैं। अपने देश तथा विदेशों के समाचारों जानना राजाओं के लिये अनिवार्य होता है। समाचारों को जानकर और उनके अनुसार उपाय करके राजा शासन को सुदृढ़ कर सकता है और प्रजा की रक्षा कर सकता है। जिस

राज्य की गुप्तचर व्यवस्था सुदृढ़ और सुव्यवस्थित नहीं होती, वह राज्य शीघ्र नष्ट हो जाता है। जो वचन हित करने वाला होता है, वह प्राय: कटु होता है। इसलिये मनुष्य को हितकारी वचन सुनकर उसके कटु होते हुये भी नाराज नहीं होना चाहिये।

घण्टापथ टीका—क्रियास्विति। हे नृप! क्रियासु कृत्यवस्तुषु युक्तै-र्नियुक्तैरनुजीविभिर्भृत्यैः। चारादिभिरित्यर्थः। चरन्तीति चराः। 'पचाद्यच्' त एव चाराः। चरैः पचाद्यजन्तात्प्रज्ञादित्वादण्प्रत्ययः। त एव चक्षुर्येषां ते चारचक्षुसः। स्वपरमण्डले कार्याकार्यावलोकने चाराश्चक्षूंषि क्षितिपतीनाम् इति नीतिवाक्यामृते। प्रभवो निग्रहानुग्रहसमर्थाः स्वामिनो न वञ्चनीयाः न प्रतारणीयाः। सत्यमेव वक्तव्या इत्यर्थः। चारापचारे चक्षुरपचावद्राज्ञां पदे पदे निपात इति भावः। अतोऽप्रतार्यत्वाद्धेतो। असाध्वप्रियं साधु प्रियं वा। मदुक्तमिति शेषः। क्षन्तुं सोढुमर्हसि। हितं पथ्यं मनोहारि प्रियं च वचो दुर्लभम्। अतो मद्वचोऽपि हितत्वादप्रियमपि क्षन्तव्यमित्यर्थः ॥४॥

प्रकरण—मेरा वचन अप्रिय हो सकता है, परन्तु वह हितकारी होगा। अतः उस अप्रिय को सुनकर आप नाराज न हों। इस प्रकार राजा युधिष्ठिर से क्षमा मांगकर वह वनेचर पुनः कहता है—

स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं
हितान्न यः संशृणुते सः किं प्रभुः।
सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं
नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः ॥५॥

अन्वयः—यः अधिपम् साधु न शास्ति स किंसखा। यः हितान् न संशृणुते स किंप्रभुः। हि अनुकूलेषु नृपेषु अमात्येषु च सर्वसम्पदः सदा रतिम् कुर्वते ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—यः सखा अमात्यादिः 'अधिपं' राजानं 'साधु' हितकारि वचनं न 'शास्ति' उपदिशति स 'किंसखा' कुत्सितं मित्रम्। भवति। यः प्रभुः 'हितान्' हितकारिणः वचनान् 'न संशृणुते ध्यानेन न शृणोति स किंप्रभुः 'कुत्सितः' स्वामी भवति। हि' निश्चयेन 'अनुकूलेषु' ऐकमत्येषु 'नृपेषु' 'राजसु'

'अमात्येषु' मन्त्रिषु च 'सर्वसम्पदः' सकला समृद्धय 'सदा' नित्यं 'रतिम्' अनुरागं कुर्वन्ति ॥५॥

शब्दार्थ—**किंसखा** = बुरा मित्र । **साधु** = अच्छा हितकारी । **शास्ति** = उपदेश करता है । **योऽधिपम्** । **यः** = जो । **अधिपम्** = राजा को । **हितात्** = हितकारी उपदेशों को । **संशृणुते** = सुनता है । **किंप्रभुः** = बुरा राजा । **सदाऽनुकूलेषु** = सदा, हमेशा । **अनुकूलेषु** = एक मत में रहने वाले । **कुर्वते** = करती हैं । **रतिम्** = स्नेह । **नृपेष्वमात्येषु** = नृपेषु = राजाओं में । **अमात्येषु** = मन्त्रियों में । **सर्वसम्पदः** = सब समृद्धियाँ ।

हिन्दी अर्थ—जो मित्र, मन्त्री आदि राजा को हितकारी उपदेश नहीं देता, वह बुरा मित्र होता है । जो राजा हितकारी उपदेशों को ध्यान से नहीं सुनता, वह बुरा राजा होता है । एक मत में रहने वाले राजाओं और मन्त्रिओं से सब समृद्धियाँ सदा स्नेह करती हैं ॥५॥

भाव—मन्त्री को चाहिये कि वह राजा से सदा हितकारी वचनों को ही कहे, चाहे वे सुनने में कितने ही अप्रिय क्यों न हों । राजा को चाहिये कि वह मन्त्रियों के हितकारी वचनों को, चाहे वे कितने कटु क्यों न हों सदा ध्यान से सुने और नाराज न हो । इस प्रकार जब तक राजा और मन्त्री अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए सदा एक मत रहते हैं, तब सब सम्पत्तियां उनके पास सदा विद्यमान रहती हैं । उनका राज्य स्थिर रहता है और राज्य में सदा खुशहाली बनी रहती है ।

वाच्यपरिवर्तन—येन अधिपः साधु न शास्यते तेन किं सख्या (भूयते) तेन हिताः न श्रूयन्ते तेन किं प्रभुणा (भूयते) । हि अनुकूलेषु नृपेषु च सर्वसम्पद्भिः सदा रतिः क्रियते ।

टिप्पणियाँ—**किंसखा** = कुत्सितः सखा । तत्पुरुष समास । यहाँ 'राजहस्सखिभ्यष्टच्' सूत्र से 'टच्' प्रत्यय होकर 'किंसखः' बनना चाहिये था । परन्तु 'किमः क्षेपे' सूत्र से उस प्रत्यय का निषेध हो गया । **किंप्रभुः** = कुत्सितः प्रभुः तत्पुरुष समास । **कुर्वते**—आत्मनेपदी √कृ धातु से लट् लकार प्रथम पुरुष का बहुवचन = कुर्वते । **रतिम्**—√रम् + क्तिन् = रति । द्वितीया विभक्ति का एकवचन—रतिम् । **अमात्येषु** = अमा बुद्धिः तया सह वसनि अर्थ में अमा + त्यप् अमात्य । सप्तमी विभक्ति का बहुवचन = अमात्येषु । **सर्वसम्पदः**—सर्वाः

सम्पदः कर्मधारय समास । सम् + √पद् + क्विप् = सम्पद् । प्रथमा विभक्ति का बहुवचन—सम्पदः ।

अलङ्कार—काव्यलिङ्ग । काव्यलिङ्ग अलङ्कार का लक्षण—

समर्थनीयस्यार्थस्य काव्यलिङ्गं समर्थनम् ।

जहाँ समर्थन के योग्य वस्तु का समर्थन किया जाता है, वहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार होता है। इस श्लोक के प्रथम आधे भाग में किरात कहता है कि सेवक को हितकारी बात कहनी चाहिये और स्वामी को हितकारी बात सुननी चाहिये । इस सामान्य समर्थनीय वस्तु का समर्थन वह इस सामान्य वाक्य से करता है कि जो राजा और मन्त्री सदा एक मत बने रहते हैं, उनके पास समृद्धियाँ बनी रहती हैं । इस प्रकार समर्थन के योग्य सामान्य का सामान्य से समर्थन करने के कारण यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है अथवा—

काव्यलिङ्गं हेतोर्वाक्यपदार्थता ।

जहाँ वाक्यों और पदों के अर्थ हेतु रूप से कहे जाते हैं, वहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार होता है । यहाँ स किंसखा······और हितान्न य······वाक्यों के अर्थ सदानुकूलेषु······सर्वसम्पदः वाक्य के हेतुरूप में कहे गये हैं, इसलिये यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है ।

छन्द—वंशस्थ ।

विशेष कथन—कवि का उपदेश है कि राजा और मन्त्रियों के एक मत और सद्भाव से राज्य की स्थिरता और समृद्धि बनी रह सकती है ।

घण्टापथ टीका—य इति । यः सखाऽमात्यादिरधिपं स्वामिनं साधु हितं न शास्ति नोपदिशति । 'ब्रुविशासि' इत्यादिना शासेर्दुहादिपाठाद् द्विकर्मकत्वम् । स हितानुपदेष्टा । कुत्सितः सखा किंसखा । दुर्मन्त्रीत्यर्थः । किमः क्षेपे इति समासान्तप्रतिषेधः । तथा यः प्रभुर्निग्रहानुग्रहसमर्थः स्वामी हिताप्तजनाद्धितापदेष्टुः सकाशाद् । 'आख्यातोपयोगे' इत्यपादानात्पञ्चमी । न संशृणुते न शृणोति । हितमिति शेषः 'समो गम्यृच्छि'—इत्यादिना सम्पूर्वाच्छृणोतेरकर्मकादात्मनेपदम् । अकर्मकत्वम् वैवक्षिकम् । स हितमश्रोता प्रभुः किंप्रभुः कुत्सितस्वामी पूर्ववत्समासः । सर्वथा सचिवेन वक्तव्यं श्रोतव्यं स्वामिना च । एवम् राजमन्त्रिणोरैकमत्यं स्यादित्यर्थः । ऐकमत्यस्य फलमाह—सदेति । हि

यस्मान्नृपेषु स्वामिषु । अमा सह भवा अमात्यास्तेषु च । 'अव्ययात्यप्' अनुकूले परस्परानुरक्तेषु सत्सु सर्वसम्पदः सदा रतिमनुरागं कुर्वते । न जातु जहती त्यर्थः ।' अतो मया वक्तव्यं त्वया च श्रोतव्यमिति भावः । अत्रैवम् राजमन्त्रि णोर्हितानुपदेशतदश्रवणनिन्दासामर्थ्यसिद्धिरैकमत्यलक्षणकारणस्य निर्दिष्टस्य सर्व सम्पत्सिद्धिरूपकार्येण समर्थनात्कार्येण कारणसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः तदुक्तं —

सामान्यविशेषकार्यकारणभावाभ्यां निर्दिष्टप्रकृतसमर्थनमर्थान्तरन्यासः ॥५॥

प्रकरण—राजा और अमात्यों में एकमत बना रहने से ही राज्य की समृद्धि बनी रह सकती है, इस बात को कहकर वनेचर स्वामी के प्रति विनय को प्रकट करता है—

निसर्गदुर्बोधमबोधविक्लवाः
क्व भूपतीनां चरितं क्व जन्तवः ।
तवानुभावोऽयमवेदि यन्मया
निगूढतत्त्वं नयवर्त्म विद्विषाम् ॥६॥

अन्वयः—क्व भूपतीनाम् निसर्गदुर्बोधम् चरितम् । क्व अबोधविक्लवाः जन्तवः । अयम् तव अनुभावः यत् मया विद्विषाम् निगूढतत्त्वम् नयवर्त्म अवेदि ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—'क्व' कुत्र 'भूपतीनां' नृपाणां 'निसर्गदुर्बोधं' निसर्गेण स्वभावेन दुर्बोधं दुःखेन कष्टेन वा बुध्यते अधिगम्यते इति तादृशं दुर्ज्ञेयमित्यर्थः भावः 'चरितं' वृत्तं वर्तते । 'क्व' कुत्र च 'अबोधविक्लवाः' अबोधेन अज्ञानेन विक्लवाः विह्वलाः 'जन्तवः' प्राणिनः साधारणाः जनाः इत्यर्थः सन्ति । 'अयम्' एषः तव भूपते एव 'अनुभावः' प्रभावः कृपा वा अस्ति यत् मया साधारणेन किरातेन 'विद्विषां' शत्रूणां दुर्योधनादीनां निगूढतत्त्वम्' निगूढम् अतिगुप्तं तत्त्वं याथार्थ्यं यस्य तत् 'नयवर्त्म' नयस्य नीतेः वर्त्म मार्गः षाड्गुण्यादिप्रयोगः 'अवेदि' विज्ञातम् ॥६॥

शब्दार्थ—**निसर्गदुर्बोधम्**=स्वभाव से ही कठिनाई से जाना जा सकने वाला । **अबोधविक्लवाः**=अज्ञान से विमूढ । **क्व**=कहाँ । **भूपतीनाम्**=राजाओं का । **चरितम्**=चरित्र । **जन्तवः**=साधारण जन । **तवानुभावोऽ**

मत्वेदि। तव=तेरा। अनुभावः=प्रभाव। अयम्=यह। अवेदि=जान लिया। निगूढतत्त्वम्=अति गुप्त रहस्यों वाला। नयवर्त्म=नीति का मार्ग। विद्विषाम्=शत्रुओं का।

हिन्दी अर्थ—कहाँ तो राजाओं का स्वभावतः ही कठिनाई से जाना जा सकने वाला चरित है कहाँ अज्ञान से विमूढ साधारण जन है। यह आपका ही प्रभाव है, जो मैंने शत्रुओं के अतिगुप्त रहस्यों वाले नीति के मार्ग को जान लिया है ॥६॥

भाव—राजाओं के चरित अर्थात् उनके विचारों और व्यवहार को सामान्य-जन के लिये जानना बहुत कठिन होता है। अत्यधिक शिक्षित व्यक्ति भी इनकी यथार्थता को नहीं जान सकते। अतः मुझ जैसे अज्ञानी वनेचर के लिये राजा दुर्योधन के चरित को जानना कैसे सम्भव था? तो भी मैंने उसकी जो गुप्त नीतियों को जान लिया, वह आपके प्रभाव के कारण ही सम्भव हो सका है।

वाच्यपरिवर्तन—क्व भूपतीनां निसर्गदुर्बोधेन चरितेन भूयते! क्व अबोध-विक्लवैः जनैः! अयं तव अनुभावः यद् अहं विद्विषां निगूढतत्त्वम् नयवर्त्म विदितवान्।

टिप्पणियाँ—निसर्गदुर्बोधम्—निसर्गेण दुर्बोधम्। तृतीया तत्पुरुष समास। नि+√सृज्+घञ्=निसर्ग। दुर्+√बुध्+घञ्=दुर्बोध। **अबोधविक्लवाः**—अबोधेन विक्लवाः। तृतीया तत्पुरुष समास। √बुध्+घञ्=बोध। न बोध=अबोध। वि+√क्लु+अच्=विक्लव। **भूपतीनाम्**—भुवः पतिः भूपतीः। षष्ठी तत्पुरुष समास। षष्ठी विभक्ति का बहुवचन=भूपतीनाम्। **चरितम्**—√चर्+क्त=चरित। **क्व**—कस्मिन् के अर्थ में किम् अत्=क्व। **अनुभावः**—अनुभूयते अर्थ में अनु+√भू+घञ्=अनुभाव। **अवेदि**—√विद् धातु से कर्म से लुङ् लकार प्रथम पुरुष का एकवचन। **निगूढतत्त्वम्**—निगूढ तत्वं यस्मिन् तत्। बहुव्रीहि समास। नि+√गूह+क्त=निगूढ। तत्+त्व=तत्व। **नयवर्त्म**—नयस्य वर्त्म। षष्ठी तत्पुरुष समास। नीयते+अनेन अर्थ में √नी+अच्=नय। **विद्विषाम्**—द्वेष्टि अर्थ में वि+√द्विष्+क्विप्=विद्विष्। षष्ठी विभक्ति का बहुवचन=विद्विषाम्।

अलङ्कार—विषम और उदात्त। विषम अलङ्कार का लक्षण—

विषमं वर्ण्यते यत्र घटनाननुरूपयोः।

जहाँ दो परस्पर विरुद्ध वस्तुओं का साथ-साथ वर्णन किया जाते वहाँ विषम अलङ्कार होता है। यहाँ राजाओं और सामान्य जनों के परस्पर विरुद्ध चरितों का वर्णन करने से विषम अलङ्कार है। उदात्त का लक्षण—

उदात्तं वस्तुनः सम्पद् महतां चोपलक्षणम् ।

जहाँ वस्तुओं की समृद्धि या महान् पुरुषों के प्रभाव का वर्णन किया जावे, वहाँ उदात्त अलङ्कार होता है, यहाँ युधिष्ठिर का महान् प्रभाव दिखलाया जाने के कारण उदात्त अलङ्कार है।

छन्द—वंशस्थ ।

विशेष कथन—कवि का कहना है कि राजाओं को अपने चरित और व्यवहार को सामान्य जनों से दुर्ज्ञेय रखना चाहिये। ऐसा न होने पर राजा की सब गुप्त बातें खुल जाती हैं। उसकी नीतियाँ गुप्त होनी चाहियें, जिनको अतिविश्वासी व्यक्ति ही जान सकें। राजा का नीतिमार्ग छः गुणों—सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव तथा चार उपायों—साम, दान, दण्ड और भेद से युक्त होता है।

घण्टापथ टीका—निसगेति। निसर्गदुर्बोधं स्वभावदुर्ग्रहम्। 'ईषद्दुः'—इत्यादिना खल्प्रत्ययः। भूपतीनां चरितम् क्व। अबोधविक्लवा अज्ञानोपहता जन्तवः। मादृशाः पामरजना इत्यर्थः। क्व नोभयं संघटत इत्यर्थः। तथापि निगूढतत्वम् संवृतयाथार्थ्यं विद्विषां नयवर्त्म षाड्गुण्यप्रयोगः 'सन्धिविग्रहयानानि संस्थाप्यासनमेव च। द्वैधीभावश्च विज्ञेया षड्गुणाः नीतिवेदिनाम्॥' इत्यादिरूपो यन्मयाऽवेदि। ज्ञातमिति यावत्। विदेः कर्मणि लुङ्। अयम् इदं वेदनमित्यर्थः। विधेयप्राधान्यात् पुंल्लिगनिर्देशः। तवानुभावः सामर्थ्यम्। अनुगतो भावोऽनुभाव इति घञन्तेन प्रादिसमासः। न तूपसृष्टाद् घञ् प्रत्ययः। 'श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे' इत्यनुपसर्गाद्भवतेर्धातोर्घञ्विधानात्। अत एव काशिकायाम्—'कथं प्रभावो राज्ञां प्रकृष्टो भाव इति प्रादिसमासः' इति। दोषपरिहारो सम्यग्ज्ञात्वैव विज्ञापयामि। न तु वृथा कर्णकठोरं प्रलपामीत्याशयः॥६॥

प्रकरण—धृष्टता के लिये क्षमा माँग कर और अपनी विनयशीलता प्रदर्शित करके किरात कुरु देश का समाचार बताना आरम्भ करता है। सबसे पहले वह दुर्योधन राज्य की स्थिरता के लिये क्या कर रहा है, इस बात को बताता है—

विशङ्कमानो भवतः पराभवं
नृपासनस्थोऽपि वनाधिवासिनः ।
दुरोदरच्छद्मजितां समीहते
नयेन जेतुं जगतीं सुयोधनः ॥७॥

अन्वयः—नृपासनस्थः अपि सुयोधनः वनाधिवासिनः भवतः पराभवम् विशङ्कमानः दुरोदरच्छद्मजिताम् जगतीम् नयेन जेतुम् समीहते ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—'नृपासनस्थः' नृपस्य राज्ञः आसने सिंहासने इत्यर्थः स्थितः उपविष्टः अपि सुयोधनः धृतराष्ट्रस्य पुत्रः दुर्योधनः 'वनाधिवासिनः' वनम् अरण्यम् अधिवसति इति तस्मात् राज्यभ्रष्टादपि भवतः 'पराजयं' पराभवं 'विशङ्कमानः' उत्प्रेक्षमाणः 'दुरोदरच्छद्मजितां' दुरोदरस्य द्यूतस्य छद्मना कपटेन जितां स्वायत्तीकृतां 'जगतीं' पृथिवीं 'नयेन' नीत्या 'जेतुं' वशीकर्तुं 'समीहते' इच्छति ॥७॥

शब्दार्थ—**विशङ्कमानः**=आशङ्का करता हुआ । **भवतः**=आपसे । **पराभवम्**=पराजय । **नृपासनस्थः**=राजसिंहासन पर बैठा हुआ । **अपि**=भी । **वनाधिवासिनः**=वन में रहने वाले । **दुरोदरच्छद्मजिताम्**=जुए के छल से जीती हुई । **समीहते**=चाहता है । **नयेन**=नीति से । **जेतुम्**=जीतना । **जगतीम्**=पृथिवी को ।

हिन्दी अर्थ—राजसिंहासन पर बैठा हुआ भी वह दुर्योधन वन में रहने वाले आपसे पराजय की आशंका करता हुआ, जुए के छल से जीती हुई पृथिवी को नीति द्वारा अपने वश में रखना चाहता है ॥७॥

भाव—दुर्योधन ने द्यूत-छल करके आपसे राज्य तो जीत लिया, किन्तु वह आपके पराक्रम और शील से भयभीत है । वह डरता है कि वनवास और अज्ञातवास की अवधि व्यतीत होने के बाद आपको राज्य वापिस न करना पड़े । यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो आप बलपूर्वक उससे राज्य को छीन लेंगे और युद्ध होने पर उसकी पराजय होगी । राजकर्मचारी और प्रजा भी आपके गुणों को याद करके आपकी ओर हो जावेगी । इसलिए वह नीति का प्रयोग करके, राजकर्मचारियों और प्रजा को प्रसन्न करके राज्य को अपने वश में रखना चाहता है ।

वाच्यपरिवर्तन—नृपासनस्थेन अपि सुयोधनेन भवतः पराभवम् विशङ्कमानेन दुरोदरच्छद्मजिता जगती नयेन जेतुं समीह्यते ।

टिप्पणियाँ—विशङ्कमानः—वि + √शङ्क + शानच् = विशङ्कमानः । **भवतः**—भू + शतृ = भवत् । पञ्चमी विभक्ति का एकवचन = भवतः । 'भीत्रार्थानां भयहेतुः' सूत्र से भवतः में पञ्चमी विभक्ति हुई । डरने और रक्षा करने के अर्थ में प्रयुक्त होने वाली धातुओं के योग में भय के हेतु में पञ्चमी विभक्ति होती है । यहाँ दुर्योधन के भय के हेतु भवत् में पञ्चमी विभक्ति हुई । **पराभवम्**—परा + √भू + अच् = पराभव । **नृपासनस्थः**—नृपस्य आसनं नृपासनं सिंहासनम् । तस्मिन् स्थितः अर्थ में नृप + आसन + स्था + क = नृपासनस्थ । **वनाधिवासिनः**—वनम् अधिवसति इति तस्मात् अर्थ में वन + अधि + √वस् + इति = वनाधिवासिन् । पञ्चमी विभक्ति का एकवचन = वनाधिवासिनः । भवतः का विशेषण होने से पञ्चमी विभक्ति हुई । **दुरोदरच्छद्मजिताम्**—दुरोदरस्य छद्मेन जिताम् । षष्ठी तत्पुरुष और तृतीया तत्पुरुष समास । दुष्टम् आ समन्ताद् उदरं यस्य तत् अर्थ में दुर् + आ + उदर = दुरोदर । √जि + क्त + टाप् = जिता । **जेतुम्**—√जि + तुमुन् । **सुयोधनः**—सु + √युध् + ल्युट् (अन) = सुयोधन ।

अलङ्कार—काव्यलिङ्ग ।

नीति द्वारा पृथिवी को जीतने का प्रयत्न कर रहा है, इस वाक्य के हेतु के रूप में वह आपसे भयभीत है इन पदों के अर्थों को प्रस्तुत किया गया है । अतः यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है ।

छन्द—वंशस्थ ।

विशेष कथन—कवि का कहना है कि राज्य को प्राप्त कर लेने की अपेक्षा उसकी रक्षा करना और सत्ता को सुदृढ़ बनाये रखना अधिक कठिन होता है । नीति का प्रयोग करके एवं राजकर्मचारियों और प्रजा को सन्तुष्ट करके ही राजसत्ता को सुदृढ़ बनाया जा सकता है ।

घण्टापथ टीका—विशङ्कमान इति सुखेन युध्यते सुयोधनः । भाषायां शासियुधिदृशिधृषिमृषिभ्यो युज्वाच्यः' । नृपासनस्थः सिंहासनस्थोऽपि । वनमधिवसंतीति वनाधिवासिनो वनस्थात् । राज्यभ्रष्टादपीत्यर्थः । भवतस्त्वत्तः पराभवं पराजयं

विशङ्कमान उत्प्रेक्षमाणः सन् । दुष्टमुदरमस्येति दुरोदरं द्यूतम् । पृषोदरादित्वात्साधुः । 'दुरोदरो द्यूतकारे पण द्यूते दुरोदरम्' इत्यमरः । तस्य च्छद्मना मिषेण जितां लब्धा दुर्नयार्जितां जगती महीं । 'जगती विष्टपे मह्यां वास्तुच्छन्दोविशेषयोः' इति वैजयन्ती । नयेन नीत्वा जेतुं वशीकर्तुं समीहते व्याप्रियते । न तदास्त इत्यर्थः । बलवत्स्वामिकम् विशुद्धागमम् च धनम् भुञ्जानस्य कुतो मनसः समाधिः इति भावः । अत्र दुरोदरच्छद्मजिताम् इति विशेषणद्वारेण पदार्थेन चतुर्थपदार्थप्रतिहेतुत्वेनोपन्यासात् द्वितीयकाव्यलिङ्गमलङ्कारः । तदुक्तं—हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गमुदाहृतम् ॥७॥

प्रकरण—वनेचर कुरुदेश के समाचार बता रहा है कि दुर्योधन नीतियों के प्रयोग द्वारा अपनी सत्ता को सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न कर रहा है। अब वह उपायों को बताता है—

तथाऽपि जिह्मः स भवज्जिगीषया
तनोति शुभ्रं गुणसम्पदा यशः ।
समुन्नयन् भूतिमनार्यसंगमाद्
वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः ॥८॥

अन्वयः—तथा स जिह्मः भवज्जिगीषया अनार्यसंगमात् भूतिम् समुन्नयन् अपि गुणसम्पदा शुभ्रं यशः तनोति । महात्मभिः समम् विरोधः अपि वरम् ॥८॥

संस्कृत व्याख्या—तथा अपि भवतः पराभवं विशङ्कमानः स 'जिह्मः' कुटिलः दुर्योधनः 'भवज्जिगीषया' भवन्तं जेतुमिच्छया गुणैरेव भवन्तं जेष्यामि इति कामनया 'अनार्यसंगमात् अनार्याणां दुष्टानां शकुनिकर्णादीनां संगमात् सम्पर्काद् हेतोः भूतिं लोकस्य ऐश्वर्यं समुन्नयन्' प्रवर्धयन् अपि गुणसम्पदा गुणानां शौर्यदाक्षिण्यादीनां सम्पदा सम्पत्या 'शुभ्रं' निष्कलङ्कं यशः कीर्तिं 'तनोति' विस्तारयति । 'महात्मभिः' उदारप्रकृतिकैः भवत्सदृशैः पुरुषैः 'समं' सार्धं 'विरोधः' शत्रुत्वम् अपि वरं श्रेष्ठं भवति ।

शब्दार्थ—तथापि = तो भी । जिह्म = कुटिल । स = वह । भवज्जिगीषया = आपको जीतने की इच्छा से । तनोति = विस्तृत कर रहा है । शुभ्रम् =

उज्जवल। गुणसम्पदा=गुणों की सम्पत्ति से। समुन्नयन्=बढ़ाता हुआ। भूतिमनार्यसङ्गमात्। भूतिम्=ऐश्वर्य को। अनार्यसङ्गमात्=दुष्ट मनुष्यों के संसर्ग से। वरम्=अच्छा। विरोधोऽपि=शत्रुता भी। समम्=साथ। महात्मभिः=महान् पुरुषों के।

हिन्दी अर्थ—आपसे पराजय की आशंका करता हुआ वह कुटिल दुर्योधन आपको जीतने की इच्छा से दुष्ट मनुष्यों के संसर्ग से ऐश्वर्य को बढ़ाता हुआ भी श्रेष्ठ गुणों की सम्पत्ति से अपने उज्जवल यश को विस्तृत कर रहा है। महान् पुरुषों के साथ शत्रुता करना भी अच्छी होता है। किन्तु दुर्जनों के साथ किसी भी प्रकार की मित्रता अच्छा नहीं है॥८॥

भाव—वह दुर्योधन अत्यधिक कुटिल स्वभाव का है। आपको जीतना ही उसका उद्देश्य है। इसलिये यद्यपि वह दुष्ट मनुष्यों, कर्ण, शकुनि आदि की सहायता से अपने कोष आदि को खूब बढ़ा रहा है, तथापि वह अपने उज्जवल गुणों को भी प्रकट कर रहा है। बड़ों के साथ विरोध करना भी अच्छा होता है, क्योंकि इससे नाम तो होता ही है।

वाच्यपरिवर्तन—तथा तेन जिह्मेन भवज्जिगीषया अनार्यसंगमाद् भूतिं समुन्नयता अपि गुणसम्पदा शुभ्रं यशः तन्यते। महात्मभिः समं विरोधेन अपि वरम्।

टिप्पणियाँ—भवज्जिगीषया—भवतः जिगीषया। षष्ठी तत्पुरुष समास। जेतुम् इच्छा अर्थ में √जि+सन्+अ+टाप्=जिगीषा। तृतीया विभक्ति का एकवचन=जिगीषया। **गुणसम्पदा**—गुणानां सम्पदा। षष्ठी तत्पुरुष समास। सम्+√पद्+क्विप्=सम्पद्। तृतीया विभक्ति का एकवचन=सम्पदा। **समुन्नयन्**—सम्+उत्+√नी+शतृ=समुन्नयत्। प्रथमा विभक्ति का एकवचन=समुन्नयन्। **भूतिम्**—√भू+क्तिन्=भूति। द्वितीया विभक्ति का एकवचन=भूतिम्। **अनार्यसंगमात्**—अनार्याणां संगमात्। षष्ठी तत्पुरुष समास। √ऋ+ण्यत्=आर्य। जिनके कर्म श्रेष्ठ होते हैं, वे आर्य कहलाते हैं। न+आर्य=अनार्य। दुर्जन मनुष्य। सम+√गम्+अप्=संगम। **महात्मभिः**—महान् आत्मा यस्य स महात्मा। बहुव्रीहि समास। तृतीया विभक्ति का बहुवचन=महात्मभिः।

अलङ्कार—अर्थान्तरन्यास और काव्यलिङ्ग।

वह दुर्योधन आप जैसे उदार प्रकृति के व्यक्ति को जीतना चाहता है, इस विशेष का महात्माओं के साथ विरोध करना भी अच्छा होता है, इस सामान्य से समर्थन किया जाने के कारण यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

अनार्यों के सम्पर्क से वह ऐश्वर्य को बढ़ा रहा है, इन पदों के अर्थों को विरोध का हेतु बना दिया जाने से यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—मल्लिनाथ ने इस पद्य में 'समाप्तपुनरात्त दोष' बताया है। उसका कहना है कि 'स शुभ्रं यशः तनोति' इस वाक्य के समाप्त हो जाने के बाद कवि ने दूसरा वाक्य 'समुन्नयन् भूतिमनार्यसंगमात्' यह वाक्य प्रारम्भ कर दिया। यह वाक्य समाप्त नहीं हुआ। इसलिये यहाँ 'समाप्तपुनरात्त' दोष है। परन्तु वस्तुतः 'समुन्नयन् भूतिमनार्यसंगमात्' पहले ही वाक्य का अंश है, जैसे कि संस्कृत-व्याख्या और हिन्दी-अर्थ से स्पष्ट है। इसलिये यहाँ 'समाप्तपुनरात्त दोष' नहीं है।

महाकवि ने व्यक्त किया है कि कुछ न करने से महान् व्यक्तियों के साथ विरोध करना भी अच्छा होता है, क्योंकि इससे मनुष्य को अपने को ऊपर उठाने का उत्साह मिलता है और उसका नाम तो होता ही है।

घण्टापथ टीका—तथाऽपीति तथाऽपि सशंकोऽपि। जिह्मः—वक्रः। वञ्चकं इति यावत्। स दुर्योधनो भवज्जिगीषया। गुणैर्भवन्तमाक्रमितुमिच्छतीत्यर्थः। हेतौ' इति तृतीया गुणसम्पदा दानदाक्षिण्यादिगुणगरिम्णा। करणेन शुभ्रं यशस्तनोति। स खलो गुणलोभनीयां त्वत्सम्पदमात्मसात्कर्तुं त्वत्तोऽपि गुणवत्तामात्मनः प्रकटयति इत्यर्थः। नन्वेवं गुणिनः सतोऽपि सज्जनविरोधो महानस्त्यस्य दोष इत्याशङ्क्य सोऽपि सत्संसर्गलाभे नीचसंगमाद् वरमुत्कर्षावहत्वादित्याह—समिति। तथा हि। भूतिं समुन्नयन्नुत्कर्षमापादयन्। लटः शतृशानचो—इत्यादिना शतृप्रत्ययः। पुनर्लङ्ग्रहणसामर्थ्यात्प्रथमासामानाधिकरण्यम्। महात्मभिः समम्। सहेत्यर्थः। 'साकं सत्रा समं सह' इत्यमरः। अनार्यसङ्गमाद् दुर्जनसंसर्गात्। 'पञ्चमी विभक्ते' इति पञ्चमी। विरोधोऽपि वरं मनाक्प्रियः 'देवाद्वृते वरः श्रेष्ठे त्रिषु क्लीबं मनाक्प्रिये' इत्यमरः। अत्र मैत्र्यपेक्षया मनाक्प्रियत्वं विरोधस्य भूतिं समुन्नयन् इत्यस्य पूर्ववाक्यान्वये समाप्तस्य वाक्यार्थस्य पुनरादानात्समाप्तपुनरात्ताख्यदोषापत्तिः। तदुक्तं काव्यप्रकाशे—'समाप्तपुनरादानात्समाप्त-

पुनरात्तकम् इति। न च पूर्ववाक्यदान्तरमेतत्। येनोक्तदोषपरिहारः स्यात्। अर्थान्तरन्यासालङ्कारः। स च भूतिसमुन्नयनस्य पदार्थविशेषण द्वारा विरोधवलं प्रति हेतुत्वाभिधानरूपकाव्यलिङ्गानुप्राणित इति ॥८॥

प्रकरण—युधिष्ठिर पर विजय प्राप्त करने के लिये दुर्योधन द्वारा किये जाने वाले उपायों का वनेचर वर्णन कर रहा है कि उसने गुणों का विस्तार किया है तथा प्रभूत धन एकत्रित कर लिया है। यह नीति और बल दोनों का आश्रय ले रहा है—

कृतारिषड्वर्गजयेन मानवी-
मगम्यरूपां पदवीं प्रपित्सुना।
विभज्य नक्तंदिवमस्ततन्द्रिणा
वितन्यते तेन नयेन पौरुषम् ॥९॥

अन्वयः—कृतारिषड्वर्गजयेन अगम्यरूपाम् मानवीम् पदवीम् प्रपित्सुना अस्ततन्द्रिणा तेन नक्तं दिवं विभज्य नयेन पौरुषम् वितन्यते ॥९॥

संस्कृत-व्याख्या—'कृतारिषड्वर्गजयेन' कृतः विहितः अरीणां अन्तःशत्रूणां षण्णां वर्गस्य काम-क्रोध-लोभ-मद-मोह मत्सराणां जयः विजयः येन तेन काम-क्रोधादीनां हृदयान्तःशत्रूणां विजेत्रा 'अगम्यरूपाम् अगम्यं दुष्प्राप्यं रूपं स्वरूपं यस्याः तां 'मानवीं' मनुसम्बन्धिनीं 'पदवीं' पद्धतिं प्रजापालनमार्गं 'प्रपित्सुना' प्राप्तुमिच्छुकेन 'अस्ततन्द्रिणा' अस्ता निरस्ता तन्द्रिः आलस्य येन तेन सततं जागरूकेण इत्यर्थः तेन दुर्योधनेन 'नक्तं दिवं' नक्तं च दिवा च अहर्निशं विभज्य' विभागं कृत्वा अस्मिन् समये मया इदं कार्यम् इति निश्चित्य 'नयेन' नीत्या पौरुषं' पुरुषार्थः 'वितन्यते' विस्मार्यते ॥९॥

शब्दार्थ—**कृतारिषड्वर्गजयेन**=काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह और मत्सर इन छः शत्रुओं को जीतने वाले। **मानवीम्**=मनु द्वारा प्रतिपादित। **अगम्यरूपाम्**=मनुष्यों द्वारा न जाने जा सकने वाली। **पदवीम्**=पद्धति। **प्रपित्सुना**=प्राप्त करने की इच्छा वाला। **विभज्य**=विभाग करके। **नक्तंदिवम्**=रात तथा दिन में। **अस्ततन्द्रिणा**=आलस्य को छोड़कर। **वितन्यते**=विस्तार कर रहा है। **नयेन**=नीति से। **पौरुषम्**=पुरुषार्थ।

हिन्दी अर्थ—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर इन छः अन्तःशत्रुओं

को जीतने वाला, मनुष्यों द्वारा न जानी जा सकने वाली, मनु द्वारा प्रतिपादित प्रजा के पालन की पद्धति को प्राप्त करने की इच्छा वाला, आलस्य का परित्याग करने वाला वह दुर्योधन दिन और रात में किये जाने वाले कार्यों को बाँटकर अपनी नीति द्वारा पुरुषार्थ का विस्तार कर रहा है ॥९॥

भाव—उस दुर्योधन ने काम आदि छः शत्रुओं को वश में कर लिया है। वह मनु द्वारा बताई गई पद्धति से प्रजा का पालन करने का प्रयत्न कर रहा है। आलस्य को उसने दूर कर दिया है। इस कार्य को किस समय करना है, इसका उसने विभाजन कर लिया है। यह केवल नीति पर या सैन्य बल पर ही आश्रित नहीं है। वह नीति द्वारा सैन्यबल का संचालन करता है।

वाच्यपरिवर्त—कृतारिषड्वर्गजयः अगम्यरूपां मानवीं पदवीं प्रपित्सुः अस्ततन्द्रिः स नक्तंदिवं विभज्य नयेन पौरुषं वितनोति।

टिप्पणियाँ—**कृतारिषड्वर्गजयेन**—कृतः अरीणां षणां वर्गस्य जयः येन तस्य। तत्पुरुषगर्भित बहुव्रीहि समास। √कृ + क्त = कृत। √जि + अच् = जय। **मानवीम्**—मनोः इयम् अर्थ में मनु + अण् + ङीप् = मानवी। द्वितीया विभक्ति का एकवचन = मानवीम्। **अगम्यरूपाम्**—अगम्यं रूपं यस्याः ताम्। बहुव्रीहि समास। √यम् + यम् + गम्य। न + गम्य = अगम्य। अगम्य + रूप + टाप् = अगम्यरूपा। द्वितीया विभक्ति का एकवचन = अगम्यरूपाम्। **पदवीम्**—√पद् + अवि + ङीष् = पदवी। द्वितीया विभक्ति का एकवचन = पदवीम्। **प्रपित्सुना**—प्र + √पद् + सन् + उ = प्रपित्सु। तृतीया विभक्ति का एकवचन = प्रपित्सुना। विभज्य—वि + √भज् + क्त्वा (ल्यप्)। **नक्तंदिवम्**—नक्तं च दिवा च। द्वन्द्व समास। समासान्त अच् प्रत्यय होकर 'अचतुरविचतुर०' सूत्र से निपातन द्वारा नक्तंदिवम् रूप बनता है। **अस्ततन्द्रिणा**—अस्ता तन्द्रिः येन तेन। बहुव्रीहि समास। √अस् + क्त = अस्त। √तन्द् + क्िन्—तन्द्रि। **पौरुषम्**—पुरुषस्य इदं कर्म अर्थ में पुरुष + अण् = पौरुष।

छन्द—**वंशस्थ**।

विशेष कथन—महाकवि भारवि ने इस श्लोक में राजा के लिये निम्न उपदेश दिये हैं—

१. राजा को काम, क्रोध लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या इन छः शत्रुओं को अपने वश में रखना चाहिये।

२. राजा को चाहिये कि वह प्रजा पर मनु द्वारा बताई गई पद्धति से शासन करे।

३. राजा को सदा सावधान रहना चाहिये। आलस्य का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये।

४. राजा को प्रत्येक कार्य का समय निश्चित कर लेना चाहिये और उसके अनुसार कार्य करना चाहिये।

५. शासन का संचालन केवल नीति से ही अथवा केवल सैन्यबल से ही नहीं होता। शासन की सुदृढ़ता के लिये नीति से सैन्यबल का संचालन होना चाहिये।

घण्टापथ टीका—कृतेति। षण्णां वर्गः षड्वर्गः। अरीणामन्तःशत्रूणां षड्वर्गोऽरिषड्वर्गः। शिवभागवतवत्समासः। तस्य जयः कृतो येन तेन तथोक्तेन। विनीतेनेत्यर्थः। विनीताधिकारं प्रजापालनमिति भावः। अगम्यरूपां पुरुषमात्रदुष्प्राप्याम्। मनोरिमां मानवीम्। मनूपदिष्टमर्यादारक्षणामित्यर्थः। पदवीं। प्रजापालनपद्धतिं प्रपित्सुना प्रपत्तुमिच्छुना। प्रपद्यतेः सन्नन्तादुप्रत्ययः 'सनि मीमा'— इत्यादिनेसादेशः। 'अत्र लोपोऽभ्यासस्य' इत्यभ्यासलोपः। अस्ता तन्द्रिरालस्यं यस्य तेनातन्द्रिणा। अनलसेनेत्यर्थः। तन्द्रिशब्दो [illegible] धातुः। तस्मात्। 'षड्क्रयादयश्च' इत्यौणादिकः क्रिन्प्रत्ययः कृदिकारादक्तिनो वा ङीप् वक्तव्यः इति। 'वन्दीघटीतरीतन्द्रीति ङीषन्तोऽपि' इति क्षीरस्वामी। यथा रामायणे प्रयोगः—निस्तन्द्रिरप्रमत्तश्च स्वदोषपरदोषवित्' इति। तेन दुर्योधनेन। पुरुषस्य कर्म पौरुषं पुरुषकारः उद्योग इति यावत्। युवादित्वादण् प्रत्ययः। पौरुषं पुरुषस्योक्ते भावे कर्मणि तेजसि इति विश्वः। नक्तं च दिवा च नक्तंदिवं अहोरात्रयोरित्यर्थः 'अचतुर' इत्यादिना सप्तम्यर्थवृत्त्योरव्ययोर्द्वन्द्वनिपातेऽच्समासान्तः। विभज्याख्यां वेलायामिदं कर्मेति विभागं कृत्वा नयेन नीत्या वितन्यते विस्तार्यते ॥६॥

प्रकरण—वनेचर कह रहा है कि राजा दुर्योधन राज्य को सुदृढ़ करने के लिये नीति और पुरुषार्थ दोनों का पालन कर रहा है। इसके अतिरिक्त राज्य को दृढ़ बनाने के लिये वह सेवकों, मित्रों और स्वजनों को भी अनुकूल बनाये हुए हैं—

सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनः
समानमानान्सुहृदश्च बन्धुभिः ।
स सन्ततं दर्शयते गतस्मयः
कृताधिपत्यामिव साधु बन्धुताम् ।।१०।।

अन्वयः—गतस्मयः स सन्ततम् अनुजीविनः प्रीतियुजः सखीन् इव सुहृदः च बन्धुभिः समानमानान्, बन्धुताम् कृताधिपत्याम् इव च साधु दर्शयते ।।१०।।

संस्कृत-व्याख्या—'गतस्मयः' गतः निरस्तः स्मयः अहंकारः यस्य स निरहंकारः स दुर्योधनः 'सन्ततम्' अनवरतम् 'अनुजीविनः' सेवकान् 'प्रीतियुजः' प्रीत्या स्नेहेन युज्यन्ते इति तान् स्निग्धान् सखीन् मित्राणि च 'बन्धुभिः' स्वजनैः 'समानमानान्' समानः तुल्यः मानः आदरः येषां तथाभूतान् इव, 'बन्धुतां' स्वजनान् च 'कृताधिपत्यां' कृतं स्वीकृतम् आधिपत्यं प्रभुत्वं येषां तथाभूतान् इव 'साधु' सम्यक् प्रकारेण 'दर्शयते' निरूपयते ।।१०।।

शब्दार्थ—**सखीन् इव**=मित्रों के समान । **प्रीतियुजः**=प्रेम करने वाले । **अनुजीविनः**=सेवकों को । **समानमानान्**=समान रूप से आदर प्राप्त करने वाले । **सुहृदः**=मित्रों को । **बन्धुभिः**=सम्बन्धियों से । **सन्ततम्**=निरन्तर । **दर्शयते**=दिखाता है । **गतस्मयः**=अहंकार से शून्य होकर । **कृताधिपत्याम् इव**=मानो आधिपत्य ही स्वीकार कर लिया हो । **साधु**=अच्छी तरह से । **बन्धुताम्**=सम्बन्धियों को ।

हिन्दी अर्थ—अहंकार से शून्य होकर वह दुर्योधन सेवकों को उसके स्नेही मित्रों के समान, मित्रों को उसके सदृश आदर पाने वाले सम्बन्धियों के समान और सम्बन्धियों को मानो उसका आधिपत्य ही स्वीकार कर लिया हो, इस प्रकार अच्छी तरह से निरन्तर प्रदर्शित करता है ।।१०।।

भाव—दुर्योधन ने अहंकार का परित्याग कर दिया है । सेवकों के साथ वह इस प्रकार का व्यवहार करता है कि वे अपने आपको उसका स्नेही मित्र समझते हैं । मित्रों के साथ वह इस प्रकार का व्यवहार करता है कि वे अपने आपको उसका बन्धु समझते हैं । बन्धुओं के साथ वह इस प्रकार का व्यवहार करता है कि वे समझते हैं कि मानो दुर्योधन ने उनका प्रभुत्व ही स्वीकार कर लिया हो ।

वाच्यपरिवर्तन—गतस्मयेन तेन सन्ततं अनुजीविनः प्रीतियुजः सखायः इ सुहृदः बन्धुभिः समानमानाः, बन्धुता च कृताधिपत्या इव साधु दर्शयते।

टिप्पणियाँ—सखीन्—सह समानं ख्यायते अर्थ में सह + √ख्या + डि =सखि। द्वितीया विभक्ति का बहुवचन सखीन्। **प्रीतियुजः**—प्रीत्या युज्यन्ते अर्थ में प्रीति + √युज् + क्विप् = प्रीतियुज्। द्वितीया विभक्ति का बहुवचन =प्रीतियुजः। **अनुजीविनः**—अनुजीवितुं शीलं येषां ते ताच्छील्य अर्थ में णिनि प्रत्यय। अनु + √जीव् + णिनि = अनुजीविन्। द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में = अनुजीविनः। **समानमानान्** = समानः मानः येषां ते। बहुव्रीहि समास सम् + √अन् + अण् = समान। √मान् + घञ् = मान। **सुहृदः**—सु शोभनं हृदयं येषां तान् 'सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः' सूत्र से निपातन द्वारा मित्र अर्थ में सुहृद रूप बना। **बन्धुभिः**—√बन्ध् + उ = बन्धु। तृतीया विभक्ति का बहुवचन =बन्धुभिः। **सन्ततम्**—सम् + √तन् + क्त = सन्तत। **दर्शयते**—√दृश् + णिच्—लट् लकार प्रथम पुरुष का एकवचन। यहाँ प्रेरणा अर्थ में णिच् होता है क्योंकि क्रिया का फल कर्त्ता अर्थात् दुर्योधन को मिला है अतः दर्शयते में आत्मनेपद हुआ। अणिजन्तावस्था के कर्त्ता की णिजन्तावस्था में कर्म संज्ञा होती है। अनुजीविनः तं पश्यन्ति, स अनुजीविनः दर्शयते, इस प्रकार दृश् धातु की अणिजन्तावस्था पश्यन्ति के कर्त्ता अनुजीवि आदि की दर्शयते इस णिजन्तावस्था में कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति हुई। **गतस्मयः**—गतः स्मयः यस्य स बहुव्रीहि समास। √स्मि + अच् = स्मय। **कृताधिपत्याम्**—कृतः आधिपत्यं यया ताम्। बहुव्रीहि समास √कृ + क्त √कृत। अधि पाति इति अधिपः अधिपस्य भावः अर्थ में अधिप + यक् = आधिपत्य। **बन्धुताम्** = बन्धूनां समूहः समूह अर्थ में 'ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्' सूत्र से तल् प्रत्यय। बन्धु + तल् + टाप् = बन्धुता।

अलङ्कार—उत्प्रेक्षा और एकावली। उत्प्रेक्षा अलंकार का लक्षण—

संभावनमथोत्प्रेक्षा।

उपमेय की उपमान के रूप में संभावना किये जाने पर उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। इस पद्य में अनुजीवि आदि के मित्र रूप में संभावना किये जाने से उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। एकावली अलङ्कार का लक्षण—

त्रीवर्ग - धर्म, अर्थ और काम
त्रेयी - शत्रु, उदासीन, मित्र

स्थाप्यतेपोह्यते वापि यथापूर्वं परं परम्।
विशेषणतया वस्तु यत्र सैकावली द्विधा ॥

उत्तर-उत्तर वस्तु के पूर्व-पूर्व वस्तु के विशेषण के रूप में विधान या निषेध करने पर एकावली अलङ्कार होता है। यहाँ अनुजीविनों के विशेषण के रूप में मित्रों को, मित्रों के विशेषण रूप में बन्धुओं को और बन्धुओं के विशेषण के रूप में कृतस्वाधिपत्य को प्रस्तुत किया जाने से एकावली अलङ्कार हैं।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—इस श्लोक के द्वारा भारवि ने यह उपदेश दिया है कि स्वामी को चाहिये कि वह सेवकों आदि के प्रति अत्यधिक स्नेह और आदर का व्यवहार करे। ताकि वे समझें कि राजा उनको अत्यधिक स्नेह और आदर का पात्र समझता है। इससे वे राजा के प्रति अनुरक्त रहेंगे और उसके लिये प्राणों को त्यागने के लिये भी सदा उद्यत रहेंगे।

घण्टापथ टीका—सखीनिति। गतस्मयो निरहंकारोऽत एव स दुर्योधनः। सन्ततमनारतं साधु सम्यक्। अकपटमित्यर्थः। अनुजीविनो भृत्यान्। प्रीतियुजः स्निग्धान् सखीनिव मित्राणीव। दर्शयते। लोकस्येति शेषः। 'हेतुमति च' इति णिच्। 'णिचश्च' इत्यात्मनेपदम्। शोभनं हृदयं येषां तान् सुहृदो मित्राणि च 'सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः' इति निपातः। बन्धुभिर्भ्रात्रादिभिः समानमानान् तुल्यसत्कारान् दर्शयते। बन्धुनां समूहो बन्धुता ताम्। 'ग्रामजन-बन्धुसहायेभ्यस्तल्'। कृतमाधिपत्यं स्वाम्यं यस्यास्तां कृताधिपत्यामिव दर्शयते। बन्धूनधिपतीनिव दर्शयतीत्यर्थः। यथा भृत्यादिषु सख्यादिबुद्धिर्जायते लोकस्य तथा तान्संभावयतीत्यर्थः। अनुजीव्यादीनां, 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इति कर्मत्वम्। पूर्वे त्वतस्मिन्नेव पदान्वये वाक्यार्थमित्थं वर्णयन्ति—स राजाऽनुजीव्यादि सख्यादीनिव दर्शयते सख्यादय इव ते तु तं पश्यन्ति। सख्यादीमत्वेन पश्यतस्तांस्तथा दर्शयते। स्वमेव छन्दानुवर्तितया स्वदर्शनं तेभ्यः प्रयच्छतीत्यर्थः। अर्थात्तस्येप्सितकर्मत्वम् अणि कर्तुरनुजीव्यादेः अभिवादिदृशोरात्मनेपद-मुपसंख्यानम्' इति पाक्षिकं कर्मत्वम्। एवं चात्राण्यन्तकर्मणो राज्ञोऽण्यन्ते कर्तृत्वेऽपि आरोहयते हस्ती स्वयमेव इत्यादिवदश्रूयमाणकर्मान्तरणाभावान्नायं णेरवादिसूत्रस्त्र विषय इति मत्वा णिचश्च इत्यात्मनेपद प्रतिपेदिरे। भाष्ये तु

प्रेरणादिसूत्रविषयत्वमप्यस्योक्तम् । यथाऽऽह—'पश्यन्ति भृत्या राजानं', 'दर्शयते भृत्यान् राजा', दर्शयते भृत्यैः राजा' अत्रात्मनेपदं सिद्धं भवति इति । अत्र कैयट—'ननु कर्मान्तरसद्भावादत्रात्मनेपदेन भाव्यम् उच्यते'—अस्मात्देवोदाहरणाद् भाष्यकारस्यायमेवाभिप्राय ऊह्यते—अण्यन्तावस्थायां ये कर्तृकर्मणि तद्व्यतिरिक्तकर्मान्तरसद्भावादात्मनेपदं न भवति' । यथा—स्थलमारोहयति मनुष्यान् इति । इह त्वण्यन्तावस्थायां कर्तृणां भृत्यानां णौ कर्तृत्वमिति भवत्येवात्मनेपदमिति ॥१०॥

प्रकरण—दुर्योधन के गुणों का वर्णन करते हुये ही वनेचर बताता है कि वह धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों को उचित प्रकार से सिद्ध कर रहा है-

असक्तमाराधयतो यथायथं
　　विभज्य भक्त्या समपक्षपातया ।
गुणानुरागादिव सख्यमीयिवान्
　　न बाधतेऽस्य त्रिगणः परस्परम् ॥११॥

अन्वयः—यथायथम् विभज्य समपक्षपातया भक्त्या असक्तम् आराधयतः अस्य त्रिगणः गुणानुरागाद् इव सख्यम् ईयिवान् परस्परम् न बाधते ॥११॥

संस्कृत-व्याख्या—'यथायथं' यथायोग्यं सम्यग् विविच्य इत्यर्थः 'विभज्य' कार्याणां परस्परं विभागं कृत्वा 'समपक्षपातया' समः समानः पक्षैः पातः आसक्तिविशेषः यत्र तया 'भक्त्या' अनुरागविशेषेण 'असक्तम्, अनासक्तरूपेण निरन्तरं वा 'आराधयतः' सेवमानस्य सर्वान् प्रति तुल्येन एव अनुरागेण व्यवहरतः इत्यर्थः अस्य दुर्योधनस्य 'त्रिगणः' धर्म-अर्थ कामानां गणः 'गुणानुरागात् इव' दुर्योधनस्य गुणेषु स्नेहाद् इव गुणित्वाद् अस्य दुर्योधनस्य आश्रयः उचित इति स्नेहादिव 'सख्यं' मित्रताम् 'ईयिवान्' प्राप्तवान् परस्परम् अन्योऽन्यं न 'बाधते विरुद्धो भवति । परस्परविरुद्धानपि धर्मार्थकामान् दुर्योधनः स्वकुशलव्यवहारेण नित्यं वर्द्धयते इति भावः ॥११॥

शब्दार्थ—**असक्तम्** = निरन्तर । **आराधयतः** = आराधना करते हुये । **विभज्य** = बांटकर । **भक्त्या** = अनुराग से । **समपक्षपातया** = समान पक्षपात से युक्त । **गुणानुरागात् इव** = मानों गुणों के प्रति प्रेम के कारण । **सख्यम्** = मित्रता को ।

ईयिवान्=प्राप्त किया। **बाधते**=विरोध करता है। **अस्य**=इसका। **त्रिगणः**=धर्म-अर्थ-काम इन तीनों का समूह। **परस्परम्**=आपस में।

हिन्दी अर्थ—ठीक ठीक प्रकार से कार्यों को बांटकर समान पक्षपात युक्त अनुराग से निरन्तर आराधना करते हुए उस दुर्योधन के धर्म, अर्थ और काम मानों गुणों के प्रति प्रेम के कारण मित्रता को प्राप्त होकर एक-दूसरे का विरोध नहीं करते ॥११॥

भाव—दुर्योधन धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों को समान भाव से बढ़ा रहा है। उसने सभी कार्यों के लिये समय आदि का उचित प्रकार से विभाजन कर दिया है। इसलिये यद्यपि ये तीनों एक-दूसरे के विरोधी हो सकते हैं, तथापि दुर्योधन ने कुशलता से ऐसा प्रबन्ध किया है कि ये परस्पर विरोध को प्राप्त न होकर निरन्तर बढ़ रहे हैं।

वाच्यपरिवर्तन—यथायथं विभज्य समपक्षपातया भक्त्या असक्तम् आराधयतः अस्य त्रिगणेन गुणानुरागाद् इव सख्यम् ईयिवता परस्परं न बाध्यते।

टिप्पणियाँ—**असक्तम्**=√सञ्ज्+क्त=सक्त। न+सक्त=असक्त। नञ् तत्पुरुष समास। यह क्रिया विशेषण है। **आराधयतः**—आ+√राध्+शतृ=आराधयत्। षष्ठी विभक्ति का एकवचन आराधयतः। **यथायथम्**=यथास्वम् इस अर्थ में 'यथास्वे यथायथम्' इस नियम से यथा को निपातन से द्वित्व होकर नपुंसकभाव होता है। तदनन्तरम् 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' सूत्र से ह्रस्व होकर 'यथायथम्' रूप बनता है। **विभज्य**—वि+√भज्+क्त्वा (ल्यप्)। **भक्त्या**—√भज्+क्तिन्=भक्ति। तृतीया विभक्ति का बहुवचन=भक्त्या। **समपक्षपातया**—समः पक्षे पातः यस्याः तया। बहुव्रीहि समास। √पत्+नञ्=पात। **गुणानुरागात्**—गुणेषु अनुरागात्। सप्तमी तत्पुरुष समास। अनु+√रञ्ज्+घञ्=अनुराग के गुणवाची होने और हेतु होने से 'विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्' सूत्र से पञ्चमी विभक्ति हुई। **सख्यम्**—'सख्युर्भावः' अर्थ में 'सख्युर्यः' सूत्र से य प्रत्यय होकर सखि+य=सख्य। **ईयिवान्**—√इण् धातु से लिट् लकार में क्वसु प्रत्यय होकर निपातन से ईयिवान् रूप बना। **त्रिगणः**—त्रयाणां गणः। धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों को त्रिगण कहा जाता है। सांसारिक सफलता को पाने के लिये इन तीनों को प्राप्त करना आवश्यक

समझा जाता है। **परस्परम्**—परम् परम् इस स्थिति में पहले परम् के म् का स् होता है। स् को रु और विसर्ग होकर परस्परम् रूप बनता है। अब 'कस्कादिषु च' सूत्र से विसर्गों को स् होकर परस्परम् रूप बनता है।

अलङ्कार—उत्प्रेक्षा और काव्यलिङ्ग।

धर्म, अर्थ और काम के परस्पर बाधित होने के लिये गुणों के प्रति अनुराग होने से इस हेतु की सम्भावना किये जाने से उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

'समपक्षपातया भक्त्या यथायथं विभज्य' इन पदों के अर्थों को धर्म, अर्थ और काम इन तीनों की वृद्धि के हेतु रूप में कथन किये जाने से काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

विशेष कथन—धर्म, अर्थ और काम ये तीनों पुरुषार्थ कल्याण करने वाले हैं। इन तीनों का यथायोग्य रूप से सेवन करने से ही कल्याण हो सकता है। जो केवल एक का सेवन करता है, वह तीन होता है और सांसारिक उन्नति को प्राप्त नहीं कर सकता। तीनों पुरुषार्थों के बीच सन्तुलन को बनाये रखने से ही मनुष्य उन्नति कर सकता है।

घण्टापथ टीका—असक्तमिति। यथायथं यथास्वं विभज्य, असङ्कीर्णरूपं विविच्येत्यर्थः। यथास्वे यथायथम्' इति निपातनात् द्विर्भावो नपुंसकत्वं च। 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' इति ह्रस्वत्वम्। पक्षे पातः पक्षपातः आसक्तिविशेषः समस्तुल्यो यस्यां तया समपक्षपातया। भक्त्याऽनुरागविशेषेण। पूज्येष्वनुरागो भक्तिरित्युपदेशः। पूज्यश्चायं त्रिवर्ग इति। असक्तमनासक्तम्। अव्यसनितयेति यावत्। आराधयतः सेवमानस्यास्य दुर्योधनस्य त्रयाणां धर्मार्थकामानां गणस्त्रिगणः त्रिवर्गः। त्रिवर्गो धर्मकामार्थैश्चतुर्वर्गः 'समोक्षकैः' इत्यमरः। गुणानुरागात्तदीयगुणेष्वनुरागात्। गुणवदाश्रयलोभादित्यर्थः। सख्यं मैत्रीं 'सख्युर्यः'। इति य प्रत्ययः। ईयिवानुपगतवानिवेत्युत्प्रेक्षा। 'उपेयिवाननाश्चाननूचानश्च'। इति क्वसुप्रत्ययान्तो निपातः। 'नात्रोपसर्गस्तन्त्रम् इति काशिकाकार आह सम—परस्परं न बाधते। समवर्तित्वादस्य धर्मार्थकामाः परस्परानुपमर्देन वर्धन्त इत्यर्थः। उक्तं च—'धर्मार्थकामाः सममेव सेव्या यो ह्येकसक्तः स जनो जघन्यः' इति ॥११॥

प्रकरण—दुर्योधन की राजनीति का उल्लेख करते हुए किरात ने बताया कि किस प्रकार उसने सेवक आदियों को अपना अनुरक्त बना दिया है और वह धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों को बढ़ा रहा है। अब वह बताता है कि दुर्योधन साम, दान, दण्ड, भेद इन चारों उपायों का कुशलता से प्रयोग कर रहा है। सबसे पहले वह साम और दान का वर्णन करता है—

निरत्ययं साम न दानवर्जितं
न भूरि दानं विरहय्य सत्क्रियाम्।
प्रवर्तते तस्य विशेषशालिनी
गुणानुरोधेन विना न सत्क्रिया ॥१२॥

अन्वयः—तस्य निरत्ययम् साम् दानवर्जितम् न। भूरिदानम् सत्क्रियाम् विरहय्य न। विशेषशालिनी सत्क्रिया गुणानुरोधेन विना न प्रवर्तते ॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या—तस्य दुर्योधनस्य निरत्ययं निर्बाधं कपटरहितम् इत्यर्थः। 'साम' सान्त्वं सामनाम्नः उपायस्य प्रयोगः 'दानवर्जितं' दानेन वर्जितं, रहितं न वर्तते। सामप्रयोगेण सह दुर्योधनः दानेन अपि जनान् वशीकरोति। तस्य भूरि-दानं भूरि प्रचुरं दानं उपायनानां प्रदानं सत्क्रियां' समादरं 'विरहय्य' परित्यज्य न वर्तते। यस्मै स दानं ददाति तस्मै अनादरपूर्वकं न ददाति अपितु सत्कृत्य ददाति। अनादरपूर्वकं दत्तं दानं विफलं भवति। तस्य 'विशेषशालिनी' विशेषेण अतिशयेन शालते शोभते इति तथाभूता 'सत्क्रियां' समादरः गुणानुरोधेन गुणानां शौर्यादीनां अनुरोधेन विना न प्रवर्तते। गुणवद्भ्य एव स दानं ददाति इति भावः ॥१२॥

शब्दार्थ—**निरत्ययम्**=कपट से रहित। **साम**=साम नामक उपाय। **दानवर्जितम्**=दान से रहित। **भूरि**=प्रचुर। **दानम्**=दान नामक उपाय। **विरहय्य**=छोड़कर। **सत्क्रियाम्**=सत्कार को। **प्रवर्तते**=प्रवर्तित होता है। **तस्य**=उसका। **बिशेषशालिनी**=विशेष रूप से शोभित होने वाली। **गुणानु-रोधेन**=गुणों के अनुरोध से। **सत्क्रिया**=सत्कार।

हिन्दी अर्थ—उस दुर्योधन का कपट से रहित साम का प्रयोग दान से रहित नहीं होता है। उसका प्रचुर दान सत्कार के बिना नहीं होता। विशेष रूप से शोभित होने वाला उसका सत्कार गुणों के बिना प्रवर्तित नहीं होता ॥१२॥

भाव—दुर्योधन जिस किसी से सान्त्वना वचनों को, मधुरवाणी से कहता है वह निष्कपट रूप से कहता है और साथ में उपहार भी देता है। वह उपहारों को प्रचुर मात्रा में देता है और जिसको उपहार देना है, उसका सत्कार करके देता है। वह उन्हीं व्यक्तियों का सत्कार करता है, जो विशेष गुणों से युक्त होते हैं।

वाच्यपरिवर्तन—तस्य निरत्ययेन साम्ना दानवर्जितेन न (भूयते)। भूरिदानेन सत्क्रियां विरहय्य न (भूयते)। विशेषशालिन्या सत्क्रियया गुणानुरोधिना न प्रवर्त्यते।

टिप्पणियाँ—**निरत्ययम्**—अत्ययस्य अभावः। अव्ययीभाव समास। अति + √इ + अच् = अत्यय। **दानवर्जितम्**—दानेन वर्जितम्। तृतीया तत्पुरुष समास। √दा + ल्युट् (अन) दान। √वृज् + क्त = वर्जित। **विरहय्य**—वि + √रह + णिच् + क्त्वा (ल्यप्)। **सत्क्रिया**—सत् + √कृ + श + रिङ् + इयङ् + टाप् = सत्क्रिया। **विशेषशालिनी**—विशेषेण शालितुं शीलं यस्य सा अर्थ में विशेष + √शाल् + णिनि + ङीप = विशेषशालिनी। **गुणानुरोधेन**= गुणानाम् अनुरोधेन। षष्ठी तत्पुरुष समास। अनु + √रुध् + घञ् = अनुरोध। तृतीया विभक्ति का एकवचन—अनुरोधेन। अनुरोधेन विना, यहाँ 'पृथग्विनानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्' सूत्र से विना के योग में तृतीया विभक्ति हुई।

अलङ्कार—**एकावली और विनोक्ति।**

उत्तर-उत्तर वस्तु पूर्व-पूर्व वस्तु के विशेषण के रूप में कहने से यहाँ एकावली अलङ्कार है। दानवर्जित का साम के सत्क्रिया को दान के, और गुणानुरोध को सत्क्रिया के विशेषण के रूप में कहा गया है।

विनोक्ति अलङ्कार का लक्षण—

विनोक्ति सा विनाऽन्येन यत्रान्यः सन्न नेतरः।

जहाँ एक के बिना दूसरा शोभित नहीं होता वहाँ विनोक्ति अलङ्कार होता है। यहाँ दान के बिना साम की, सत्क्रिया के बिना दान की अनेक गुणों के बिना सत्कार की शोभा नहीं होती, इसको व्यक्त किये जाने के कारण विनोक्ति अलङ्कार है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—इस पद्य के द्वारा व्यक्त किया गया है कि यदि किसी से मधुर बातें की जावें तो उसको प्रचुर मात्रा में उपहार भी देने चाहियें, उपहारों को आदर के साथ देना चाहिये। आदर उसी का करना चाहिये जो विशिष्ट गुणों से युक्त हो।

घण्टापथ टीका—निरत्ययमिति तस्य दुर्योधनस्य निरत्ययं निर्बाधम्। असामयिकमित्यर्थः। अन्यथा जनानां दुर्ग्रहत्वादिति भावः। साम सान्त्वम् 'सोम सान्त्वमुभे समे' इत्यमरः। दानवर्जितं न प्रवर्त्तते। अन्यथा लुब्धाद्यावर्जनस्य शुष्कप्रियैर्वाक्यैर्दुष्करत्वादिति भावः। उक्तं च—'लुब्धमर्थेन गृह्णीयात्साधुमञ्जलिकर्मणा। मूर्खं छन्दानुरोधेन तत्वार्थेन च पण्डितम्' इति। तथा भूरि प्रभूतं न तु कदाचित्स्वल्पमित्यर्थः। दानं धनत्यागः। सादित्यादरार्थेऽव्ययम्। 'आदरानादरयोः सदसती' इति निपातसंज्ञास्मरणात्। तस्य क्रियां सत्क्रियां विरहय्य विहाय। 'ल्यपि लघुपूर्वात्' इत्ययादेशः। न प्रवर्त्तते। अनादरे दानवैफल्यादिति भावः। न चैवं सर्वत्र, येनाविवेकित्वं कोशहानिश्च-स्यादित्याह—प्रेति। विशेषशालिन्यतिशययोगिनी सत्क्रियाऽऽदरक्रिया गुणानुराधेन गुणानुरागेण विना न प्रवर्त्तते। पृथग्विना'—इत्यादिना तृतीया। गुणेष्वेवादरो भूरि दानं चेति नोक्तदोषावकाश इत्यर्थः। अत्रोत्तरोत्तरस्य पूर्व-पूर्वविशेषणतया स्थापनादेकावल्यलङ्कारः। तदुक्तं काव्यप्रकाशे—'स्थाप्यतेऽपोह्यते वाऽपि यथापूर्वं परं परम्। विशेषणतया वस्तु यत्र सैकावली द्विधा' इति ॥१२॥

प्रकरण—दुर्योधन द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाली नीति के प्रयोगों का वर्णन कहते हुए वनेचर साम और दान का प्रयोग बताकर अब दण्ड के प्रयोग बताता है—

वसूनि वाञ्छन् न वशी न मन्युना
स्वधर्म इत्येव निवृत्तकारणः।
गुरूपदिष्टेन रिपौ सुतेऽपि वा
निहन्ति दण्डेन स धर्मविप्लवम् ॥१३॥

अन्वयः—वशी स न वसूनि वाञ्छन् न मन्युना स्वधर्मः इति एव निवृत्तकारणः रिपौ सुते अपि वा गुरूपदिष्टेन दण्डेन धर्मविप्लवम् निहन्ति ॥१३॥

संस्कृत-व्याख्या—'वशी' जितेन्द्रियः कामक्रोधादिरहितः इति भावः स दुर्योधनः न 'वसूनि' धनानि 'वाञ्छन्' अभिलषन् न 'मन्युना' क्रोधेन अपितु 'स्वधर्मः स्वकीयं राजकीयं कर्तव्यम् 'इति एव' अस्माद् एव' हेतोः 'निवृत्तकारणः' निवृत्तानि अपगतानि कारणानि क्रोधादीनि दण्डनिमित्तानि यस्य तथाभूतः 'रिपौ' शत्रौ वा अथवा 'सुते' पुत्रे अपि 'गुरूपदिष्टेन' गुरुभि, द्रोणादिभिः आचार्यैः मन्वादिभिः शास्त्रकारैः वा मन्दादीनां शास्त्रकाराणां पद्धत्या परिचितैः न्यायाधीशैः वा उपदिष्टेन कथितेन 'दण्डेन' न्यायदण्डेन धर्मविप्लवं' धर्मस्य सदाचारस्य विप्लवं व्यतिक्रमं 'निहन्ति' निवारयति ॥१३॥

शब्दार्थ—**वसूनि**=धनों को। **वाञ्छन्**=अभिलाषा करने वाला। **वशी** =इन्द्रियों को वश में करने वाला। **मन्युना**=क्रोध से। **स्वधर्मः**=अपना धर्म। इत्येव। **इति एव**=इससे ही। **निवृत्तकारणः**=क्रोध आदि कारणों को छोड़कर। **गुरूपदिष्टेन**=गुरुओं द्वारा बताये गये। **रिपौ**=शत्रु के प्रति। **सुते अपि**=पुत्र के प्रति भी। **निहन्ति**=रोकता है। **दण्डेन**=दण्ड के विधान से। **धर्मविप्लवम्**=धर्म के उल्लंघन को।

हिन्दी अर्थ—**इन्द्रियों को वश में करने वाला वह दुर्योधन न तो धनों की अभिलाषा से और, न क्रोध के कारण अपितु मेरा यह राजकीय कर्त्तव्य है इस कारण क्रोध आदि के निमित्तों को छोड़कर, चाहे शत्रु हो या पुत्र हो, सबको आचार्यों या मंनु आदि शास्त्रों को जानने वाले न्यायाधीशों द्वारा बताये गये दण्ड के विधान से धर्म के उल्लंघन को रोकता है ॥१३॥**

भाव—उस दुर्योधन ने अपनी इन्द्रियों को वश में कर रखा है। वह धर्म में बताये गये दण्ड के विधान से धर्म का पालन करता है। धर्म के मार्ग का उल्लंघन नहीं होने देता है। दण्डविधान में वह न तो धन की इच्छा से और न क्रोध से किसी को दण्ड देता है। दण्ड देते हुए वह, यह मेरा शत्रु है, वह मेरा पुत्र है, इसका भी विचार नहीं करता।

वाच्यपरिवर्तन—वशिना तेन न वसूनि वाञ्छता न मन्युना स्वधर्म इति एव निवृत्तकारणेन रिपौ सुते अपि वा गुरूपदिष्टेन दण्डेन धर्मविप्लवः निहन्यते।

टिप्पणियाँ—**वसूनि**—वस् + उ = वसु। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन = वसूनि। **वाञ्छन्**—√वाञ्छ् + शतृ = वाञ्छत्। प्रथमा विभक्ति का एकवचन

=वाञ्छन् । वशी—वशे यस्य सन्ति अर्थ में √वश् + इनि = वशिन् । प्रथमा विभक्ति का एकवचन = वशी । मन्युना—√मन् + युच् = मन्यु । तृतीया विभक्ति का एकवचन मन्युना । गुरूपदिष्टेन—गुरुभिः उपदिष्टेन । तृतीया तत्पुरुष √गृ + कु = गुरु । उप + √दिश् + क्त = उपदिष्ट । **निवृत्तकारणः—** निवृत्तानि कारणानि यस्य सः । बहुव्रीहि समास । नि + √वृत् + क्त—निवृत्त । √कृ + णिच् + ल्युट् (अन) = कारण । **निहन्ति**—नि + √हन् धातु का लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन । **दण्डेन**—दण्डयति अर्थ में √दण्ड् + अच् = दण्ड । तृतीया विभक्ति का एकवचन = दण्डेन । **धर्मविप्लवम्**—धर्मस्य विप्लवम् । षष्ठी तत्पुरुष समास । धार्यते अनेन अर्थ में √धृ + म = धर्म । वि + √प्लु + अप् + विप्लव ।

अलङ्कार—परिसंख्या । परिसंख्या अलङ्कार का लक्षण—

परिसंख्या निषिध्यैकमेकस्मिन् वस्तुयन्त्रणम् ।

एक वस्तु का नियन्त्रण करके उसे अन्य में स्थापित करने में परिसंख्या अलङ्कार होता है । इस पद्य में दण्ड देने के हेतु को धन का चाहना और मन्यु में निषेध करके धर्म में स्थापित करने में परिसंख्या अलङ्कार है ।

छन्द—वंशस्थ ।

विशेष कथन—राज्य का शासन करने के लिये और राजा के धर्म का पालन कराने के लिये राजा को दण्ड का आश्रय लेना ही होता है । परन्तु दण्ड देते समय राजा को लोभ, क्रोध आदि विचारों से रहित होना चाहिये । चाहे स्नेही जन हों, चाहे शत्रुता रखने वाले, दण्ड के विधान में पक्षपात से रहित होना चाहिये । दण्ड ही प्रजा का पालन करने वाला और धर्म का पालन करने वाला होता है । मनु का कथन है—

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः दण्ड एवाभिरक्षति ।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥

घण्टापथ टीका—वसूनीति । वशी स दुर्योधनो वसूनि धनानि वाञ्छन् । निहन्तीति शेषः । तथा लोभान्नेत्यर्थः । 'वसु तोये धने मणौ' इति वैजयन्ती । मन्युना कोपेन न च । 'मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' इत्यमरः धर्मशास्त्रानुसारेण क्रोध-लोभविवर्जितः इति स्मरणादित्यर्थः । किन्तु निवृत्तकारणो निवृत्तलोभादिनिमित्तः

सन्स्वधर्म इत्येव। स्वस्य राज्ञः सतो ममायं धर्मो ममेदं कर्त्तव्यमित्यस्मादेव हेतोरित्यर्थः। 'अदण्ड्यान्दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्। अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति'। इति स्मरणादिति भावः। गुरूपदिष्टेन प्राड्विवाकोपदिष्टेन। धर्मशास्त्रं पुरस्कृत्य प्राड्विवाकमते स्थितः। समाहितमतिः पश्येद् व्यवहारानुक्रमात्'। इति नारदस्मरणात् दण्डेन दमेन। शिक्षयेत्यर्थः। रिपौ सुतेऽपि वा। स्थितिमिति शेषः। एतेनास्य समदर्शित्वमुक्तम् धर्मविप्लवम् धर्मव्यतिक्रमम्। अधर्ममिति यावत्। निहन्ति निवारयति। दुष्ट एवास्य शत्रुः शिष्ट एव बन्धुर्न तु सम्बन्धनिबन्धनः पक्षपातोऽस्तीत्यर्थः ॥१३॥

प्रकरण—दुर्योधन की नीतियों का वर्णन करते हुये किरात उसके द्वारा आयोजित साम, दान और दण्ड को बताकर भेद के प्रयोग के विषय में बताता है—

विधाय रक्षान्परितः परेतरान्
अशङ्किताकारमुपैति शङ्कितः।
क्रियापवर्गेष्वनुजीविसात्कृताः
कृतज्ञतामस्य वदन्ति सम्पदः ॥१४॥

अन्वयः—शङ्कितः परितः परेतरान् रक्षान् विधाय अशङ्किताकारम् उपैति। क्रियापवर्गेषु अनुजीविसात्कृताः सम्पदः अस्य कृतज्ञताम् वदन्ति ॥१४॥

संस्कृत-व्याख्या—'शङ्कितः' शंका संदेहः स जातो यस्य स शङ्कितः स्वीयाः परे वा मम अनिष्टं न कुर्युः इति सन्देहं कुर्वन् स दुर्योधनः 'परितः' सर्वतः स्वराष्ट्रेषु परराष्ट्रेषु च 'परेतरान् परेभ्यः शत्रुभ्यः इतरान् अन्यान् आत्मीयान् इत्यर्थः अथवा परान् शत्रून् इतरयन्ति भित्वा आत्मनः पक्षे कुर्वन्ति इति तथाभूतान् 'रक्षान्' रक्षकान् गुप्तचरान् इति भावः 'विधाय' नियुज्य 'अशङ्किताकारम्' अशङ्कितः सन्देहरहितः आकारः यस्य तथाभावम् उपैति प्राप्नोति। अविश्वासं कुर्वन्नपि स चारान् विश्वस्तमिव दर्शयते स्वपरराष्ट्राणां च भेदं गृह्णाति। 'क्रियापवर्गेषु' क्रियाणां अपवर्गेषु सफलसमाप्तिषु 'अनुजीविसात्कृताः' सेवकेभ्यः उपहारीकृताः 'सम्पदः' समृद्धयः अस्य दुर्योधनस्य कृतज्ञतां कृतज्ञत्वम्

गुणग्राहित्वम् वा 'वदन्ति' सूचयन्ति । सफलकार्येषु सेवकेषु स प्रभूतं धनं वितीर्य कृतज्ञतां ज्ञापयति इति भावः ।

शब्दार्थ—विधाय = नियुक्त करके । **रक्षान्** = रक्षक गुप्तचरों को । **परितः** = चारों ओर । **परेतरान्** = आत्मीय । **अशङ्कितकारम् उपैति** = शङ्का से रहित आकार वाला दिखलाता है । **शङ्कितः** = सशङ्क रहते हुए । **क्रियापवर्गेषु** = कार्यों को पूरा कर लेने पर । **अनुजीविसात्कृताः** = सेवकों को दी गई । **कृतज्ञताम्** = कृतज्ञता को । **अस्य** = इसकी । **वदन्ति** = व्यक्त करती है । **सम्पदः** = सम्पत्तियाँ ।

हिन्दी अर्थ—**सशङ्क रहते हुये उस दुर्योधन ने चारों ओर आत्मीय तथा शत्रुओं को फोड़ने में दक्ष गुप्तचरों को नियुक्त कर रखा है । इस प्रकार वह अपने आपको शङ्का से रहित आकार वाला दिखाता है । दिये हुये कार्यों को पूरा कर लेने पर सेवकों को उपहार के रूप में दी गई सम्पत्तियाँ उसकी कृतज्ञता के गुण को व्यक्त करती हैं ॥१४॥**

भाव—दुर्योधन को सदा यह शंका बनी रहती है कि उसके अपने राज्य में या दूसरे राज्यो में उसके विरुद्ध षड्यन्त्र न हो रहे हों । इसलिये उसने अपने विश्वास के एवं दूसरों को फोड़ने में कुशल गुप्तचरों को स्थान-स्थान पर नियुक्त कर रखा है । यद्यपि वह किसी पर विश्वास नहीं करता, तथापि वह उन सेवकों को यही दिखाता है कि वह उन पर विश्वास कर रहा है । कार्यों के सफलता से पूरा हो जाने पर वह सेवकों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है और उनको प्रभूत धन उपहार के रूप में देता है ।

वाच्यपरिवर्तन—शङ्कितेन परितः परेतरान् रक्षान् विधाय अशङ्किताकारः उपेयते । क्रियापवर्गेषु अनुजीविसात्कृतैः सम्पद्भिः यस्य कृतज्ञता व्यज्यते ।

टिप्पणियाँ—**विधाय**—वि + √धा + क्त्वा (ल्यप्) । **रक्षान्**—√रक्ष + अच् = रक्ष । द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में = रक्षान् । **परितः** = परि + तस् । चारों ओर । परेतरान्—परेभ्यः इतरान् । पञ्चमी तत्पुरुष समास । अथवा परान् ईरयन्ति इति तान् । उपपद समास । अशङ्किताकारम्—अशङ्कितः आकारः यस्य तादृशम् । बहुव्रीहि समास । शङ्का अस्य अस्ति इस अर्थ में शङ्का + इतच् = शङ्कित । न + शङ्कित = अशङ्कित । नञ् तत्पुरुष समास । **आ** +

√कृ + घञ् = आकार। उपैति—उप + √इ धातु से लट् लकार प्रथम पुरुष का एकवचन। क्रियापवर्गेषु—क्रियाणाम् अपवर्गेषु। षष्ठी तत्पुरुष समास। अप + √वृज् + घञ् = अपवर्ग। यहाँ एक क्रिया की समाप्ति दूसरी क्रिया का उपलक्षण है। इसलिये यहाँ 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' सूत्र से सप्तमी विभक्ति हुई। अनुजीविसात्कृता—अनु जीवितुं शीलं येषां ते अर्थ में णिनि प्रत्यय होकर अनु + √जीव् + णिनि = अनुजीविन्। अनुजीविन् + सात् = अनुजीविसात्। √कृ + क्त = कृत। कृतज्ञताम्—कृतं जानाति अर्थ में कृत + √ज्ञा + क = कृतज्ञ। कृतज्ञस्य भावः अर्थ में कृतज्ञ + तल् + टाप् = कृतज्ञता।

अलङ्कार—यमक। यमक अलङ्कार का लक्षण—

अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः। यमकम्।

यदि अर्थ है तो भिन्न अर्थ वाले वर्णों की उसी क्रम से आवृत्ति होने पर यमक अलङ्कार होता है। यहाँ 'अशङ्किताकारमुपैति शङ्कितः' में शङ्कित इस वर्णसमूह की उसी क्रम से आवृत्ति होने के कारण यमक अलङ्कार है। यहाँ अशङ्कित का शङ्कित अर्थरहित और दूसरा शङ्कित सार्थक है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—राजा को सदा सावधान रहना चाहिये कि कहीं शत्रु अथवा उसके अपने ही व्यक्ति उसके विरुद्ध षड्यन्त्र न कर रहे हों। उसको अपने राष्ट्र में और दूसरे राष्ट्रों में ऐसे दूत नियुक्त करने चाहियें, जो उसके अपने विश्वासपात्र हों और शत्रुओं को फोड़ लेने में कुशल हों। इसके साथ ही राजा को चाहिये कि सेवक जब कार्यों को सफलता के साथ पूरा कर लें तो उनको प्रचुर पारितोषिक दे। इससे वे सदा राजा के प्रति अनुरक्त बने रहेंगे।

घण्टापथ टीका—विधायेति। शङ्का सञ्जाताऽस्य शङ्कितोऽविश्वस्तः सन् परितः सर्वत्र स्वपरमण्डले परेतरानात्मीयान्। अवञ्चकानीति यावत्। यद्वा परानितरयन्ति भेदेनात्मसात्कुर्वन्तीति परेतरान्। तत्करोति ण्यन्तात्कर्मण्यण्प्रत्ययः। रक्षन्तीति रक्षान् रक्षकान्। मन्त्रगुप्तिसमर्थान् इत्यर्थः। 'नन्दिग्रहि'—इत्यादिना पचाद्यच्। विधाय कृत्वा। नियुज्येत्यर्थः। अशङ्किताकारमुपैति। स्वयमविश्वस्तोऽपि विश्वस्तवदेव व्यवहरन्परमुखेनैव परान् भिनत्ति इत्यर्थः। न च तान् रक्षान् सःउपेक्षते येन तेऽपि विकुर्वीरन्नित्याह—क्रियेति। क्रियाऽपवर्गेषु कर्म-

समाप्तिष्वनुजीविसात्कृता भृत्याधीनाः कृताः। अपरावर्त्तितया दत्ताः इत्यर्थः। 'देये त्रा च' इति सातिप्रत्ययः। सम्पदोऽस्य राज्ञः कृतज्ञतामुपकारित्वं वदन्ति। प्रीतिदानैरेवास्य कृतज्ञत्वं प्रकाश्यते, न तु वाङ्मात्रेणेत्यर्थः। कृतज्ञे राजन्यनुजीविनोऽनुरज्यन्तेऽनुरक्ताश्च तं रक्षन्ति इति भावः ॥१४॥

प्रकरण—कुरुदेश का वृत्तान्त बतलाते हुये वनेचर ने कहा कि दुर्योधन ने साम, दान, दण्ड और भेद इन चार उपायों का सफलता के साथ प्रयोग किया है। अब वह बताता है कि इन उपायों से उसको क्या फल प्राप्त हुआ है—

अनारतं तेन पदेषु लम्भिताः
विभज्य सम्यग्विनियोगसत्क्रियाः।
फलन्त्युपायाः परिबृंहितायती-
रुपेत्य संघर्षमिवार्थसम्पदः ॥१५॥

अन्वयः—तेन सम्यक् पदेषु विभज्य विनियोगसत्क्रियाः लम्भिताः उपायाः संघर्षम् इव उपेत्य परिबृंहितायतीः अर्थसम्पदः अनारतम् फलन्ति ॥१५॥

संस्कृत-व्याख्या—तेन दुर्योधनेन 'सम्यक्' यथोचितरूपेण 'पदेषु' विभिन्नकार्येषु विभज्य' विभागं कृत्वा, यस्मिन् कर्मणि यस्मिन् काले च यः उपायः उचितः तस्य तत्र प्रयोगं कृत्वा, 'विनियोगसत्क्रिया विनियोगः उपायानां यथोचितः प्रयोगः एव सत्क्रिया सत्कारः इति तथाभूता एवं लम्भिताः प्रापिताः 'उपायाः, समादानदण्डभेदाश्चत्वारः उपायाः 'संघर्षम् इव परस्परस्पर्धाम् इव 'उपेत्य, प्राप्य 'परिबृंहिता निरन्तरं वर्धयन्ती आयतिः उत्तरकालः यासां ताः निरन्तरं वर्धमाना; इति भावः 'अर्थसम्पदः' अर्थानां धनानां सम्पदः समृद्धयः 'अनारतं' निरन्तरं 'फलन्ति' फलानि प्रसुवन्ति प्रापयन्ति इत्यर्थः ॥१५॥

शब्दार्थ—अनारतम्=निरन्तर। **तेन**=उसके द्वारा। **पदेषु**=विभिन्न कार्यों में। **लम्भिताः**=प्राप्त कराये गये। **विभज्य**=विभाग करके। **विनियोगसत्क्रियाः**=प्रयोग के द्वारा सत्कार किये गये। फलन्त्युपायाः। **फलन्ति**=फलित करते हैं। **उपायाः**=साम-दान-दण्ड-भेद चार उपाय। **परिबृंहितायतीः**=निरन्तर बढ़ती हुई। **उपेत्य**=प्राप्त करके। संघर्षमिवार्थसम्पदः। **संघर्षम् इव**=मानों होड़ करती हुई। **अर्थसम्पद**=धन-सम्पत्तियाँ।

हिन्दी अर्थ—उस दुर्योधन द्वारा यथोचित रूप से विभाग करके प्रयोग के द्वारा ही सत्कृत किये गये, इस प्रकार प्राप्त कराये गये चारों उपाय साम, दान, दण्ड और भेद मानों परस्पर संघर्ष को प्राप्त करके अर्थात् एक-दूसरे से होड़ करते हुये निरन्तर बढ़ती हुई धन-सम्पत्तियों को फलित करते हैं ॥१५॥

भाव—दुर्योधन ने चारों उपायों का ठीक-ठीक प्रयोग किया है। इसलिये वे चारों उपाय उसकी धन-सम्पत्तियों को निरन्तर बढ़ा रहे हैं।

वाच्यपरिवर्तन—तेन सम्यक् पदेषु विभज्य विनियोगसत्क्रियैः लम्भितैः उपायैः। संघर्षम् इव उपेत्य परिवृंहितायत्यः अर्थसम्पदः अनारतं फलन्ते।

टिप्पणियाँ—**अनारतम्**—न + आ + √रम् + क्त। सतत रूप से। **लम्भिताः**—√लभ् + णिच् + क्त = लम्भित। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन = लम्भिताः। **विभज्य**—वि + √भज् + क्त्वा (ल्यप्)। **सम्यकः**—सम् + √अञ्च् + क्विप्। **विनियोगसत्क्रियाः**—विनियोग एव सत्क्रिया येषां ते। बहुव्रीहि समास। वि + नि + √युज् + घञ्—विनियोग। **उपायाः**—उप + √अय् + घञ् = उपाय। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन = उपायाः। **परिबृंहितायतीः** = परिवृंहिता आयतिः यासां ता। बहुव्रीहि समास। परि + √बृंह + णिच् + क्त = परिबृंहित। आ + √यम् + क्तिन् = आयति। **उपेत्य**—उप + √इण् + क्त्वा (ल्यप्)। **संघर्षम्**—सम + √घृष् + घञ् = संघर्ष। अर्थसम्पदः—अर्थानां सम्पदः। षष्ठी तत्पुरुष समास। सम् + √पद + क्विप् = सम्पद्।

अलङ्कार—अन्योन्य और उत्प्रेक्षा। अन्योन्य अलङ्कार का लक्षण—

अन्योन्यं नाम यत्र स्यादुपकारः परस्परम्।

जहाँ परस्पर एक-दूसरे का उपकार किया जावे, वहाँ अन्योन्य अलङ्कार होता है। प्रस्तुत श्लोक में दुर्योधन उपायों का सत्कार करता है और उपाय इसको प्रभूत सम्पत्ति प्रदान करते हैं, इस प्रकार एक-दूसरे का उपकार होने से यहाँ अन्योन्य अलङ्कार है।

उपायों में परस्पर संघर्ष की सम्भावना करने से उत्प्रेक्षा अलङ्कार भी है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—साम, दान, दण्ड और भेद इन चारों उपायों का यथायोग प्रयोग करने से राज्य में समृद्धि होती है।

घण्टापथ टीका—अनारतमिति । तेन राज्ञा पदेषूपादेयवस्तुषु । 'पद व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु इत्यमरः । सम्यगसंकीर्णमव्यस्तं च विभज्य विविच्य । विनियोग एव सत्क्रियाऽनुग्रहः सत्कार इति यावत् । येषां ते लम्भिताः । स्थानेषु सम्यक्प्रयुक्ताः इत्यर्थः । उपायाः समायदः । संघर्षे, परस्परस्पर्धामुपेत्ये- वेत्युत्प्रेक्षा । परिबृंहितायतीः प्रचितोत्तरकालाः । स्थिरा इत्यर्थः । अर्थसम्पदो- ऽनारतमजस्रं फलन्ति प्रसुवत इत्यर्थः ॥१५॥

प्रकरण—किरात ने युधिष्ठिर को बताया कि दुर्योधन ने साम आदि चारों उपायों का प्रयोग करके अपनी धन-सम्पत्ति को खूब बढ़ा लिया है। उसकी सम्पत्ति इस प्रकार है—

अनेकराजन्यरथाश्वसंकुलं तदीयमास्थाननिकेतनाजिरम् ।
नयत्युग्मच्छदगन्धिरार्द्रतां भृशं नृपोपायनदन्तिनां मदः ॥१६॥

अन्वयः—अयुग्मच्छदगन्धि नृपोपायनदन्तिनां मदः अनेकराजन्यरथाश्वसंकु- लम् तदीयम् आस्थाननिकेतनाजिरम् भृशम् आर्द्रताम् नयति ॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या—'अयुग्मच्छगन्धिः' अयुग्मच्छदानां सप्तपर्णपुष्पाणां गन्धः इव गन्धः यस्य तादृशः 'नृपोपायनदन्तिनां' नृपाणां करदभूतानां भूपतीनाम् उपायनानाम् उपाहारेण प्रदत्तानां दन्तिनां गजानां 'मदः' दानजलम् 'अनेकरा- जन्यरथाश्वसंकुलम्' अनेकेषां बहूनां राजन्यानां क्षत्रियाणां रथैः स्यन्दनैः अश्वैः हयैः च संकुलम् सकीर्णं 'तदीयं' तस्य दुर्योधनस्य 'आस्थाननिकेतनाजिरम्' आस्थाननिकेतनस्य सभामण्डपस्य अजिरं प्रांगणं 'भृशम्' अत्यधिकम् 'आर्द्रतां' पंकिलतां नयति 'प्रापयति' । अनेके राजानः दुर्योधनाय मदगन्धिनः हस्त्यादीन् बहुमूल्यान् उपहारान् प्रस्तुवन्ति इति भावः ॥१६॥

शब्दार्थ—**अनेकराजन्यरथाश्वसङ्कुलम्**=अनेक क्षत्रियों के रथों और घोड़ों से भरा हुआ । **तदीयम्**=उसका । **आस्थाननिकेतनाजिरम्**=राजसभा का आंगन । नयत्ययुग्मच्छदगन्धिरार्द्रताम् । **नयति**=कर रहा है । **अयुग्मच्छदगन्धिः**= सप्तपर्ण के से फूलों की गन्ध वाला । **आर्द्रताम्**=गीला । **भृशम्**=बहुत अधिक । **नृपोपायनदन्तिनाम्**=राजाओं द्वारा उपहार में दिये गये हाथियों का । **मदः**=मदजल ।

हिन्दी अर्थ—सप्तपर्ण के फूलों की सी गन्ध वाला राजाओं द्वारा उपहार में दिये गये हाथियों का मदजल अनेक क्षत्रियों के रथों और घोड़ों से भरे हुये उस राजा दुर्योधन की राजसभा के प्रांगण को गीला कर रहा है ॥१६॥

भाव—दुर्योधन के साम आदि उपायों से वशीभूत होकर अनेक राजा उनके लिये हाथी आदि बहुमूल्य उपहारों को देकर उसकी राजसभा में उपस्थित रहते हैं।

वाच्यपरिवर्तन—अयुग्मच्छदगन्धिना नृपोपायनदन्तिना मदेन अनेक राजन्यरथाश्वसंकुलं तदीयम् आस्थाननिकेतनाजिरं भृशम् आर्द्रतां नीयते।

टिप्पणियाँ—अनेकराजन्यरथाश्वसंकुलम्=अनेकेषां राजन्यानां रथाश्वेन संकुलम्। षष्ठी और तृतीया तत्पुरुष समास। रथाश्च अश्वाश्च रथाश्वम्। द्वन्द्व समास। द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनांगानाम्' सूत्र से यहाँ एकवचन होता। राज्ञः अपत्यम् अर्थ में राजन् शब्द से 'राजश्वसुराद्यत्' सूत्र से यत् प्रत्यय होकर राजन् + यत् = राजन्य। √अश् + क्वन् = अश्व। √रम् + क्यन् = रथ। सम् + √कुल + क = संकुल। **तदीयम्**—तस्य अर्थ में तद् + छ (ईय)—तदीय। **आस्थाननिकेतनाजिरम्**—आस्थानस्य निकेतनस्य अजिरम्। षष्ठी तत्पुरुष समास। आ + √स्था + ल्युट (अन) = आस्थान। नि + √कित् + ल्युट् (अन्) = निकेतन। √अज + किरन् = अजिर। **अयुग्मच्छदगन्धि**—अयुग्मच्छदस्य गन्ध इव गन्धः यस्य स। उत्तरपदलोपी बहुव्रीहि समास। 'उपमानाच्च' सूत्र से अन्त में गन्ध के अ को इ हुआ। **आर्द्रताम्**—आर्द्रस्य भावः अर्थ में आर्द्र + तल + टाप् = आर्द्रता। **भृशम्**—√भृश् + क। **नृपोपायनदन्तिनाम्**—नृपाणाम उपायनानां दन्तिनाम् षष्ठी तत्पुरुष समास। उप + √अय् + ल्युट् (अन्) = उपायन। प्रशस्तौ दन्तौ यस्य अर्थ में इनि प्रत्यय होकर दन्त + इनि = दन्तिन्। **मदः**—मदयति हर्षयति अर्थ में √मद + अप् = मद।

अलङ्कार—उदात्त और उपमा। उदात्त अलङ्कार का लक्षण—

उदात्तं वस्तुनः सम्पत्।

जहाँ किसी लोक से अतिशयित समृद्धि का वर्णन किया जाये, वहाँ उदात्त अलङ्कार होता है। यहाँ दुर्योधन की लोक से अतिशयित समृद्धि का वर्णन करने से उदात्त अलङ्कार है।

अयुग्मच्छदगन्धिः उपमा अलङ्कार है। इसमें अयुग्मच्छद उपमान, मद उपमेय, समान गन्ध का होना साधारण धर्म है। यहाँ उपमावाचक शब्द का लोप हो जाने से वाचकलुप्ता है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—महाकवि ने हाथियों को निमित्त बनाकर दुर्योधन की समृद्धि का वर्णन किया है। अनेक राजाओं ने दुर्योधन की अधीनता स्वीकार कर ली है। वे उसको अमूल्य उपहार देते रहते हैं। समय पड़ने पर वे दुर्योधन की निश्चय ही सहायता करेंगे।

घण्टापथ टीका—अनेकेति। अयुग्मच्छदस्य सप्तपर्णपुष्पस्य गन्ध इव गन्धो यस्यासावयुग्मच्छदगन्धिः। 'सप्तम्युपमान'—इत्यादिना बहुव्रीहिरुत्तरपदलोपश्च। 'उपमानाच्च', इति समासान्त इकारः। नृपाणामुपायनान्युपहारभूता ये दन्तिनस्तेषां मदः। 'उपायनमुपग्राह्यमुपहारस्तथोपदा' इत्यमरः। राज्ञामपत्यानि पुमांसो राजन्याः क्षत्रियाः। 'राजश्वसुराद्यत्' इति यत् प्रत्ययः। राज्ञोऽपत्ये जातिग्रहणात् अन्। रथाश्चाश्वाश्च रथाश्वम्। सेनाङ्गत्वादेकवद्भावः। अनेकेषां राजन्यानां रथाश्वेन संकुलं व्याप्तं तदीयमास्थाननिकेतनाजिरं सभामण्डपाङ्गणं भृशमत्यर्थमार्द्रतां पङ्किलत्वं नयति। एतेन महासमृद्धिरस्योक्ता। अत एवोदात्तालङ्कारः। तथा चालंकारसूत्रम्—'समृद्धिमद्वस्तुवर्णनमुदात्तः' इति ॥१६॥

प्रकरण—वनेचर दुर्योधन द्वारा प्रयुक्त नीति के उपायों और उनसे प्राप्त होने वाली समृद्धि का, वर्णन कर रहा है। अब वह दुर्योधन द्वारा किये जाने वाले प्रजा-रञ्जन के कार्यों का वर्णन करता है—

सुखेन लभ्या दधतः कृषीवलै-
रकृष्टपच्या इव सस्यसम्पदः।
वितन्वति क्षेममदेवमातृका-
श्चिराय तस्मिन्कुरवश्चकासति ॥१७॥

अन्वयः—तस्मिन् चिराय क्षेमम् वितन्वति अदेवमातृकाः कुरवः कृषीवलैः अकृष्टपच्याः इव सुखेन लभ्याः सस्यसम्पदः दधतः चकासति ॥१७॥

संस्कृत-व्याख्या—तस्मिन् दुर्योधने 'चिराय' दीर्घकालादारभ्य' 'क्षेमं'

कल्याणं 'वितन्वति' विस्तारयति सति, स दुर्योधनः सततं प्रजाकल्याणकारीणि कार्याणि करोति, कृषेः विकासाय कुल्याकूपादीनां क्षेत्रसेचनसाधनानां व्यवस्थां करोति इत्यर्थः, 'अदेवमातृकाः' देवः पर्जन्यः माता जननी पालयित्री येषां ते देवमातृकाः, न देवमातृकाः अदेवमातृकाः। केवलं देवे पर्जन्ये एव निर्भराः न सन्तः अपितु कुल्यादीनां व्यवस्थया नदीनामपि जलैः क्षेत्रान् सिच्यमानाः 'कुरवः' कुरुजनपदाः 'कृषीवलैः कृषकैः 'अकृष्टपच्याः' कृष्टेन कर्षणेन पच्याः 'परिणताः' न कृष्टपच्याः विना प्रयासेन परिणताः इत्यर्थः, तादृशा इव 'सुखेन' अनायासेन 'लभ्याः' प्राप्तुं शक्याः 'सस्यसम्पद' सस्यानां धान्यानां सम्पदः समृद्धयः 'दधतः' धारयन्तः 'चकासति शोभन्ते। कुरुषु सेचनसाधनानां तादृशः प्रबन्ध यत् क्षेत्राणि केवलं वृष्टयम्बुजलनिर्भराणि न अपितु कुल्यादिभिरपि सेच्यमानानि प्रभूतं सस्यम् उत्पादयन्ति इति भावः ॥१७॥

शब्दार्थ—**सुखेन**=सरलता से। **लभ्याः**=प्राप्त होने वाली। **दधतः**=धारण करता हुआ। **कृषीवलैः**=किसानों के द्वारा। **अकृष्टपच्याः**=विना अधिक परिश्रम के पकने वाली। **सस्यसम्पदः**=धान्यों की समृद्धियाँ। **वितन्वति** =प्रस्तुत करते रहने पर, क्षेममदेवमातृकाः। **क्षेमम्**=प्रजाहितकारी साधनों को। **अदेवमातृकाः**=मेघ आदि देवताओं पर निर्भर न रह कर, नहर आदि सिंचाई के साधनों से परिपोषित। **चिराय**=चिरकाल तक। कुरवश्चकासति। **कुरवः**=कुरुदेश। **चकासति**=शोभायमान हो रहा है।

हिन्दी अर्थ—उस दुर्योधन द्वारा चिरकाल से प्रजा हितकारी सिंचाई आदि साधनों के प्रस्तुत करते रहने से केवल वर्षा पर ही निर्भर न रहता हुआ कुरुदेश किसानों द्वारा बिना अधिक प्रयत्न के ही पकने वाली और सरलता से प्राप्त हो सकने वाली धान्यों की समृद्धियों को धारण करता हुआ शोभायमान हो रहा है ॥१७॥

भाव—दुर्योधन ने खेतों के सींचने के लिये सिंचाई के कृत्रिम साधनों—कुँओं, नहर, तालावों आदि का प्रबन्ध किया है, जिससे खेतों में विना अधिक परिश्रम किये प्रचुर मात्रा में अन्न उत्पन्न होते हैं। इससे उसके राज्य में अकाल पड़ने की सम्भावना नहीं रही है और प्रजा उसके प्रति अधिक अनुरक्त हो रही है।

वाच्यपरिवर्तन—तस्मिन् चिराय क्षेमं वितन्वति अदेवमातृकैः कुरुभिः कृषीवलैः अकृष्टपच्या इव सुखेन लभ्याः सस्यसम्पदः दधद्भिः चकास्यते ।

टिप्पणियाँ—**सुखेन**—सुख + अन् = सुख । तृतीया विभक्ति का एकवचन = सुखेन । **लभ्याः**—लब्धुं शक्या अर्थ में √लभ् + यत् = लभ्य । **दधतः**—√धा + शतृ = दधत् । प्रथमा विभक्ति का बहुवचन = दधतः । **कृषीवलैः**—कृषि + वलच् = कृषीवल । तृतीया विभक्ति का बहुवचन = कृषीवलैः । **अकृष्ट-पच्याः**—कृष्टेन पच्याः = कृष्टपच्याः । तृतीया तत्पुरुष समास । न कृष्टापच्याः = अकृष्ट-पच्याः । नञ् तत्पुरुष समास । √कृष् + क्त = कृष्ट । √पच् + क्यप् = पच्य । **सस्यसम्पदः**—सस्यानां सम्पदः । षष्ठी तत्पुरुष समास । सम् + यत् = सस्य । सम् + √पद + क्विप् = सम्पदः । **वितन्वति**—वि + √तन् + शतृ = वितन्वत् । सप्तमी विभक्ति का एकवचन = वितन्वति । **क्षेमम्**—√क्षि + मन् = क्षेम । **अदेवमातृकाः**—देवः माता येषां ते देवमातृकाः । बहुव्रीहि समास । न देवमातृकाः = अदेवमातृकाः । नञ् तत्पुरुष समास । **चिराय**—चिर् + √अय् + अण् । **चकासति**—√कास् धातु लट् लकार प्रथम पुरुष का बहुवचन ।

अलङ्कार—उदात्त ।

कुरुदेश की अतिशय कृषि सम्बन्धी समृद्धि का वर्णन करने से उदात्त अलङ्कार है ।

छन्द—वंशस्थ ।

विशेष कथन—कृषि भूमि दो प्रकार की होती है । देवमातृक और अदेव-मातृक । जहाँ सिंचाई के मनुष्यकृत साधनों—नहर, कुँओं, तालावों आदि का प्रबन्ध नहीं होता और कृषि केवल वर्षा के जल पर ही निर्भर रहती है, वह देवमातृक है । जहाँ केवल वर्षा के जल पर ही निर्भर न रहकर नहरों, कुंओं, तालावों आदि को बनवाकर सिंचाई के साधन प्रस्तुत किये जाते हैं, उस भूमि को अदेवमातृक कहते हैं । राजा को चाहिये कि वह सिंचाई के साधनों को सदा प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत करवाता रहे । इससे वर्षा न होने पर भी अकाल पड़ने की सम्भावना नहीं रहती । प्रभूत अन्न उत्पन्न होने से प्रजा की समृद्धि बढ़ती है ।

घण्टापथ टीका—**सुखेनेति** । चिराय तस्मिन् दुर्योधने क्षेमं वितन्वति क्षेमङ्करे

सति । देवः पर्जन्य एव माता येषां ते देवमातृकाः वृष्टयम्बुजीविनो देशाः । ते न भवन्तीत्यदेवमातृकाः नदीमातृकाः इत्यर्थः । देशो नद्यम्बुवृष्टयम्बुसम्पन्नव्रीहिपालितः । स्यान्नदीमातृको देवमातृकश्च 'यथाक्रमम्' इत्यमरः । एतेनास्य कुल्याऽऽदिपूर्त्तप्रवर्तकत्वमुक्तम् । कुरूणां निवासाः कुरवो जनपदविशेषाः । कृष्टेनपच्यन्त इति कृष्टपच्याः । 'राजसूय'—इत्यादिना कर्मकर्त्तरि क्यप्प्रत्ययान्तो निपातः । तद्विपरीता अकृष्टपच्या इव । कृपिर्येषामस्तीति तैः । कृषीवलैः कर्षकैरित्यर्थः 'रज कृषि'—इत्यादिना वलच् प्रत्ययः । 'वले' इति दीर्घः । सुखेनाक्लेशेन लभ्या लब्धुं शक्याः सस्यसम्पदो दधतो धारयन्तः । 'नाभ्यस्ताच्छतुः' इति नुमागमप्रतिषेधः । चकासति सर्वोत्कर्षेण वर्तन्त इत्यर्थः । 'अदभ्यस्ताम्' इति झेरदादेशः । 'जक्षित्यादयः षट्' इत्यभ्यस्तसंज्ञा । सम्पन्नजनपदत्वादसन्तापकरत्वाच्च दुःसाध्योऽयमिति भावः ॥१७॥

प्रकरण—दुर्योधन की नीतियों और प्रशासन के तरीकों का वर्णन करता हुआ वनेचर बताता है कि किस प्रकार उसने प्रजा हितकारी कार्यों को किया है। इन कार्यों से उत्पन्न हुई कुरुदेश की समृद्धि का वह वर्णन कर रहा है—

उदारकीर्तेरुदयं दयावतः
प्रशान्तबाधं दिशतोऽभिरक्षया ।
स्वयं प्रदुग्धेऽस्य गुणैरुपस्नुता
वसूपमानस्य वसूनि मेदिनी ॥१८॥

अन्वयः—उदारकीर्तेः दयावतः अभिरक्षया प्रशान्तबाधम् उदयम् दिशतः वसूपमानस्य अस्य गुणैः उपस्नुता मेदिनी वसूनि स्वयं प्रदुग्धे ॥१८॥

संस्कृत-व्याख्या—'उदारकीर्तेः' उदारा महती कीर्तिः यशः यस्य तस्य महायशस्विनः 'दयावतः' दयागुणेन युक्तस्य परदुःखनाशनस्य 'अभिरक्षया' प्रजानां रक्षां विधाय 'प्रशान्तबाधं' प्रशान्ताः प्रशमिताः बाधाः उपद्रवाणि यस्मिन् तम् 'उदयम्' उन्नतिं 'दिशतः' सम्पादयतः 'वसूपमानस्य' वसुः कुबेरः उपमानं यस्य तस्य कुबेरसदृशस्य अस्य दुर्योधनस्य 'गुणैः' दयादाक्षिण्यादिभिः उपस्नुता उपप्लुता

'मेदिनी' वसुन्धरा 'वसूनि' समृद्धयः 'स्वयं' स्वतः 'प्रदुग्धे' प्रदुग्धा भवति। अनायासेन पृथिवी तस्मै सकलाः सम्पत्तयः वितरति इति भावः ॥१८॥

शब्दार्थ—**उदारकीर्तेरुदयम्** **उदारकीर्तेः**=महान् यशस्वी। **उदयम्**=उन्नति की। **दयावतः**=दयावान्। **प्रशान्तबाधम्**=बाधाओं से रहित। **दिशतोऽभिरक्षया**। **दिशतः**=सम्पादित करते हुये। **अभिरक्षया**=रक्षा करने से। **स्वयं**=अपने आप। **प्रदुग्धेऽस्य**। **प्रदुग्धे**=दुह देती है। **अस्य**=इसके। **गुणैरुपस्नुता**। **गुणैः**=गुणों से। **उपस्नुता**=सराबोर होती हुई। **वसूपमानस्य**=कुबेर के समान। **वसूनि**=धनों को। **मेदिनी**=पृथिवी।

हिन्दी अर्थ—**महान् यशस्वी, दयावान्, प्रजा की रक्षा करने से बाधा रहित उन्नति को सम्पादित करते हुये कुबेर के सदृश उस दुर्योधन के दया आदि गुणों से सराबोर होती हुई पृथिवी स्वयं ही धनों को दुह देती है।** ॥१८॥

भाव—दुर्योधन की नीति और कार्यों से उसको महान् यश प्राप्त हुआ है। वह प्रजा के दुःखों को दूर करने के लिये सदा तत्पर रहता है। प्रजा की रक्षा करके उसने सब बाधायें दूर कर दी हैं। इस प्रकार कुरु देश में चहुमुखी उन्नति हो रही है। अतः उसको अनायास ही सब प्रकार की सम्पत्तियाँ प्राप्त हो गयी हैं और वह कुबेर के समान सम्पत्तिशाली हो गया है।

वाच्यपरिवर्तन—उदारकीर्तेः दयावतः अभिरक्षया प्रशान्तबाधम् उदयम् दिशतः वसूपमानस्य अस्य गुणैः उपस्नुतया मेदिन्या वसूनि स्वयम् प्रदुह्यन्ते।

टिप्पणियाँ—**उदारकीर्तेः**—उदारा कीर्ति यस्य तस्य। बहुव्रीहि समास। उत्+√ऋ+घञ्=उदार। √कृ+क्तिन्, ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्त्तयश्च' सूत्र से निपातन से कीर्ति रूप बना। **उदयम्**—उत्+√इ+अच्=उदय। **दयावतः**—दया अस्य अस्ति अर्थ में मतुप् प्रत्यय दया+मतुप्+दयावत्। षष्ठी विभक्ति का एकवचन—दयावतः। **प्रशान्तबाधम्**—प्रशान्ताः बाधाः यस्मिन् तत्। बहुव्रीहि समास। प्र+√शम्+क्त+टाप्=प्रशान्ताः। बाध्+अ+टाप्=बाधा। **दिशतः**—√दिश+शतृ=दिशत्। षष्ठी विभक्ति का एकवचन=दिशतः। **अभिरक्षया**—अभि+√रक्ष्+अ+टाप्=अभिरक्षा। तृतीया विभक्ति का एकवचन=अभिरक्षया। करणकारक में तृतीया विभक्ति हुई।

प्रदुग्धे—प्र उपसर्ग पूर्वक दुह धातु से आत्मनेपद में लट् लकार प्रथम पुरुष का

एकवचन । **उपस्नुता**—उप + स्नु + क्त + टाप् । **वसूपमानस्य**—वसु उपमानं यस्य तस्य । बहुव्रीहि समास । उप + $\sqrt{}$मा + ल्युट्(अन) उपमान । **मेदिनी**—मेदः अस्याम् अस्ति इति मेदिनी । जब विष्णु भगवान् ने मधु और कैटभ नाम के दैत्यों का संहार किया था, तो उस समय यह पृथिवी उनके मेद से ढक गयी थी, इसलिये इस पृथिवी का नाम मेदिनी पड़ा ।

अलङ्कार—समासोक्ति और उपमा । समासोक्ति अलङ्कार का लक्षण—

समासोक्तिः परिस्फूर्तिः प्रस्तुतेऽप्रस्तुतस्य चेत् ।

प्रस्तुत वृत्तान्त के कहने पर विशेषणों के सामर्थ्य से यदि अप्रस्तुत का बोध होता हो तो समासोक्ति अलङ्कार होता है । यहाँ प्रस्तुत पृथिवी के वर्णन करने से विशेषणों के सामर्थ्य से अप्रस्तुत गौ का वृत्तान्त द्योतित होता है । दुर्योधन के गुणों से सराबोर होती हुई पृथिवी स्वयं रत्नों को दुह देती है, इस वृतान्त के वर्णन से किसी गोभक्त की सेवा से प्रसन्न होकर उसके लिये स्वयं दूध दुह देने वाली गौ का वृत्तान्त द्योतित हो रहा है ।

'वसूपमानस्य' में **उपमा अलङ्कार है ।** इसमें दुर्योधन उपमेय, वसु उपमान और उपमान शब्द उपमावाचक है । धनसम्पन्न होना साधारण धर्म है । इसलिए उपमा के चारों अङ्गों के होने से यहाँ **पूर्णोपमा** है ।

छन्द—**वंशस्थ** ।

विशेष कथन—राजा यदि गुणों से युक्त है और राष्ट्र तथा प्रजा की अच्छी प्रकार रक्षा करता है, तो उसकी प्रजा सम्पन्न होगी ही, वह स्वयं भी प्रभूत मात्रा में धन-सम्पत्ति प्राप्त करेगा ।

घण्टापथ टीका—उदारेति । उदारकीर्तेर्महायशसः । 'उदारो दातृमहतोः' इत्यमरः ॥ दयावतः परदुःखप्रहाणेच्छोः । अत एव प्रशान्तबाधं प्रशमितोपद्रवं यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम् उदयविशेषणं वा । 'वा दान्तशान्त'—इत्यादिना शमिधातोर्ण्यन्तान्निष्ठान्तो निपातः । आभरक्षया सर्वतस्त्राणेनोदयं वृद्धिं दिशतः सम्पादयतो वसूपमानस्य कुबेरोपमस्य । 'वसुर्मयूखाग्निधनाधिपेषु' इति विश्वः । अस्य दुर्योधनस्य गुणैर्दयादाक्षिण्यादिभिरुपस्नुता द्राविता मेदिनी वसूनि धनानि । 'वसु तोये धने मणौ' इति वैजयन्ती । स्वयं प्रदुग्धे । अक्लेशेन दुह्यत इत्यर्थः । दुहेः कर्मकर्त्तरि लट् । 'न दुहस्नुनमां यक्चिणौ' इति यक्प्रतिषेधः । यथा केनचिद्

विदग्धेन नवप्रसूता रक्षिता च गौः, स्वयं प्रदुग्धे तद्वदिति भाव । अलंकारस्तु विशेषणमात्रगाम्यादप्रस्तुतस्य गम्यत्वे 'समासोक्तिः' इति सर्वस्वकारः । अत्र प्रतीयमानया गवा सह प्रकृताङ्गया मेदिन्या भेदेऽभेदलक्षणातिशयोक्तिवशाद्दोह्य-त्वेनोक्तिरिति संक्षेपः ॥१८॥

प्रकरण—सेवकों और प्रजा की दुर्योधन के प्रति अनुरक्ति और उसके ऐश्वर्य का वर्णन करके वनेचर बताता है कि अनेक योद्धा प्राणों से भी उस दुर्योधन की रक्षा करने के लिये उद्यत हैं—

महौजसो मानधनाः धनार्चिताः
धनुर्भृतः संयति लब्धकीर्त्तयः ।
न संहतास्तस्य न भिन्नवृत्तयः
प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभिः समीहितुम् ॥१९॥

अन्वयः—'महौजसः' मानधनाः धनार्चिताः लब्धकीर्त्तयः न संहताः न भिन्न-वृत्तयः धनुर्भृतः संयति असुभिः तस्य प्रियाणि वाञ्छन्ति । ॥१९॥

संस्कृत-व्याख्या—'महौजसः' महान् प्रचण्डः ओजः तेजः येषां ते प्रचण्ड-तेजस्विनः 'मानधनाः' मानं दर्पः एव धनं सम्पत्तिः येषां ते दर्पशालिनः 'धना-र्चिताः' धनैः दुर्योधनप्रदत्तैः धनैः अर्चिताः सत्कृताः 'लब्धकीर्त्तयः' लब्धा स्वयुद्ध-कौशलेन अधिगता कीर्ति यैः ते न 'संहताः' स्वार्थनिष्ठया परस्परं न संगताः अथवा शत्रुभिः भेदयितुमशक्याः 'न भिन्नवृत्तयः' भिन्ना स्वामिविपरीता वृत्तिः व्यवहारः येषां ते दुर्योधनानुकूलाः 'धनुर्भृतः' धनूंषि चापान् बिभ्रति धारयन्ति इति ते धनुर्धारिणः 'संयति' युद्धे 'असुभिः' प्राणैः अपि तस्य दुर्योधनस्य 'प्रियाणि' अभिलषितानि 'समीहितुं' कर्तुं 'वाञ्छन्ति' इच्छन्ति । ते धनुर्भृतः प्राणानपि अविगणय्य तस्य रक्षां विधास्यन्ति इति भावः ॥१९॥

शब्दार्थ—**महौजसः**=महातेजस्वी । **मानधनाः**=गर्वीले । **धनार्चिताः**=धन से सत्कृत । **धनुर्भृतः**=धनुर्धारी । **संयति**=युद्ध में । **लब्धकीर्तयः**=कीर्ति-शाली । **न**=नहीं । संहतास्तस्य । **संहताः**=मिल सकने वाले । **तस्य**=उसके । **भिन्नवृत्तयः**=विपरीत व्यवहार करने वाले । **प्रियाणि**=प्रिय । वाञ्छन्त्य-

सुभिः । वाञ्छन्ति = चाहते हैं । असुभिः = प्राणों द्वारा । समीहितुम् = करना ।

हिन्दी अर्थ—महातेजस्वी, गर्वीले, धन द्वारा सत्कार किये गये, कीर्तिशाली परस्पर गुटबन्दी न करने वाले अथवा शत्रुओं से न मिल सकने वाले स्वामी के अनुकूल व्यवहार करने वाले धनुर्धारी युद्ध में प्राणों द्वारा भी उसका प्रिय करना चाहते हैं ॥१९॥

भाव—दुर्योधन की सेवा में अनेक वीर युद्धकुशल योद्धा हैं। ये अत्यधिक तेजस्वी हैं। बहुत गर्वीले हैं । धन द्वारा दुर्योधन उनका सत्कार करता है। उनकी युद्धकुशलता बहुत प्रसिद्ध है, वे परस्पर गुटबन्दी नहीं करते और नाहीं शत्रुओं द्वारा फोड़ जा सकते हैं। उनका व्यवहार सदा दुर्योधन के अनुकूल रहता है। वे युद्ध होने पर प्राणों की परवाह न करके उसका हितसाधन करेंगे।

वाच्यपरिवर्तन—महौजसोभिः मानधनैः धनार्चितैः लब्धकीर्तिभिः न संहतैः न भिन्नवृत्तिभिः धनुर्भृद्भिः संयति असुभिः तस्य प्रियाणि समीहितुम् वाञ्छ्यते ।

टिप्पणियाँ—महौजसः—महान् ओजः येषां ते । बहुव्रीहि समास । मानधनाः—मानः धनं येषां ते बहुव्रीहि समास । धनार्चिताः—धनेन अर्चिता । तृतीया तत्पुरुष समास । √अर्च + णिच् + क्त = अर्चित । अथवा अर्चा अस्य अस्ति अर्थ में अर्चा + इतच् = अर्चित । धनुर्भृतः—धनुः बिभर्ति अर्थ में क्विप् प्रत्यय धनु + √भृ + क्विप् = धनुर्भृतः । प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में—धनुर्भृतः । संयति—सम् + √यम् + क्विप् संयत् । सप्तमी विभक्ति का एकवचन—संयति । लब्धकीर्तयः—लब्धा कीर्ति यैः ते । बहुव्रीहि समास । √लभ् + क्त + टाप् = लब्धा । संहताः—सम् + √हन् + क्त = संहत । प्रथमा विभक्ति का बहुवचन = संहता । भिन्नवृत्तयः—भिन्न वृत्तिः येषां ते । बहुव्रीहि समास । √भिद् + क्त = भिन्न । √वृत् + क्तिन् = वृत्ति । समीहितुम् = सम् + √ईह + तुमुन् ।

अलङ्कार—परिकर और काव्यलिङ्ग । परिकर अलङ्कार का लक्षण—

अलङ्कारः परिकरः साभिप्राये विशेषणे ।

जहाँ अभिप्रायों से गर्भित विशेषणों का प्रयोग किया जाये वहाँ परिकर अलङ्कार होता है । इस पद्य में महौजसः आदि विशेषणों का प्रयोग विशेष अभिप्राय से किया गया है। महौजसः, मानधनाः, लब्धकीर्तयः विशेषणों से

अभिप्राय है कि वे सैनिक महातेजस्वी, गर्वीले और युद्ध में निपुण होने के कारण आसानी से नहीं जीते जा सकते। धनार्चिता: से अभिप्राय है कि दुर्योधन प्रभूत मात्रा में उनको धन देकर प्रसन्न रखता है, अतः धन से उनको प्रलोभित नहीं किया जा सकता। न संहता: और न भिन्नवृत्तय: से अभिप्राय है कि यह आशा करना व्यर्थ है कि उनको किसी प्रकार फोड़ा जा सकता है या वे कभी दुर्योधन के विपरीत व्यवहार कर सकते हैं। इस प्रकार अभिप्राय से गर्भित विशेषणों का प्रयोग होने के कारण यहाँ परिकर अलङ्कार है।

'महौजसः' आदि पदों के अर्थों को प्राण देने के लिये भी उद्यत रहना इस हेतु के रूप में उल्लेख किया जाने से यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार भी है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—राजाओं के पास ऐसे योद्धा होने चाहियें, जो महातेजस्वी गर्वीले और युद्ध-विद्या में निपुण हों। उसको चाहिये कि धन से उनका सदा सत्कार करता रहे। परन्तु उनको इसके साथ यह भी ध्यान रखना चाहिये कि वे योद्धा उसके विरुद्ध गुटबन्दी न बना लें। अथवा शत्रुओं से न मिल जावें। उसको यह भी देखना चाहिये कि योद्धा राजा के प्रति उद्दण्ड न हों, सदा अनुकूल व्यवहार करने वाले हों। ऐसे योद्धा प्राणों की भी परवाह न करके राज्य और राजा की रक्षा करते हैं।

घण्टापथ टीका—महौजस इति। महौजसो महाबलाः। अन्यथा दुर्बलानामनुपकारित्वादिति भावः। मानः कुशलीलाद्यभिमान एव धनं येषां ते मानधनाः। अन्यथा कदाचिद् बलदर्पाद्विकुर्वीरन इति भावः। धनार्चिताः धनैरर्चिताः सत्कृताः। अन्यथा दारिद्र्यादेनं जह्यु रिति भावः। संयति संग्रामे लब्धकीर्त्तयः। बहुयशस इत्यर्थः। अन्यथा कदाचिन्मुह्येयुरिति भावः। संहता मिथः संगता स्वार्थनिष्ठाः स भवन्तीति न संहताः। नञर्थस्य न शब्दस्य 'सुप्सुपेति' समासः। भिन्नवृत्तयो मिथो विरोधात्स्वामिकार्यकरा न भवन्तीति न भिन्नवृत्तयः। पूर्ववत्समासः। अन्यथा स्वामिकार्यविघातकतया स्वामिद्रोहिणः स्युरिति उभयत्रापि तात्पर्यार्थः। धनुर्भृतो धानुष्काः। आयुधीयमात्रोपलक्षणमेतत्। प्रग्राम्याद्धनुग्रंहणम्। तस्य दुर्योधनस्यासुभिः प्राणैः प्रियाणि समीहितुं कर्तुं वाञ्छन्ति। आनुण्यार्थं [illegible] अन्यथा दोषस्मरणादिति भावः। अत्र महौजसा

दिपदार्थानां प्राणदानकर्त्तव्यतां प्रति विशेषणगत्या हेतुत्वाभिधानात्काव्यलिङ्गम-लङ्कारः। लक्षणं तूक्तम्। तथा साभिप्रायविशेषणत्वात्परिकरालङ्कार इति द्वयोस्तिलतण्डुलवद् विभक्ततया स्फुरणात्संसृष्टिः॥१९॥

प्रकरण—दुर्योधन के प्रति उसकी प्रजा और सेवकों की अनुरक्ति, उसके ऐश्वर्य और उसके योद्धाओं के गुणों का वर्णन करके वनेचर युधिष्ठिर को बताता है कि उसने देश और विदेश के समाचारों को जानने का उत्तम प्रबन्ध किया है—

महीभृतां सच्चरितैश्चरैः क्रियाः
स वेद निःशेषमशेषितक्रियः।
महोदयैस्तस्य हितानुबन्धिभिः
प्रतीयते धातुरिवेहितं फलैः ॥२०॥

अन्वयः—अशेषितक्रियः सः सच्चरितैः चरैः महीभृताम् क्रियाः निःशेषम् वेद। धातुः इव तस्य ईहितम् महोदयैः हितानुबन्धिभिः फलैः प्रतीयते ॥२०॥

संस्कृत-व्याख्या—'अशेषितक्रियः अशेषिताः समापिताः क्रियाः कार्याणि येन सः सर्वेषामेव कार्याणां समापक, न किमपि तस्य कार्यशेषत्वेन तिष्ठति इति भावः। स दुर्योधनः 'सच्चरितैः' सत् शुद्धं चरितम् आचरणम् येषां तैः सदाचारिभिः 'चरैः' गुप्तचरैः महीभृतां' भूपतीनां क्रियाः' व्यापाराणि 'निशेषं' साकल्येन 'वेद' जानाति। स स्वराष्ट्रेषु परराष्ट्रेषु च विधीयमानानि सर्वाणि व्यापाराणि गुप्तचरैः वेद इति भावः। परं 'धातुः' ब्रह्मणः इव तस्य दुर्योधनस्य 'ईहितं' चेष्टितं 'महोदयैः' महान् उदयः वृद्धिः येषां तैः महावृद्धिशालिभिः 'हितानुबन्धिभिः' हित. शुभः अनुबन्धः परिणतिः येषां तैः शुभपरिणामैः 'फलैः' सिद्धिभिः 'प्रतीयते' ज्ञायते। न सर्वेषामेव क्रियाकलापान् जानाति परं तस्य चेष्टितं सदैव ज्ञायते सदा शुभपरिणामं फलं दृष्टिगोचरं भवति ॥२७॥

शब्दार्थ—**महीभृताम्**=राजाओं के। सच्चरितैश्चरैः। **सच्चरितैः**=उत्तम आचरण वाले। **चरैः**=गुप्तचरों द्वारा। **क्रियाः**=कार्यों को। **सः**=वह। **वेद**—जानता है। निःशेषमशेषितक्रियः। **निःशेषम्**=पूर्ण रूप से। **अशेषितक्रियः**=कार्यों को पूरा करने वाला। महोदयैस्तस्य। **महोदयैः**=महान् वृद्धि को उत्पन्न करने

वाले। **तस्य**=उसके। **हितानुबन्धिभिः**=शुभ परिणामों से युक्त। **प्रतीयते:**= अनुमान की जाती है। धातुरिहितम्। **धातुः इव**=विधाता के समान। **ईहितम्**=चेष्टा। **फलैः**=फलों के द्वारा।

हिन्दी अर्थ—सब कार्यों को पूरा करने वाला, उनको कभी अधूरा न छोड़ने वाला, वह दुर्योधन उत्तम आचरण वाले गुप्तचरों द्वारा राजाओं के कार्यों को पूर्णरूप से जानता है। परन्तु विधाता के समान उसकी चेष्टायें महान् वृद्धि को उत्पन्न करने वाले शुभ परिणामों से युक्त फलों द्वारा ही अनुमान की जाती है॥२०॥

भाव—धुर्योधन कभी किसी कार्य को अधूरा नहीं छोड़ता। उसके द्वारा उत्तम आचरण वाले ईमानदार गुप्तचर नियुक्त किये हुये हैं। वे सभी राज्यों में फैले हुए हैं और वहाँ राजाओं द्वारा किये जाने वाले कार्यों का पूरा विवरण उसको भेजते रहते हैं इस प्रकार वह सभी राजाओं के कार्यों को—वे क्या कर चुके हैं, क्या कर रहे हैं और क्या करेंगे, जान लेता है। परन्तु वह क्या करेगा, इस की बात कोई नहीं जान पाता। इसका ज्ञान तो तभी होता है जब उनके हितकारी कार्यों का शुभ परिणाम प्रकट होता है।

वाच्यपरिवर्तन—अशेषितक्रियेण तेन सच्चरितैः चरैः महीभृतां क्रिया निःशेषं वेदिताः। धातु इव तस्य ईहितेन महोदयैः हितानुबन्धिभिः फलैः प्रतीयते।

टिप्पणियाँ—**महीभृताम्**—मही बिभर्ति अर्थ में मही √भृ + क्विप्—महीभृत। षष्ठी विभक्ति का बहुवचन महीभृताम्। **सच्चरितैः**—सत् √ चर् + क्त =सच्चरित। तृतीया विभक्ति का बहुवचन=सच्चरितैः। **वेद**—√विद धातु—लिट् लकार का प्रथम पुरुष का एकवचन। **निःशेषम्**—निर्गतः शेषः यस्मात् यथा स्यात्तथा। यह क्रिया विशेषण है। **अशेषितक्रियः**—न शेषिताः अशेषिताः। नञ तत्पुरुष समास। अशेषिताः क्रियाः येन सः अशेषितक्रियाः। बहुव्रीहि समास। √शेष + णिच् + क्त = शेषित। अथवा शेष सञ्जातः अस्य इति शेषित। **महोदयैः**—महान् उदयः येषां तैः। बहुव्रीहि समास। उद √इ + अच् = उदय। **हितानुबन्धिभिः**—हितः अनुबन्धः येषां तैः। बहुव्रीहि समास। √धा + क्त = हित। अनु √बन्ध + घञ = अनुबन्ध। हितानुबन्धि + इति हितानुबन्धिन्। तृतीया

विभक्ति का बहुवचन = हितानुबन्धिभिः। **प्रतीयते**—प्रति √इण् + यक् = प्रतीय। लट् लकार प्रथम पुरुष का एकवचन = प्रतीयते। धातु √धा + तृच् = धातु। षष्ठी विभक्ति का एकवचन = धातुः। **ईहितम्** √इह + क्त = ईहित।

अलङ्कार—अनुमान और उपमा। अनुमान अलङ्कार का लक्षण—

अनुमानं तदयुक्तं यत् साध्यसाधनयोर्वचः।

जहाँ साध्य सिद्ध (करने योग्य वस्तु) और साधन (सिद्ध करने वाला हेतु) का कथन किया जाता है वहाँ अनुमान अलङ्कार होता है। यहाँ साध्य फल और साधन ईहित का कथन किया जाने से अनुमान अलङ्कार है।

दुर्योधन का सादृश्य धाता से कहने के कारण उपमा अलङ्कार है। जिस प्रकार धाता की चेष्टाओं का अनुमान उनके कार्यों सृष्टि आदि की रचना से किया जाता है, उसी प्रकार दुर्योधन की चेष्टाओं का अनुमान कार्य रूप में फलित हुये उनके शुभ परिणामों को देखकर किया जा सकता है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—राजा को चारचक्षु कहते हैं। उसे चाहिये कि गुप्तचरों द्वारा अपने और दूसरे राष्ट्रों में होने वाले सभी व्यापारों को जानता रहे। परन्तु वह क्या करने वाला है, इसका पता किसी को नहीं लगना चाहिये। उसके उद्देश्यों का पता तभी लगना चाहिये, जबकि उसकी चेष्टायें फलीभूत हो जावें।

घण्टापथ टीका—महीभृतामिति। अशेपितक्रियः समापितकृत्यः आफलोदयकर्मेत्यर्थः। स दुर्योधनः सच्चरितैः शुद्धचरितैः। अवञ्चकैरित्यर्थः। चरन्तीति चरास्तैः चरैः। प्रणिधिभिः। 'पचाद्यच्'। महीभृतां क्रियाः प्रारम्भान्निशेषं वेद वेत्ति। 'विदो लटो वा' इति जलादेशः। स्वरहस्यं तु न कश्चिद् वेदेत्याह—महोदयैरिति। धातुरियं तस्य दुर्योधनस्येहितमुद्योगो महोदयैर्महाफलवृद्धिभिः। हितमनुबध्नन्त्यनुरुन्धतीति हितानुबन्धिभिः। फलैः कार्यसिद्धिभि प्रतीयते ज्ञायते। फलानुमेयास्तस्य प्रारम्भा इत्यर्थः ॥२०॥

प्रकरण—वनेचर युधिष्ठिर को बता रहा है कि दुर्योधन की नीति के कारण उसके सेवक और प्रजा उसके प्रति अनुरक्त हैं। साम आदि उपायों का प्रयोग करके उसने प्रचुर सम्पत्ति प्राप्त कर ली है। महान् वीर उसकी

इच्छाओं को पूरा करने के लिये उद्यत रहते हैं और वह अपने तथा दूसरे राष्ट्रों में होने वाले सभी व्यापारों को गुप्तचरों के द्वारा जान लेता है। अब वह दुर्योधन की नीति के सूक्ष्म फलों का वर्णन करता है—

न तेन सज्यं क्वचिदुद्यतं धनुः
कृतं न वा कोपविजिह्ममाननम्।
गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते
नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम् ॥२१॥

अन्वयः—तेन क्वचित् सज्यं धनुः न उद्यतम्, वा आननम् कोपविजिह्मम् न कृतम्। नराधिपैः अस्य शासनम् गुणानुरागेण शिरोभिः माल्यम् इव उह्यते ॥२१॥

संस्कृत-व्याख्या—तेन दुर्योधनेन 'क्वचित्'; कस्मिंश्चिदपि स्थाने अवसरे वा 'सज्य' ज्यया मौर्व्या सह सज्यं प्रत्यञ्चायुक्तं 'धनुः' चापम् न 'उद्यतम्' उत्थापितम्। 'वा' अथवा 'आननम्' मुखं 'कोपविजिह्मम्' कोपेन क्रोधेन विजिह्मम् कुटिलं 'न कृतं' न विहितम्। 'नराधिपैः' राजभिः अस्य दुर्योधनस्य 'शासनम्' आदेशः 'गुणानुरागेण' गुणेषु शौर्यदयादाक्षिण्यादिषु अनुरागेण स्नेहेन हेतुना 'शिरोभिः' मस्तकैः 'माल्यम् इव' स्रग् इव 'उह्यते' धार्यते। राजानः दुर्योधनस्य आदेशं गुणानुरागेण स्वयमेव पालयन्ति न भयेन ॥२१॥

शब्दार्थ—**तेन**=उसने। **सज्यम्**=डोरी से युक्त। क्वचिदुद्यतम्। **क्वचित्**=कभी भी। **उद्यतम्**=उठाया। **कृतम्**=किया। कोपविजिह्ममाननम्। **कोपविजिह्मम्**=क्रोध से कुटिल। **आननम्**=मुख। **गुणानुरागेण**=गुणों के प्रति प्रेम से। शिरोभिरुह्यते। **शिरोभिः**=सिरों से। **उह्यते**=वाहन करते हैं। नराधिपैर्माल्यमिवास्य। **नराधिपैः**=अधीन राजा। **माल्यम् इव**=माला के समान। **अस्य**-इसका। **शासनम्**=आदेश।

हिन्दी अर्थ—उस दुर्योधन ने कभी भी डोरी चढ़े हुये धनुष को नहीं उठाया है। उसने कभी भी क्रोध से अपने मुख को टेढ़ा नहीं किया है। अधीनस्थ राजा उसके आदेश को उसके गुणों के प्रति अनुराग के कारण सिरों से मालाओं के समान वहन करते हैं ॥२१॥

भाव—दुर्योधन ने इस प्रकार से सफल नीति का प्रयोग किया है कि

उसको अपने आदेश का पालन कराने के लिये कभी शस्त्र नहीं उठाने पड़ते और कभी क्रोध भी नहीं करना पड़ता। अधीन राजा उसके गुणों के कारण उससे स्नेह करते हैं और इसलिये उसके आदेश का पालन करते हैं।

वाच्यपरिवर्तन—स क्वचित् सज्यम् धनुः न उद्युङ्क्ते। वा आननम् कोपविजिह्मम् करोति। नराधिपाः अस्य शासनं गुणानुरागेण शिरोभिः माल्यम् इव स्वयम् वहन्ति।

टिप्पणियाँ—सज्यम् ज्यया सहवर्तमानम्। बहुव्रीहि समास। ज्या + अण् + टाप् = ज्या। **उद्यतम्**—उद् + यम् + क्त। **कोपविजिह्मम्**—कोपेन विजिह्मम् कोपविजिह्मम्। तृतीया तत्पुरुष समास। √कुप् + घञ् = कोप। **आननम्**—आ√अन + ल्युट् (अन) आनन। **गुणानुरागेण**—गुणेषु अनुरागेण। सप्तमी तत्पुरुष समास। अनु√रञ्ज् + घञ् = अनुराग। हेतु होने से यहाँ 'हेतौ' सूत्र में तृतीया विभक्ति हुई। **उह्यते** √वह् + यक् धातु में लट् लकार प्रथम पुरुष का एकवचन। **नराधिपैः**—नराणाम् अधिपैः षष्ठी तत्पुरुष समास। नृ + अच् = नर। अधि पाति रक्षति अर्थ में अधि + √पा + क = अधिप। **माल्यम्**—माला एव माल्यम्। माला + ष्यञ् = माल्य। **शासनम्**—शास् + ल्युट् = शासन।

अलङ्कार—उपमा।

जिस प्रकार सुरभि आदि गुणों के कारण माला को सिर पर वहन किया जाता है, उसी प्रकार दुर्योधन के गुणों के कारण दूसरे राजा उसके गुणों को वहन करते हैं अर्थात् उसके आदेशों का पालन करते हैं। सादृश्य का कथन करने से इसमें उपमा अलङ्कार है। यहाँ माल्य उपमान, शासन उपमेय, वहन करना आदि साधारण धर्म और इव वाचक शब्द हैं। उपमा के चार अंगों के होने से यह पूर्णोपमा है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—राजा को इतना प्रभावशाली होना चाहिये कि अपने आदेशों का पालन कराने के लिये उसे न तो कभी शस्त्रों को उठाने की आवश्यकता हो और न कभी क्रोध ही करना पड़े।

घण्टापथ टीका—[illegible] । तेन राज्ञा [illegible] । सह ज्यया मौर्व्या

सज्यम् । मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः' इत्यमरः । तेन सहेति तुल्ययोगे' इति बहुव्रीहिः । धनुर्नोद्यतं नोर्ध्वीकृतम् । आननं च कोपविजिह्मं कोपकुटिलं न कृतम् । यस्य कोप एव नोदेति कुतस्तस्य युद्धप्रसक्तिरिति भावः । कथं तर्ह्याज्ञां कारयति राज्ञ इत्याह गुणेति । गुणेषु दयादाक्षिण्यादिष्वनुरागेण प्रेम्णा । माल्यपक्षे सूत्रानुषङ्गेण । यद्वा सौरभ्यगुणलाभेन नराधिपैरस्य शासनमाज्ञा । मालव तदिव । माल्यं 'चातुर्वर्ण्यादित्वात्स्वार्थे ष्यञ्' इति क्षीरस्वामी । शिरोभिरुह्यते धार्यते । 'वचिस्वपियजादीनां किति' इति यकि सम्प्रसारणम् । अत्रोपमा स्फुटैव ।।२१।।

प्रकरण—दुर्योधन की नीतियों की सफलता, समृद्धि, प्रभाव और शक्ति का वर्णन करके वनेचर युधिष्ठिर को बताता है कि वह धार्मिक कर्त्तव्यों का भी पालन करता है—

स यौवराज्ये नवयौवनोद्धतं
निधाय दुःशासनमिद्धशासनः ।
मखेष्वखिन्नोऽनुमतः पुरोधसा
धिनोति हव्येन हिरण्यरेतसम् ।।२२।।

अन्वयः—इद्धशासनः स नवयौवनोद्धत दुःशासनम् यौवराज्ये निधाय मखेषु अखिन्नः पुरोधसा अनुमतः हव्येन हिरण्यरेतसम् धिनोति ।।२२।।

संस्कृत-व्याख्या—'इद्धशासनः' इद्धं प्रदीप्तम् अप्रतिहतम् भावः शासनम् आदेशः यस्य स दुर्योधनः 'नवयौवनोद्धतं' नवेन नूतनेन यौवनेन तारुण्येन उद्धतं गर्वितं 'दुःशासनम्' एतन्नामकं स्वं अनुजं 'यौवराज्ये,' युवराजस्य पदे 'निधाय' नियुक्तं कृत्वा स्वयं 'मखेषु' यज्ञेषु 'अखिन्नः' विश्रान्तिरहितः खेदं न कुर्वन् इति वा पुरोधसा' पुरोहितेन 'अनुमतः' अनुज्ञातः उपदिष्टः वा 'हव्येन' हविषा घृत-समिधादीनाहुत्य 'हिरण्यरेतसम्' अनिलं 'धिनोति' धारयति प्रीणयति वा ।।२२।।

शब्दार्थ—**यौवराज्ये**=युवराज के पद पर । **नवयौवनोद्धतम्**=नवीन यौवन से गर्वित । **निधाय**=नियुक्त करके । दुःशासनमिद्धशासनः । **दुःशासनम्**= दुःशासन को । **इद्धशासनः**=अप्रतिहत आदेश वाला । मखेष्वखिन्नोऽनुमतः । **मखेषु**=यज्ञों में । **अखिन्नः**=न थकता हुआ । **अनुमतः**=अनुमति पाकर ।

पुरोधसा=पुरोहित से। **धिनोति**=प्रसन्न कर रहा है। **हव्येन**=हवियों से। **हिरण्यरेतसम्**=अग्नि को।

हिन्दी अर्थ—अप्रतिहत आदेश वाला वह दुर्योधन नवीन यौवन के गर्व से गर्वीले छोटे भाई दुःशासन को युवराज के पद पर नियुक्ति करके यज्ञों में थकावट का अनुभव न करता हुआ पुरोहित से अनुमति पाकर हवियों से अग्नि को प्रसन्न कर रहा है ॥२२॥

भाव—दुर्योधन की नीतियों के कारण कोई भी उसके आदेश का उल्लंघन नहीं कर सकता। केवल सांसारिक उपायों पर निर्भर न रहकर उसने सब देवताओं को भी प्रसन्न करने का उपक्रम आरम्भ कर दिया है। उसने दुःशासन को युवराज के पद पर नियुक्त कर दिया है और इस प्रकार शासन की चिन्ता से मुक्त होकर वह पुरोहितों द्वारा बताये गये मार्ग से यज्ञों का अनुष्ठान कर रहा है।

वाच्यपरिवर्तन—इद्धशासनेन तेन नवयौवनोद्धतः दुःशासनः यौवराज्ये निधाय मखेषु अभिन्नेन पुरोधसा अनुमतेन हव्येन हिरण्यरेताः धीयते।

टिप्पणियाँ—यौवराज्ये—युवा चासौ राजा युवराजः। कर्मधारय समास। युवराजस्य भावः अर्थ में 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः ष्यञ् च' सूत्र से ष्यञ् प्रत्यय युवराज+ष्यञ्=यौवराज्य। सप्तमी विभक्ति का एकवचन=यौवराज्ये। **नवयौवनोद्धतम्**—नवं यौवनं नवयौवनम्। कर्मधारय समास। नवयौवनेन उद्धतम् नवयौवनोद्धतम्। तृतीया तत्पुरुष समास। यूनो भावः अर्थ में युवन्+अण्=यौवन। उद्√हन्+क्त=उद्धत। **निधाय**—नि√धा+क्त्वा (ल्यप्)। **दुःशासनम्**—दुःखेन शास्यते यः अथवा दुखं शासनं यस्य सा बहुव्रीहि समास दुर्√शास+ल्युट् (अन)=दुःशासन। **इद्धशासनः**—इद्धं शासनं यस्य सा बहुव्रीहि समास √इन्ध्+क्त=इद्ध √शास्+ल्युट् (अन)=शासन। **मखेषु**—√मख+घ=मख। सप्तमी विभक्ति का बहुवचन मखेषु। **अखिन्नः**—न खिन्नः नञ् तत्पुरुष समास। √खिद्+क्त=खिन्न। **अनुमतः**—अनु+√मन्+क्त। **पुरोधसा**—पुरः धारयति अर्थ में पुरस्+√धा+असि=पुरोधस्। तृतीया विभक्ति का एकवचन—पुरोधसा। **हिरण्यरेतसम्**—हिरण्यं रेतः यस्य तम्। बहुव्रीहि समास। सुनहरी कान्ति वाला होने से अग्नि को हिरण्यरेता कहा गया है।

अलङ्कार---यमक । यमक अलङ्कार का लक्षण—

अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सः पुनः श्रुति । यमकम् ॥

अर्थ होने पर भिन्न अर्थों वाले वर्णों की उसी क्रम में आवृत्ति होने पर यमक अलङ्कार होता है । दुःशासनमिद्धशासनम् में भिन्न अर्थों वाले शासन इस वर्णसमूह की आवृत्ति होने से यमक अलङ्कार है ।

छन्द---वंशस्थ ।

विशेष कथन—शासकों को केवल भौतिक उन्नति में ही अपनी इतिकर्त्तव्यता नहीं समझ लेनी चाहिये । उनको धर्म की वृद्धि करने के भी उपाय करने चाहियें और इसके लिये यज्ञों का अनुष्ठान करना चाहिये ।

घण्टापथ टीका—स इति । इद्धशासनोऽप्रतिहताज्ञः स दुर्योधनो नवयौवनोद्धतं प्रगल्भम् । धुरन्धरमित्यर्थः । दुःखेन शास्यत इति दुःशासनस्तम् । 'भाषायां शासियुधि'—इत्यादिना खलर्थे युच्प्रत्ययः । यौवराज्ये युवराजकर्मणि । ब्राह्मणादित्वात्ष्यञ् प्रत्ययः । निधाय नियुज्येत्यर्थः । पुरोधसा पुरोहितेनानुमतोऽनुज्ञातः तस्मिन्याजके सतीत्यर्थः । तदुल्लङ्घने दोषस्मरणादिति भावः । 'निष्ठा' इति भूतार्थे क्तः । न तु 'मतिबुद्धि' इत्यादिना वर्तमानार्थे । अन्यथा पुरोधसा इत्यत्र 'क्तस्य च वर्तमाने' इति षष्ठी स्यात् । अखिन्नोऽनलसो मखेषु क्रतुषु हव्येन हविषा । हिरण्यं रेतो यस्य तं हिरण्यरेतसमनलं धिनोति प्रीणयति । धिन्वेः प्रीणनार्थाद् 'धिन्विकृण्व्योर च' इत्युप्रत्ययः । अकारश्चान्तादेशः ॥२२॥

प्रकरण—दुर्योधन की इस प्रकार की सफलताओं और उसके धार्मिक अनुष्ठानों का वर्णन करके वनेचर युधिष्ठिर को बताता है कि इस प्रकार शक्ति का संग्रह कर लेने पर भी दुर्योधन आपसे सदा डरता रहता है—

प्रलीनभूपालमपि स्थिरायति
प्रशासदावारिधि मण्डलं भुवः ।
स चिन्तयत्येव भियस्त्वदेष्यति-
रहो दुरन्ता वलवद्विरोधिता ॥२३॥

अन्वयः—स प्रलीनभूपालम् स्थिरायति आवारिधि भुवः मण्डलम् प्रशासद् अपि त्वदेष्यतीः एव भियः चिन्तयति । अहो बलवद्विरोधिता दुरन्ता ॥२३॥

संस्कृत-व्याख्या—स दुर्योधनः 'प्रलीनभूपाल' प्रलीनाः विनष्टाः भूपालाः शत्रुराजानः यस्मिन् तत् शत्रुरहितम् इत्यर्थः, 'स्थिरायति' स्थिरा दृढ़मूला आयतिः भविष्यं तत्, चिरस्थायि इत्यर्थः 'आवारिधि' समुद्रपर्यन्तं 'भुवः' पृथिव्याः 'मण्डलं' वलयं 'प्रशासद् अपि' शासनं कुर्वन्नपि त्वदेष्यति' त्वत्तः भवतः सकाशाद् एष्यतीः आगमिष्यतीः एव 'भियः' भयहेतून् 'चिन्तयति' विचारयति। भीतयः त्वत्तः एव आगमिष्यन्ति इत्येव तस्य धारणा। अहो इति आश्चर्ये बलवद्विरोधिता' बलवद्भिः प्रबलैः सह विरोधिता शत्रुता 'दुरन्ता' दुःखम् अन्तं परिणामः यस्या तादृशी भवती। बलवद्भिः सह शत्रुतया 'दुःखमेव प्राप्यते इत्यर्थः।

शब्दार्थ—प्रलीनभूपालमपि। **प्रलीनभूपालम् अपि** = शत्रु राजाओं से रहित भी। **स्थिरायति** = सदा स्थिर रहने वाले। प्रशासदावारिधि। **प्रशासद्** = शासन करता हुआ। **आवारिधि** = समुद्र पर्यन्त। **भुवमण्डलम्** = पृथिवी-मण्डल। चिन्तयत्येव। **चिन्तयति एव** = विचार करता ही है। भियस्त्वदायती-रहो। **भियः** = भयों को। **त्वदेष्यतीः** = तुमसे आने वाले। **अहो** = आश्चर्य है। **दुरन्ता** = दुःखद परिणाम वाली। **बलवद्विरोधिता** = बलवानों से शत्रुता करना।

हिन्दी अर्थ--वह दुर्योधन शत्रु राजाओं से रहित, सदा स्थिर रहने वाले, समुद्रपर्यन्त पृथिवी मण्डल का शासन करता हुआ भी तुम्हारे से आने वाले भयों का विचार करता है। अहो बलवानों के साथ शत्रुता करने का परिणाम दुःखद ही होता है॥२३॥

भाव—इस श्लोक द्वारा दुर्योधन की निर्बलता की ओर संकेत किया गया है। यद्यपि दुर्योधन ने सभी शत्रु राजाओं को समाप्त कर दिया है, उसका प्रशासन स्थिर हो चुका है, उसके राज्य की सीमायें समुद्रपर्यन्त विस्तृत हैं। तथापि उसको केवल एक आपका ही भय है, क्योंकि आप जैसे बलवानों के साथ शत्रुता करने का परिणाम दुःखद ही है।

वाच्यपरिवर्तन—तेन प्रलीनभूपालं स्थिरायति आवारिधि भुव मण्डलं प्रशास्ता अपि त्वदेष्यत्यः भियः एव चिन्त्यन्ते। अहो बलवद्विरोधितया दुरन्तया (भूयते)।

टिप्पणियाँ—प्रलीनभूपालम्—प्रलीना: भूपाला: यस्मिन् तत्। बहुव्रीहि समास। प्र + √ली + क्त = प्रलीन। भुवं पालयति अर्थ में भू + √पाल् + अच् = भूपाल। **स्थिरायति**—स्थिरा आयति: यस्य तत्। बहुव्रीहि समास। √स्था + किरच् = स्थिर। आ + √या + इति = आयति। **प्रशासत्**—प्र + √शास् + शतृ = प्रशासत्। **भियः**—√भी + क्विप् + भी। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन = भिय:। **त्वदेष्यती:**—त्वत्त: एष्यती:। पञ्चमी तत्पुरुष समास। √इण् धातु से भविष्यत् काल में शतृ प्रत्यय होकर √इ + स्य + शतृ = ङीप् = एष्यती:। **दुरन्ता**—दु:खम् अन्तं यस्या: सा। बहुव्रीहि समास। **बलवद्वि-रोधिता**—बलवद्भि: विरोधिता। तृतीया तत्पुरुष समास। बलम् अस्य अस्ति अर्थ में मतुप् प्रत्यय बल + मतुप् = बलवद्। वि + √रुध् + णिनि = विरोधिन: भाव:—विरोधिन् + तल् + टाप् = विरोधिता।

अलङ्कार—अर्थान्तरन्यास।

'आपके साथ वैर रखने का परिणाम दुर्योधन के लिये दु:खपूर्ण है, इस विशेष का समर्थन 'बलवानों के साथ शत्रुता रखना परिणाम में दु:खदायी होता है' इस सामन्य से किया जाने के कारण इस पद्य में **अर्थान्तरन्यास** अलङ्कार है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—दुर्योधन की शक्ति और समृद्धि का वर्णन करके भी वनेचर अपने स्वामी के उत्साह को भंग करना नहीं चाहता। वह उसके साहस को तोड़ना और उसको निराश नहीं करना चाहता। वह युधिष्ठिर को आशा दिलाता है कि आप अत्यधिक शक्तिशाली हैं। दुर्योधन केवल आपसे ही डरता है। आप उद्योग करके अपने राज्य को पुन: प्राप्त कर सकते हैं।

इस श्लोक द्वारा यह भी व्यक्त होता है कि राजा अपने विरोधियों को सम्पूर्ण रूप से ही समाप्त क्यों न कर ले और उसका राज्य कितना भी विस्तीर्ण क्यों न हो जावे उसको बलवानों के साथ विरोध मोल नहीं लेना चाहिये।

घण्टापथ टीका—प्रलीनेति। स दुर्योधन: प्रलीनभूपालम्। नि:सपत्नमि-त्यर्थ:। स्थिरायति। चिरस्थायीत्यर्थ:। भुवो मण्डलमावारिधिभ्य आवारिधि। आङ्मर्यादाऽभिविध्योः' इत्यव्ययीभाव:। प्रशासदातापयन्नपि। 'जक्षित्यादय:

षट् इत्यभ्यस्तसंज्ञा। 'नाभ्यस्ताच्छतुः' इति नुमागमप्रतिषेधः। त्वत् त्वत्त एष्यतीरागमिष्यतिः। धातूनामनेकार्थत्वादुक्तार्थसिद्धिः। अथवाऽऽङ्पूर्वः पाठः। 'एत्येधत्यूठ्सु' इति वृद्धिः। 'लृटः सद् वा' इति शतृप्रत्ययः। उगितश्च इति ङीप्। 'आच्छीनद्योर्नुम्' इति विकल्पान्नुमभावः। भियो भयहेतून्। विपद इत्यर्थः। चिन्तयत्यालोचयत्येव। स एवाह—अहो बलवद्विरोधिता दुरन्ता दुष्टावसाना। सार्वभौमस्यापि प्रबलैः मह वैरायमाणत्वमनर्थपर्यन्तसायि एवेति तात्पर्यम्। सामान्येन विशेषसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासः ॥२३॥

प्रकरण—वनेचर ने दुर्योधन की शक्ति, नीतियों और प्रभाव का वर्णन करके युधिष्ठिर को बताया कि इतना प्रभावशाली होते हुये भी वह केवल आपसे ही डरता है। इस गुप्त रहस्य को मुझ गुप्तचर ने कैसे जाना, अब वह इस बात को बताता है—

कथाप्रसङ्गेन जनैरुदाहृता-
दनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः।
तवाभिधानाद् व्यथते नताननः
स दुःसहान्मन्त्रपदादिवोरगः ॥२४॥

अन्वयः—कथाप्रसंगेन जनैः उदाहृतात् तव अभिधानात् अनुस्मृताखण्डलसुनुविक्रमः नतानन स दुःसहात् मन्त्रपदात् उरग इव व्यथते ॥२४॥

संस्कृत-व्याख्या—'कथाप्रसंगेन' कथानां गोष्ठीनां प्रसंगेन गोष्ठीवार्तासु इत्यर्थः जनैः लोकैः अथवा 'कथाप्रमंगेषुजनैः' कथाप्रसंगेषु इनाः श्रेष्ठाः जनाः लोकाः तै 'उदाहृतात्' उच्चारितात् 'तव' भवतः युधिष्ठिरस्य 'अभिधानात् नाम्नः कथनात् 'अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः' अनुस्मृतः स्मृतिं प्राप्तः आखण्डलस्य इन्द्रस्य सूनोः पुत्रस्य अर्जुनस्य इत्यर्थः विक्रमः पराक्रमः यः स अत एव 'नताननः' नतं नम्रीभूतम् मुखं यस्य स दुर्योधन 'दुःसहात्' असह्यात् 'मन्त्रपदात्' मन्त्राणां शब्दानां पदात् मन्त्रशब्दप्रयोगादिति भावः 'उरगः' सर्पः इव 'व्यथते' अत्यन्तं पीडितोऽभवति ॥२४॥

अत्र सर्वाणि पदानि सर्वपक्षेऽपि संगतानि भवन्ति। दुर्योधनः तथैव व्यथते यथा 'कथाप्रसंगेन' विषवैद्येन कथाप्रसंगः विषवैद्यः इत्यर्थः जनैः' लोकैः 'उदा-

हृताद्' उच्चारितात् 'तवाभिधानात्' तः तार्क्ष्यनामा सर्पः वः वासुकिनामा सर्पः तयो अभिधानं नामोच्चारणं यस्मिन् पदे तस्मात् "अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः' अनुस्मृतः आखण्डलस्य सूनूः अनुजः उपेन्द्रः विष्णुः तस्य विः पक्षी गरुडः तस्य क्रमः चरणविक्षेपः येन स 'नताननः' अधोमुखः उरगः सर्पः दुःसहात् असह्यात् सर्पबन्धनकारणीभूतात् मन्त्रशब्दप्रयोगात् 'व्यथते', पीडितो भवति ।

त्वत्तः भीतः दुर्योधनः कथाप्रसंगेषु यदैव तव नामोच्चारणं श्रृणोति तदैव अर्जुनस्य स्मरणात् अधोमुखः सन् तथैव व्यथितो भवति यथा गरुडस्य स्मरणाद् अधोमुखः सर्पः भीतो भवति । इति भावः ॥२४॥

शब्दार्थ—**कथाप्रसङ्गेन**=कथाओं के प्रसङ्ग में। **जनैरुदाहृतावनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः**=**जनैः**=श्रेष्ठ जनों द्वारा। **उदाहृतात्**=उच्चारण करने से। **अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः**=इन्द्र के पुत्र अर्जुन के पराक्रम का स्मरण करके। तवाभिधानात्। **तव**=तुम्हारे। **अभिधानात्**=नाम से। **व्यथते**=व्यथित होता है। **नताननः**=मुख को झुकाये हुये। **दुःसहात्**=असह्य। मन्त्रपदादिवोरगः। **मन्त्रपदात्**=मन्त्रों के प्रयोग से। **इव**=समान। **उरगः**=सर्प।

हिन्दी अर्थ—**कथाप्रसङ्ग में श्रेष्ठ जनों द्वारा आपके नाम का उच्चारण होने पर इन्द्र के पुत्र अर्जुन के नाम का स्मरण करके सिर झुकाये हुये वह दुर्योधन उसी प्रकार पीडित है, जिस प्रकार विषवैद्यों में श्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा तार्क्ष्य और वासुकि सर्पों के नाम से युक्त पदों के उच्चारण करने पर इन्द्र के अनुज-उपेन्द्र अर्थात् विष्णु के वाहन गरुड के पादविक्षेप को स्मरण करने वाला अतः मुख को झुकाये हुये सर्प असह्य मन्त्रों के प्रयोग से व्यथित होता है ॥२४॥**

भाव—यद्यपि दुर्योधन ने प्रभूत मात्रा में समृद्धि, धन, बल और धर्म का संचय कर लिया है, तथापि संसार में सर्वश्रेष्ठ योद्धा अर्जुन के स्मरण करने से ही वह नीचे को मुख करके हृदय में अत्यधिक पीड़ित होता है।

वाच्यपरिवर्तन—कथाप्रसंगेन जनैः उदाहृतात् तव अभिधानाद् अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमेण नतानेन तेन दुःसहात् मन्त्रपदात् उरगेण इव व्यथ्यते।

टिप्पणियाँ—**कथाप्रसङ्गेन**—कथानां प्रसंगेन। षष्ठी तत्पुरुष **समास**। प्र+√सन्ज्-घञ्=प्रसङ्ग। **कथाप्रसङ्गेन जनाः**—इनाश्च ते जनाः इन-

जना: । श्रेष्ठ पुरुष । कर्मधारय समास । कथानां प्रसङ्ग: = कथाप्रसङ्ग: । कथाप्रसंगेषु इनजनै:—कथाप्रसंगेन जनै: । सप्तमी तत्पुरुष समास । **उदाहृतात्** = उद् + आ √हृ + क्त = उदाहृत । पञ्चमी विभक्ति का एकवचन = उदाहृतात् के हेतु होने के कारण यहाँ 'हेतौ' सूत्र से पञ्चमी विभक्ति हुई । **तवाभिधानात्**—तव अभिधानात् । तुम्हारे नाम का उच्चारण होने से । अथवा तश्च वश्च तयो: तार्क्ष्यवासुकयो: । अभिधानात् । अभि + √धा + ल्युट् (अन) = अभिधान । **अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रम:**—आखण्डलस्य सूनो: विक्रम: आखण्डलसूनुविक्रम: । षष्ठी तत्पुरुष समास । अनुस्मृत: आखण्डलसूनुविक्रम: येन स । बहुव्रीहि समास । अनु + √स्मृ + क्त = अनुस्मृत । आखण्डलयति भेदयति पर्वतान् स आखण्डल: । आ + √खण्ड् + डलच् = आखण्डल् । √सू + नुक् = सूनु । वि + √क्रम + अच् = विक्रम । **नतानन:**—नतम् आननं यस्य स । बहुव्रीहि समास । **उरग:**—उरसा गच्छति अर्थ में उरस + √गम् + ड = उरग ।

अलङ्कार—उपमा ।

प्रस्तुत गद्य में उरग उपमान, दुर्योधन उपमेय, आखण्डलसूनु का स्मरण करना, सिर झुका लेना, व्यथित होना आदि साधारण धर्म और इव उपमा वाचक शब्द है । उपमा के चारों अङ्गों के उपस्थित रहने से यहाँ पूर्णोपमा है । सर्प और दुर्योधन के पक्षों में एक ही पद के अलग-अलग अर्थ होने से यहाँ श्लेष अलङ्कार भी है । अत: यह उपमा श्लेष से अनुप्राणित है ।

छन्द—वंशस्थ ।

विशेष कथन—१. प्रस्तुत श्लोक द्वारा किरात युधिष्ठिर को यह स्मरण दिलाना चाहता है कि दुर्योधन की समृद्धि और पराक्रम से आपको घबराने की आवश्यकता नहीं है । संसार का सर्वश्रेष्ठ योद्धा अर्जुन आपका छोटा भाई और सहायक है । उसके पराक्रम से आप दुर्योधन को अवश्य ही जीत लेंगे ।

२. पाण्डव देवपुत्र कहे जाते थे । वे विभिन्न देवताओं के आशीर्वाद से उत्पन्न हुये थे । युधिष्ठिर को धर्मपुत्र, भीम को वायुपुत्र, अर्जुन को इन्द्रपुत्र और नकुल तथा सहदेव को अश्विनीकुमारों का पुत्र कहा जाता था ।

३. भारतीय पौराणिक कथा साहित्य के अनुसार सर्पों की माता और

गरुड़ की माता विनता में परस्पर बैर-भाव के कारण सर्पों और गरुड़ में बैर भाव उत्पन्न हो गया था। भगवान् विष्णु का वाहन बनकर गरुड़ ने परम पराक्रम प्राप्त किया। सर्प उसके पराक्रम से सदा भयभीत रहते थे।

घण्टापथ टीका—कथेति। कथाप्रसंगेन गोष्ठीवचनेन जनैः। अन्यत्र कथा प्रसंगेन विषवैद्येन। 'कथाप्रसङ्गो वार्तायां विषवैद्येऽपि वाच्यवत्' इति विश्वः। एकवचनस्यातन्त्रत्वाज्जनविशेषणम्। उदाहृतादुच्चारितात्तवाभिधानान्नामधेया-स्मारकाद्धेतोः। 'हेतौ' इति पञ्चमी। 'आख्याह्वे अभिधानं च नामधेयं च नाम च' इत्यमरः। अन्यत्र तवाभिधानात्। 'नामैकदेशग्रहणे नाममात्रग्रहणम्' इति न्यायात्तश्च वश्च तवौ तार्क्ष्यवासुकी तयोरभिधानं यस्मिन्पदे तस्मात्। यद्वा कथाप्रसङ्गे इनाश्च ते जनाश्च इत्येकं पदम्। अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः स्मृतार्जुनपराक्रमः सुदुःसहादतिदुःसहान्मन्त्रपदान्मन्त्रशब्दात्स्मारकाद्धेतोः। आ-खण्डलः सूनुरिन्द्रानुजः। 'उपेन्द्रो विष्णुरिति यावत्'। 'सूनुः पुत्रेऽनुजे रवौ' इति विश्वः। तस्य विः पक्षी।। गरुड इत्यर्थः। तस्य क्रमः पादविक्षेपः। सोऽनुस्मृते येन स तथोक्तः, स्मृतगरुडमहिमा। उरग इव नतानतः सन्।। व्यथते दुःखायते। 'पीडा बाधा व्यथा दुःखम्' इत्यमरः। अत्युत्कटभयदोषादिविकारा दुर्वारा इति भावः। 'सर्वतो जयमन्विच्छेत्पुत्रादिच्छेत्पराजयम्' इति न्यायादर्जुनोत्कर्षकथनं युधिष्ठिरस्य भूषणमवेति सर्वमवदातम्॥२४॥

प्रकरण—दुर्योधन का समाचार सुनकर, उसकी समृद्धि, बल नीति आदि का वर्णन करके और यह बताकर कि दुर्योधन आपसे ही भय कर रहा है वनेचर बताता है कि वह आपके प्रति कपट का आचरण करना चाहता है, इस कारण आपको उसके प्रतिकार का उपाय करना चाहिये—

तदाशु कर्तुं त्वयि जिह्ममुद्यते
विधीयतां तत्र विधेयमुत्तरम्।
परप्रणीतानि वचांसि चिन्वतां
प्रवृत्तिसाराः खलु मादृशां गिरः॥ २५॥

Good

अन्वयः—तत् त्वयि जिह्मम् कर्तुम् उद्यते तत्र आशु विधेयम् उत्तरम् विधीयताम्। परप्रणीतानि वचांसि चिन्वताम् खलु मादृशाम् गिरः प्रवृत्ति-साराः॥२५॥

संस्कृत-व्याख्या—'तत्' तस्मात् दुर्योधनः धनबलसम्पन्नोऽपि त्वत्तः भाताऽस्ति तस्माद्धेतो त्वयि युधिष्ठिरस्य विषये 'जिह्मम्' कपटाचरणं 'कर्त्तु' विधातुं हन्तुमित्यर्थः 'उद्यते' तत्परे तत्र' तस्मिन् दुर्योधनस्य विषये 'आशु' शीघ्र 'विधेयं' कर्त्तु योग्यम् 'उत्तरं' प्रतीकारं 'विधीयतां' क्रियताम्। 'खलु' निश्चयेन 'परप्रणीतानि' परैः अन्यैः शत्रुभिरितिःभावः प्रणीतानि कथितानि 'वचांसि' 'कथनानि' 'चिन्वता' संगृह्णतां गवेषयतामित्यर्थः 'मादृशां' मद्विधानां गुप्तचराणां 'गिरः' वाणयः संदेशरूपाः कथिताः वाचः 'प्रवृत्तिसाराः' प्रवृत्तिः वृत्तान्तमात्रकथनम् सारः तत्त्वं यासां तथाभूताः सन्ति। अहं शत्रूणां रहस्यानां प्रयत्नानां च गवेषकः सन् वार्तामात्रमेव कथयितुं शक्नोमि, उपायस्तु भवदाधीनः एव इति भावः ॥२५॥

शब्दार्थ—तदाशु। **तत्**=इसलिये। **आशु**=शीघ्र। **कर्तुम्**=करने के लिये। जिह्ममुद्यते। **जिह्मम्**=कपट का आचरण। **उद्यते**=उद्यत हुये। **विधीयताम्**=कीजिये। विधेयमुत्तरम्। **विधेयम्**=करने योग्य। **उत्तरम्**=प्रयिकार। **परप्रणीतानि**=शत्रुओं द्वारा किये जाने वाले। **वचांसि**=वचनों का। **चिन्वतां**=खोज करने वाले। **प्रवृत्तिसाराः**=वृत्तान्तों का वर्णन करने वाले। **खलु**=निश्चय से। **मादृशाम्**=हम जैसे चरों की। **वचः**=वाणी।

हिन्दी अर्थ—**इसलिये आपके प्रति कपट का आचारण करने के लिये उद्यत हुये उस दुर्योधन के प्रति आप करने योग्य कोई प्रतिकार कीजिये। शत्रुओं द्वारा कहे गये वचनों का संग्रह करने वाले हम जैसे चरों की वाणियां तो केवल वृत्तान्तों का ही वर्णन कर सकती हैं।॥२५॥**

भाव—आपसे और अर्जुन के पराक्रम से भयभीत हुआ वह दुर्योधन गुप्त रूप से आप सबको मरवा देने के लिये उद्यत हो रहा हैं। अतः आपको शीघ्र ही इसका प्रतीकार करना चाहिये। परन्तु हम गुप्तचर तो शत्रुओं द्वारा किये जाने वाले प्रयोग को जानकर आपको बता ही सकते हैं। उनका प्रतिकार करना आपके ही अधिकार में है।

वाच्यपरिवर्तन—तत् त्वयि जिह्मम् कर्त्तुम् उद्यते आशु विधेयः उत्तरः विधेयः। खलु परप्रणीतानि वचांसि चिन्वतां मादृशां गीर्भिः प्रवृत्तिसाराभिः भूयते।

टिप्पणियाँ—**कर्तुम्**—√कृ+तुमुन्। **जिह्मम्**=√हा+मन=जिह्म।

उद्यते—उद् + √यम् + क्त = उद्यत । सप्तमी विभक्ति का एकवचन = उद्यते । **विधीयताम्** = वि उपसर्ग पूर्वक आत्मनेपदी √धा धातु लोट् लकार **प्रथम पुरुष** का एकवचन । तत्र = तद् शब्द सप्तमी विभक्ति के अर्थ में त्रल् प्रत्यय । तद् + त्रल् = तत्र । **विधेयम्** = वि + √धा + यत् = विधेय । **उत्तरम्**—उद् + √तृ + अप् = उत्तर । **परप्रणीतानि**—परैः प्रणीतानि । तृतीया तत्पुरुष **समास** । प्र + √नी + क्त = प्रणीत । **वचांसि**—नपुंसकलिङ्ग वचस् शब्द द्वितीया का बहुवचन । **चिन्वताम्**—√चि + शतृ = चिन्वत् । षष्ठी विभक्ति का बहुवचन = चिन्वताम् । **प्रवृत्तिसाराः**—प्रवृत्तिः एव सारः यासां ताः । **बहुब्रीहि समास** । प्र + √वृत् + क्तिन् = प्रवृत्ति । √सृ + घञ् = सार । **मादृशाम्**—अहम् इव दृश्यते अर्थ में अस्मद् + √दृश् + क्विप् = मादृश् । षष्ठी विभक्ति का बहुवचन = मादृशाम् ।

अलङ्कार—अर्थान्तरन्यास ।

आपको मैंने दुर्योधन की अभिसन्धि बता दी है, अब आपको इसका प्रतिकार करना चाहिये, इस विशेष का समर्थन दूत केवल समाचार लाकर दे सकते हैं, इस सामान्य से किया है । अतः सामान्य द्वारा विशेष का समर्थन किया जाने के कारण यहाँ **अर्थान्तरन्यास** अलङ्कार है ।

छन्द—वंशस्थ ।

विशेष कथन—गुप्तचर राजा की आँखें होते हैं । परन्तु वे केवल समाचार ही लाकर दे सकते हैं । उन समाचारों को जानकर राजा को शीघ्र ही कर्त्तव्य का निर्धारण कर लेना चाहिये । देरी करने से कार्य की हानि होती है ।

घण्टापथ टीका—तदिति । तत्तस्मात्त्वपि जिह्मम् कपटं कर्त्तुमुद्यते । त्वां जिघांसावित्यर्थः । तत्र तस्मिन्दुर्योधने विधेय कर्त्तव्यमुत्तरं प्रतिक्रियाऽऽशु विधीयतां क्रियताम् । ननु कर्त्तव्यमपि त्वयैवोच्यतामिति चेतत्राह—परेति । परप्रणीतानि परोक्तानि वचांसि चिन्वतां गवेषयतां मादृशाम् । वार्त्ताहारिणामित्यर्थः । गिरः प्रवृत्तिसारा वार्त्तामात्रसाराः खलु । 'वार्त्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्तः' इत्यमरः । वार्त्तामात्रवादिनो वयं न तु कर्त्तव्यार्थोपदेशसमर्थाः । अतस्त्वयैव निर्धार्यं कार्यमिति भावः । सामान्येन विशेषसमर्थनादर्थान्तरन्यासः ॥२५॥

प्रकरण—वनेचर ने दुर्योधन के क्रिया-कलापों और अभिसन्धियों को बताकर युधिष्ठिर से कहा कि आपको इसका शीघ्र प्रतिकार करना चाहिये। इन समाचारों को सुनाकर और पारितोषिक प्राप्त करके वह चला जाता है और युधिष्ठिर द्रौपदी के कक्ष में जाते हैं—

इतीरयित्वा गिरमात्तसत्क्रिये
गतेऽथ पत्यौ वनसन्निवासिनाम्।
प्रविश्य कृष्णासदनं महीभुजा
तदाचचक्षेऽनुजसंनिधौ वचः ॥२६॥

अन्वयः—इति गिरम् ईरयित्वा अथ आत्तसत्क्रिये वनसन्निवासिनाम् पत्यौ गते महीभुजा कृष्णासदनम् प्रविश्य तद् वचः अनुजसंन्निधौ आचचक्षे ॥२६॥

संस्कृत-व्याख्या—'इति' एवं प्रकारेण 'गिरं' वाणीं कुरुदेशस्य समाचारम् 'ईरयित्वा' 'कथयित्वा' 'अथ' तदनन्तरम् 'आत्तसत्क्रिये' आत्ता अधिगता सत्क्रिया सत्कारः पारितोषिकादिकं येन तस्मिन् 'वनसन्निवासिनां' वनेषु अरण्येषु सन्निषसन्ति सुष्ठु निवासं कुर्वन्ति इति तेषां वनेचराणामिति भावः 'पत्यौ' अधिपे 'गते' प्रस्थिते सति 'महीभुजा' राज्ञा युधिष्ठिरेण 'कृष्णासदनम्' कृष्णायाः द्रौपद्याः सदनम् गृहम् 'प्रविश्य' प्रवेशं कृत्वा तद् वनेचरेणोक्तं 'वचः' वाक्यम् 'अनुजसंन्निधौ' अनुजानां भीमार्जुननकुलसहदेवानाम् संन्निधौ समीपे सम्मुखमिति भावः 'आचचक्षे' आख्यातम् ॥२६॥

शब्दार्थ—इतीरयित्वा। इति = इस प्रकार। ईरयित्वा = कह कर। गिरमात्तसत्क्रिये। गिरम् = वाणी को। आत्तसत्क्रिये = सत्कार को प्राप्त करने वाले। गतेऽथ। गते = चले जाने पर। अथ = इसके बाद। पत्यौ = नायक के। वनसन्निवासिनाम् = वनेचरों के। प्रविश्य = प्रवेश करके। कृष्णासदनम् = द्रौपदी के घर में। महीभुजा = राजा युधिष्ठिर ने। तदाचचक्षेऽनुजसन्निधौ। तत् = वह। आचचक्षे = कहा। अनुजसन्निधौ = छोटे भाइयों के समक्ष। वचः = वाणी।

हिन्दी अर्थ—इस प्रकार से वाणी को कहकर, इसके बाद युधिष्ठिर से पारितोषिक आदि को प्राप्त करके उस वनेचर के, नायक के चले जाने पर

राजा युधिष्ठिर ने द्रौपदी के आवास में जाकर उसकी वाणी को भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव इन छोटे भाइयों के समक्ष कहा ॥२६॥

भाव—इस प्रकार उस वनेचर ने हस्तिनापुर में जाने गये सारे समाचारों को युधिष्ठिर को सुना दिया। युधिष्ठिर ने पारितोषिक आदि देकर उसका सत्कार किया। इसके बाद यह वनेचर वहाँ से चला गया। अब युधिष्ठिर द्रौपदी के पास गये, जहाँ उनके चारों छोटे भाई भी उपस्थित थे। उसका सारा वृत्तान्त उनके सामने ही सुनाया।

वाच्यपरिवर्तन—इति गिरम् ईरयित्वा अथ आत्तसत्क्रिये वनसन्निवासिनां पत्यौ गते महीभुक् कृष्णासदनम् प्रविश्य अनुजसन्निधौ तद् वचः आचचक्षे।

टिप्पणियाँ—ईरयित्वा—√ईर् + णिच् + क्त्वा। गिरम्—गिर्। द्वितीया विभक्ति का एकवचन = गिरम्। आत्तसत्क्रियः—आत्ता सत्क्रिया येन सः। बहुव्रीहि समास। आ + √दा + क्त = आत्त। सत् + √कृ + श + (रिङ् आदेश) + टाप् = सत्क्रिया। गते—√गम् + क्त = गत। सप्तमी विभक्ति का एकवचन = गते। पत्यौ—पाति रक्षति अर्थ में √पा + डति = पति। सप्तमी विभक्ति का एकवचन = पत्यौ। वनसन्निवासिनाम्—वने सन्निवसन्ति इति तेषाम् अर्थ में वन + सम् + नि + √वस् + णिनि = वनसन्निवासिन्। षष्ठी विभक्ति का बहुवचन = वनसन्निवासिनाम्। प्रविश्य—प्र + √विश् + क्त्वा (ल्यप्)। कृष्णासदनम्—कृष्णायाः सदनम् षष्ठी तत्पुरुष समास। कृष् + √नक् + अच् + टाप् = कृष्णा। √सद + ल्युट् (अन) = सदन। महीभुजा—महीं भुनक्ति अर्थ में मही + √भुज् + क्विप् = महीभुक् तृतीया विभक्ति का एकवचन = महीभुजा। आचचक्षे—आ + √चक्ष् धातु से आत्मनेपद कर्मकारक में लिट् लकार प्रथम पुरुष का एकवचन। अनुजसन्निधौ—अनुजानां सन्निधौ। षष्ठी तत्पुरुष समास। अनुजातः अर्थ में अनु + √जन् + ड = अनुज। सम् + नि + √धा + कि सन्निधि। वचः—√वच् + असुन् = वचः।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—राजा को चाहिये कि कार्य के पूरा कर लेने पर सेवकों को पारितोषिक आदि देकर उनका उचित सत्कार करे। इससे वे सन्तुष्ट होकर कार्यों को और भी अच्छी प्रकार से करने के लिए उत्साहित होंगे।

घण्टापथ टीका—इतीति । वनसंनिवासिनां पत्यौ वनेचराधिप इति गिर-मीरयित्वोक्त्वाऽऽत्तसत्क्रिये गृहीतपारितोषिके गते सति । 'तुष्टिदानमेव चाराणां हि वेतनम् । ते हि तल्लोभात् स्वामिकार्येष्वतीव त्वरयन्ते' इति नीतिवाक्यामृते । अथ महीभुजा राज्ञा कृष्णासदन द्रौपदीभवनं पविश्यानुजसन्निधौ तद्वचरोक्तं वचो वाच्यमाचचक्ष आख्यातम् । अथवा कृष्णेति पदच्छेदः । सदनं प्रविश्यानुजसन्निधौ तद्वचः कृष्णाऽऽचचक्ष आख्याता । चक्षिङो दुहादेर्द्विकर्मकत्वाद प्रधाने कर्मणि लिट् ।।२६।।

प्रकरण—गुप्तचर द्वारा बताये गये कुरुदेश के वृत्तान्त को युधिष्ठिर ने द्रौपदी के कक्ष में जाकर छोटे भाइयों के सामने सुनाया । उस वृत्तान्त को सुनकर द्रौपदी अपने रोष को न रोक सकी और क्रोध को उद्दीप्त करने वाले वाक्यों को कहने लगी—

निशम्य सिद्धिं द्विषतामपाकृती
स्ततस्ततस्त्या विनियन्तुमक्षमा ।
नृपस्य मन्युव्यवसायदीपिनी-
रुदाजहार द्रुपदात्मजा गिरः ।।२७।।

अन्वयः—ततः द्विषताम् सिद्धिम् निशम्य ततस्त्याः अपाकृतीः विनियन्तुम् अक्षमा द्रुपदात्मजा नृपस्य मन्युव्यवसायदीपिनीः गिरः उदाजहारः ।।२७।।

संस्कृत-व्याख्या—'ततः' तदनन्तरं 'द्विषतां शत्रूणां दुर्योधनादीनां 'सिद्धिं' सफलतां 'निशम्य' श्रुत्वा 'ततस्त्याः' तेभ्यः शत्रुभ्यः प्राप्ताः 'अपाकृती' अपकारान् 'विनियन्तुं' निरोद्धुम्' 'अक्षमा' असमर्था सती 'द्रुपदात्मजा' द्रुपदस्य नाम्नः राज्ञः पुत्री द्रौपदी 'नृपस्य' राज्ञः युधिष्ठिरस्य 'मन्युव्यवसायदीपिनीः' मन्योः कोपस्य व्यवसायस्य उद्योगस्य च दीपिनीः संवर्धिकाः 'गिरः' वाचः उदाजहार' जगाद ।।२७।।

शब्दार्थ—**निशम्य**=सुनकर । **द्विषताम्**=शत्रुओं की । **सिद्धिम्**=सफलता को । **अपाकृतीस्ततस्ततस्त्याः** । **अपाकृतिः**=अपकारों को । **ततः**=तदनन्तर । **ततस्त्याः**=उनसे प्राप्त हुये । विनियन्तुमक्षमा । **विनियन्तुम्**=रोकने में ।

अक्षमा=असमर्थ । **नृपस्य**=राजा के । मन्युव्यवसायदीपिनीरुदाजहार । **मन्युव्यवसायदीपिनीः**=क्रोध और उद्योग को उद्दीप्त करने वाली । **उदाजहार** =कहा । **द्रुपदात्मजा**=द्रुपद की पुत्री । गिरः=वाणियों को ।

हिन्दी अर्थ—इसके बाद दुर्योधन आदि शत्रुओं की सफलता के समाचार को सुनकर उनसे प्राप्त हुए अपकारों अर्थात् दुःखों को रोकने में असमर्थ होती हुई द्रुपद की पुत्री द्रौपदी ने राजा युधिष्ठिर के क्रोध और उद्योग को उद्दीप्त करने वाली वाणियों को कहा ॥२७॥

भाव—शत्रुओं की सफलता के समाचारों ने द्रौपदी के क्रोध की अग्नि को भड़का दिया । उनसे पाये गये अपकारों को और दुःखों को याद करके वह अपने को रोक नहीं सकी । शान्त स्वभाव के युधिष्ठिर के क्रोध को भड़काने के लिये और उनको उद्योगशील बनाने के लिये वह इस प्रकार से कहने लगी ।

वाच्यपरिवर्तन—ततः द्विषतां सिद्धिं निशम्य ततस्त्याः अपाकृतयः विनियन्तुम् अक्षमया द्रुपदात्मजया नृपस्य मन्युव्यवसायदीपिन्यः गिरः उदाहृताः ।

टिप्पणियाँ—निशम्य—नि + √शम् + क्त्वा (ल्यप्) । **सिद्धिम्**—√सिध् + क्तिन् । **द्विषताम्**—√द्विष् + शतृ = द्विषत् । षष्ठी विभक्ति का बहुवचन । **ततस्त्याः**—तस्मात् इस पञ्चमी विभक्ति के अर्थ में तद् + तसिल् = ततस् । तस्माद् आगताः इस अर्थ में 'अव्ययात्यप्' सूत्र से त्यप् प्रत्यय । ततस् + त्यप् + टाप् = ततस्त्या । द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में = ततस्त्याः । **विनियन्तुम्**—वि + नि + √यम् + तुमुन् । **अक्षमा**—न क्षमा अक्षता । नञ् तत्पुरुष समास । √क्षम् + अच + टाप् = क्षमा । **मन्युव्यवसायदीपिनीः**—मन्युश्च व्यवसायश्च मन्युव्यवसायौ । द्वन्द्व समास । मन्युव्यवसाययोः दीपिनीः मन्युव्यवसायदीपिनीः । षष्ठी तत्पुरुष समास । √दीप् + णिनि + ङीप् = दीपिनी । **उदाजहार**—उत् + √हृ धातु के लिट् लकार प्रथम पुरुष का एक वचन । **द्रुपदात्मजा**—द्रुपदस्य आत्मजा । षष्ठी तत्पुरुष समास । आत्मनि जाता अर्थ में आत्मन् + √जन् + ड + टाप् = आत्मजा ।

छन्द—वंशस्थ ।

विशेष कथन—दुर्योधन द्वारा किये जाने वाले अपमानों की व्यथाओं को सबसे अधिक द्रौपदी को ही सहन करना पड़ा था । वह एक प्रतापी राजा की पुत्री थी और प्रतापी पाण्डवों की पत्नी थी । उसको राज्यसभा में बुलाकर

दुर्योधन ने वस्त्रहीन करने का प्रयत्न किया था। द्यूत में छल से पाण्डवों के हारे जाने पर अब वह अपने पतियों के साथ वनों में दर-दर भटक रही थी। इसलिये उसका सबसे अधिक दुःखी और क्रोधित होना स्वाभाविक ही था।

घण्टापथ टीका—निशम्येति। अथ द्रुपदात्मजा द्रौपदी द्विषतां सिद्धिं वृद्धिरूपा निशम्य ततस्तदनन्तरम्। ततो द्विपद्भ्य आगतास्ततस्त्याः। 'अव्ययात्त्यप्' इति त्यप्। अपाकृतीर्विकारान्विनियन्तुं निरोद्धुमक्षमा सती नृपस्य युधिष्ठिरस्य मन्युव्यवसाययोः क्रोधोद्योगयोर्दीपिनीः संवर्धिनीर्गिरो वाक्यान्युदाजहार। जगादेत्यर्थः ॥२७॥

प्रकरण—दुर्योधन की सफलताओं के समाचारों को सुनकर द्रौपदी का क्रोध भड़क उठा। युधिष्ठिर के क्रोध को तथा उद्योग को उद्दीप्त करने के लिए उसने इस प्रकार के वाक्य कहे—

भवादृशेषु प्रमदाजनोदितं
भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम्।
तथाऽपि वक्तुं व्यवसाययन्ति मां
निरस्तनारीसमया: दुराधय: ॥२८॥

अन्वयः—भवादृशेषु प्रमदाजनोदितम् अनुशासनम् अधिक्षेप इव भवति। तथापि निरस्तनारीसमयाः दुराधयः माम् वक्तुम् व्यवसाययन्ति ॥२८॥

संस्कृत-व्याख्या—'भवादृशेषु भवान् इव दृश्यमानेषु भवद्विधेषु इत्यर्थः। 'प्रमदाजनोदितं' प्रमदाजनेन स्त्रीजनेन उदितं कथितम् 'अनुशासनम्' उपदेशः 'अधिक्षेप इव' तिरस्कार इव 'भवति' जायते। 'तथापि' मया एवं उपदेष्टुम् अनुचितत्वे अपि 'निरस्तनारीसमयाः' निरस्तः समापितः नारीणां स्त्रीणां समयः शालीनतारूपः सदाचारः यैः ते 'दुराधय' दुष्टाः मनोव्यथाः 'मां' द्रौपदी 'वक्तुं' कथयितुं 'व्यवसाययन्ति' उद्योगशालिनी कुर्वन्ति। प्रेरयन्ति इत्यर्थः ॥२८॥

शब्दार्थ—**भवादृशेषु**=आप जैसों के प्रति। **प्रमदाजनोदितम्**=स्त्रियों द्वारा कहा गया। भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम्। **भवति**=है। **अधिक्षेप इव**=तिरस्कार के समान। **अनुशासनम्**=उपदेश देना। **तथापि**=तो भी। **वक्तुम्**=कहने के

लिये । **व्यवसाययन्ति** =प्रेरित कर रही हैं । **माम्** =मुझको । **निरस्तनारीसमयाः** =स्त्रियों के शालीनता रूप सदाचार को समाप्त करने वाली । **दुराधयः** = दुष्ट व्यथायें ।

हिन्दी अर्थ—आप जैसे व्यक्तियों को मुझ जैसी स्त्रियों द्वारा उपदेश देना तिरस्कार के समान ही है । तो भी स्त्रियों की शालीनता रूप सदाचार को समाप्त करने वाली दुष्ट व्यथायें मुझको बोलने के लिये प्रेरित कर रही हैं ॥२८॥

भाव—यद्यपि आप जैसे महान् व्यक्तियों को मुझ जैसी तुच्छ स्त्री का उपदेश उचित नहीं है, तथापि मेरे मन में जो इतनी अधिक पीड़ा है, वही मुझे इस प्रकार बोलने के लिये बाध्य कर रही है ।

वाच्यपरिवर्तन—भवादृशेषु प्रमदाजनोदितेन अनुशासनेन अधिक्षेपेण इव भयते । तथापि निरस्तनारीसमयैः दुराधिभिः अहम् वक्तुं व्यवसायिता अस्मि ।

टिप्पणियाँ—भवादृशेषु—भवान् इव दृश्यमानेषु अर्थ में भवत् + दृश् + घञ् =भवद्दृश । सप्तमी विभक्ति का बहुवचन—भवादृशेषु । **प्रमदाजनोदितम्** =प्रमदाजनेन उदितम् । तृतीया तत्पुरुष समास । प्रमदा चासौ जनः प्रमदाजनः । कर्मधारय समास । प्रकृष्टं √मनः यस्याः सा अर्थ में प्र + √मद् + अच् + टाप् =प्रमदा । वद् + क्त =उदित । **अधिक्षेपः**—अधि + √क्षिप् + घञ् + अधि-क्षेप । **अनुशासनम्**—अनु + √ शास् + ल्युट् (अन) । **तथा**—तेन प्रकारेण अर्थ में प्रकारवचने थाल् सूत्र से थाल् प्रत्यय । तद् + थाल् =तथा । **वक्तुम्**—√वच् + तुमुन् । **व्यवसाययन्ति**—वि और अव उपसर्ग पूर्वक सो धातु प्रेरणा अर्थ में णिच् प्रत्यय होकर व्यवसाय लट् लकार प्रथम पुरुष का बहुवचन =व्यव-साययन्ति । अहम् वक्तुं व्यवसाययामि, अण्यन्तावस्था के अहम् इत कर्त्ता की दुराधयः वक्तुं व्यवसाययन्ति माम् इस ण्यन्तावस्था में कर्म संज्ञा हो जाती है । इसलिये माम् में द्वितीया विभक्ति हुई । **निरस्तनारीसमयाः**—नारीणां समयः नारीसमयः । षष्ठी तत्पुरुष समास । निरस्तः नारीसमय यैः ते निरस्तनारी-समयाः । बहुव्रीहि समास । निर् + √अस् + क्त =निरस्त । नुः नरस्य वा धर्म्या अर्थ में नृ अथवा नर शब्द से अञ् + ङीप् + नारी । **दुराधयः**—दुष्टाः आधयः अर्थ में दुर् + आ + √धा + कि =दुराधि । प्रथमा विभक्ति का बहु-वचन =दुराधयः ।

अलङ्कार—काव्यलिङ्ग ।

'निरस्तनारीसमयाः दुराधयः' दुष्ट मनोव्यथायें नारियों की शालीनता को समाप्त कर देती हैं, इन पदों के अर्थों को 'मां वक्तुं व्यवसाययन्ति' उपदेश देने के लिये प्रेरित कर रही हैं, इस वाक्य के हेतु के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसलिये यहाँ **काव्यलिङ्ग** अलङ्कार है।

अथवा 'समर्थनीयस्यार्थस्य काव्यलिङ्ग समर्थनम्' इस लक्षण के अनुसार द्रौपदी के अत्यधिक मनोव्यथाओं से युक्त होने के द्वारा उनके द्वारा उपदेश देने का समर्थन किया जाने से **काव्यलिङ्ग** अलङ्कार होता है।

छन्द—वंशस्थ ।

विशेष कथन—सामान्यतः स्त्रियों में शालीनता होती है और वे पति के प्रति धृष्टता का आचरण नहीं करतीं। परन्तु अत्यधिक पीड़ा पाने पर उनकी शीलनता समाप्त हो जाती है और वे पति का तिरस्कार करने के लिये उद्यत हो जाती हैं।

घण्टापथ टीका—भवादृशेष्विति। भवादृशो भवद्विधाः। पण्डिता इत्यर्थः। तेषु विषये। 'त्यदादिषु' इत्यादिना कञ्। 'आ सर्वनाम्नः' इत्याकारादेशः। प्रमदाजनोदितम् स्त्रीजनोक्तम्। वदेः क्तः। वचिस्वपि'—इत्यादिना सम्प्रसारणम्। अनुशासनं नियोगवचनमधिक्षेपस्तिरस्कार इव भवति। अतो न युक्तं वक्तुमित्यर्थः तथाऽपि वक्तुमनुचितत्वेऽपि निरस्तनारीसमयास्त्याजितशालीनता रूपस्त्रीसमाचाराः। 'समयः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः' इत्यमरः। दुराधयः समयोल्लङ्घनहेतुत्वाद् दुष्टा मनोव्यथाः। पुंस्याधिर्मानसी व्यथा इत्यमरः। मां वक्तुं व्यवसाययन्ति प्रेरयन्ति। न किंचिदयुक्तं दुःखिनामिति भावः ॥२८॥

प्रकरण—दुर्योधन की सफलता के समाचारों को सुनकर भड़की हुई द्रौपदी युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीप्त करने के लिये उसे उलाहना देती हुई कहती है कि इस प्रकार मैं तुमको उपदेश इसलिये दे रही हूँ, क्योंकि मुझ पर पड़ी हुई विपत्तियों ने मेरी शालीनता को समाप्त कर दिया है। वह कहती है कि इस पृथिवी के स्वामी तुम्हारे ही पूर्वज थे, जिसको तुमने अपने ही दोष से गंवा दिया।

अखण्डमाखण्डलतुल्यधामभि-
श्चिरं धृता भूपतिभिः स्ववंशजैः।

त्वयाऽऽत्महस्तेन मही मदच्युता
मतङ्गजेन स्रगिवापवर्जिता ॥२६॥

अन्वय:—आखण्डलतुल्यधामभि: स्ववंशजै: भूपतिभि: चिरम् अखण्डम् धृता मही त्वया मदच्युता मतङ्गजेन स्रग् इव आत्महस्तेन अपवर्जिता ॥२६॥

संस्कृत-व्याख्या—'आखण्डलतुल्यधामभि:' आखण्डलेन इन्द्रेण तुल्यं समानं धाम तेज: येषां तै: तेजसा इन्द्रतुल्यै: 'स्ववंशजै: स्वे वंशे कुले जातै: उत्पन्नै: पूर्वजै: भूपतिभि: महीपालै: 'चिरं' दीर्घकालपर्यन्तम् 'अखण्डम्' अविच्छिन्न 'धृता' अवलम्बिना 'मही' पृथिवी त्वया युधिष्ठिरेण 'मदच्युता' मद दानजलं च्योतयति स्रावयति इति तेन दानजलस्राविणा 'मतङ्गजेन' हस्तिना 'आत्महस्तेन' 'स्वशुण्डादण्डेन स्रग्' माला इव 'आत्महस्तेन' स्वकरेण स्वदोषेण इति भाव: 'अपवर्जिता' परित्यक्ता ॥२६॥

शब्दार्थ—अखण्डमाखण्डलतुल्यधामभिश्चिरम्' । **अखण्डम्**=अविच्छिन्न रूप से । **आखण्डलतुल्यधामभि:**=इन्द्र के समान तेजस्वी । **चिरम्**=चिरकाल तक । **धृता**=धारण की गई । **भूपतिभि:**=राजाओं द्वारा । **स्ववंशजै:**=अपने पूर्वज । त्वयाऽऽत्महस्तेन । **त्वया**=तुमने । **आत्महस्तेन**=अपने हाथों से । **मही**=पृथिवी । **मदच्युता**=मद को बहाने वाले । **मतङ्गजेन**=हाथी द्वारा । स्रगिवा-पर्वजिता । **स्रग् इव**=माला के समान । **अपवर्जिता**=छोड़ दी ।

हिन्दी अर्थ—इन्द्र के समान तेजस्वी अपने कुल में उत्पन्न पूर्वज राजाओं द्वारा चिरकाल तक अविच्छिन्न रूप से धारण की गई पृथिवी को आपने अपने हाथ से इसी प्रकार त्याग दिया, जिस प्रकार मदजल को बहाने वाला हाथी अपनी सूंड से माला को छोड़ देता है ॥२६॥

भाव—इस पृथिवी के स्वामी आपके पूर्वज ही थे । चिरकाल तक अविच्छिन्न रूप से वे इसका शासन करते रहे । इसलिये धर्म के अनुसार आप ही इस राज्य के स्वामी थे । परन्तु आपके राज्य के छिन जाने का कारण शत्रुओं का बलशाली होना नहीं था । आपने अपनी ही भीरुता और आलस्य से इस राज्य का परित्याग कर दिया है । यदि आप उद्योगशील और वीर होते तो आपकी यह दशा कभी नहीं होती ।

वाच्यपरिवर्तन—आखण्डलतुल्यधामानः स्ववंशजाः भूपतयः चिरम् अखण्डं मही धृतवन्तः। त्वं मदच्युत् मतङ्गजः स्रजम् इव आत्महस्तेन अपवर्जितवान्।

टिप्पणियाँ—**अखण्डम्**—न अस्ति खण्डः यस्मिन् तत् अखण्डम्। क्रिया-विशेषण है। **आखण्डलतुल्यधामभिः**—आखण्डलेन तुल्यं धाम येषां तैः। बहुव्रीहि समास। आ√खण्ड + डलच् = आखण्डल। तुलया सम्मितं अर्थ में तुला + यत् = तुल्य। दधाति अर्थ में √धा + मनिन् = धामन्। **भूपतिभिः**—भुवः पतिः भूपतिः। षष्ठी तत्पुरुष समास। तृतीया विभक्ति का एकवचन = भूपतिभिः। **स्ववंशजैः**—स्वस्य वंशः स्ववंशः। षष्ठी तत्पुरुष समास। स्ववंशे जातः स्ववंशजः। सप्तमी तत्पुरुष समास। स्ववंश √जन् + ड = स्ववंशज। तृतीया विभक्ति का बहुवचन = स्ववंशजैः। **त्वया**—युष्मद् शब्द तृतीया विभक्ति का एकवचन। कर्तृ कारक में तृतीया विभक्ति हुई। **आत्महस्तेन**—आत्मनः हस्तेन। षष्ठी तत्पुरुष समास। कारणकारक में तृतीया विभक्ति हुई। **मही**—मह् + अच् + ङीप्। **मदच्युत्**—मदं च्यावयति अर्थ में मद √च्यु + क्विप् = मदच्युत। तृतीया का एकवचन = मदच्युता। **मतङ्गजेन**—मतङ्गे जातः अर्थ में मतङ्ग √जन + ड = मतङ्गज। तृतीया विभक्ति का एकवचन = मतङ्गजेन। **स्रक्**—√सृज् + क्विन् = स्रक्। **अपवर्जिता**—अप √वृज + णिच् + टाप्।

अलङ्कार—उपमा। इस पद में दो उपमायें हैं।

१. इन्द्र के समान तेजस्वी राजाओं ने, यहाँ आखण्डल उपमान, भूपति उपमेय तेजस्वी होना साधारण धर्म और तुल्य उपमा वाचक शब्द हैं। यह **पूर्णोपमा** है।

२. जिस प्रकार हाथी अपने सूंड से अपनी माला को छोड़ देता है, उसी प्रकार आपने हाथ से पृथ्वी का परित्याग कर दिया है। इस वाक्य में मतङ्गज उपमान और युधिष्ठिर उपमेय, सूंड उपमान और हाथ उपमेय, माला उपमान और पृथिवी उपमेय है। छोड़ देना साधारण धर्म है और इव उपमा वाचक शब्द है। इस प्रकार उपमा के चारों अङ्गों के होने से यह पूर्णोपमा है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—प्रायः मनुष्य अपने ही दोषों के कारण दुःख पाते हैं।

घण्टापथ टीका—अखण्डमिति। आखण्डलतुल्यधामभिरिन्द्रतुल्यप्रभावैः।

वंशजैर्भूपतिभिर्भरतादिभिश्चिरमखण्डमविच्छिन्नं धृता मही त्वया। मदं योतयतीति मदच्युत्। क्विप्। तेन मदस्राविणा मतङ्गजेन गगिवात्महस्तेन करेण स्वचापलेनेत्यर्थ:। अपवर्जिता परिहृता त्यक्ता। स्वदोषादेवायमनर्थागम त्यर्थः ॥२९॥

प्रकरण—दुर्योधन की सफलता के समाचारों को सुनकर क्रोधित हुई पदी युधिष्ठिर से कह रही है कि आपने अपने ही दोष से धर्म से प्राप्त राज्य परित्याग किया है। अब वह कहती है कि कुटिल व्यक्तियों के प्रति कूट-ीति का प्रयोग ही उचित होता है—

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं
भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधा-
नसंवृताङ्गान्निशिता इवेषवः ॥३०॥

अन्वयः—ये मायाविषु मायिनः न भवन्ति मूढधियः ते पराभवं व्रजन्ति हि ठाः निशिताः इषवः इव तथाविधान् असंवृताङ्गान प्रविश्य घ्नन्ति ॥३०॥

संस्कृत-व्याख्या—ये जनाः 'मायाविषु' कपटाचरणेषु 'मायिनः' कपटा-रणाः 'न भवन्ति न सम्पद्यन्ते', कुटिलेषु कूटनीति न आश्रयन्ति इत्यर्थः ूढधियः मूढा मन्दा धीः बुद्धिः येषां ते मन्दबुद्धयः 'पराभवं' पराजयं 'व्रजन्ति च्छन्ति पराजिताः भवन्ति इत्यर्थः। 'हि' निश्चयेन 'शठाः' धूर्ताः 'निशिताः' ीक्ष्णाः 'इषवः' शराः इव 'तथाविधान् तादृशान् सरलस्वभावान् असंवृताङ्गान् संवृतानि अनाच्छादितानि अङ्गानि शरीरावयवानि येषां तान् अथवा असंवृतानि रक्षितानि अङ्गानि सप्तराज्याङ्गानि-राजा मन्त्री-राज्य-सेनादुर्ग-कोष-मित्रेति प्त राज्याङ्गानि येषां तान् प्रविश्य प्रवेशं कृत्वा घ्नन्ति, विनाशयन्ति। यथा टिलाः इषवः अनाच्छादिताङ्गान् जनान् प्रविश्य घ्नन्ति तथैव कुटिलाः जनाः रलहृदयान् अरक्षिताङ्गान् राजानः प्रविश्य घ्नन्ति ॥३०॥

शब्दार्थ—व्रजन्ति = प्राप्त होते हैं। ते = वे। मूढ़धियः = मन्द बुद्धि वाले। राभवम् = पराजय को। भवन्ति = होते हैं। मायाविषु = कपट करने वालों

के प्रति । ये = जो । मायिनः = कपट का आचरण करने वाले । प्रविश्य = प्रवेश करके । हि = निश्चय से । घ्नन्ति = विनाश करते हैं । शठास्तथाविधानसंवृताङ्गान्निशिताः । शठाः = धूर्त । तथाविधान् = उस प्रकार के । असंवृताङ्गान = राज्याङ्गों की रक्षा न करने वाले, शरीर के अङ्गों को न ढकने वाले । निशिताः = तीक्ष्ण । इवेषवः । इषवः इव = बाणों के समान ।

हिन्दी अर्थ—जो कपट करने वाले व्यक्तियों के प्रति कपट का आचरण करते नहीं वे मन्द बुद्धि वाले मनुष्य पराजय को प्राप्त होते हैं । निश्चय ही धूर्त मनुष्य उस प्रकार के सरल हृदय वाले और अपने राज्याङ्गों की रक्षा न करते हुये राजाओं में घुसकर उनका उसी प्रकार विनाश करते हैं जिस प्रकार तीक्ष्ण बाण कवच आदि से न ढके हुये अङ्गों में घुस कर उनका विनाश कर देते हैं ॥३०॥

भाव—कपट का आचरण करने वाले व्यक्तियों के प्रति कपट का आचरण करना उचित होता है । कपटी व्यक्तियों के प्रति इस प्रकार का व्यवहार न करने से निश्चित रूप से पराजय मिलती है । दुर्योधन ने कपट का व्यवहार करके आपका सारा राज्य छीन लिया है । आप कूटनीति का प्रयोग करके ही बदला ले सकते हैं ।

वाच्यपरिवर्तन—यैः मायाविषु मायिभिः न भूयते तैः मूढधीभिः पराभवः व्रज्यते । हि शठैः निशितैः इशुभिः इव न तथाविधाः असंवृताङ्गाः प्रविश्य हन्यन्ते ।

टिप्पणियाँ—**मूढधियः**—मूढा धीः येषां ते । बहुव्रीहि समास √मुह् + क्त = मूढ । **पराभवम्**—परा √भू + अत् । **मायाविषु**—माया अस्य अस्ति अर्थ में माया शब्द से 'अस्मायामेधास्रजो विनिः' सूत्र से विनि प्रत्यय माया + विनि = मायाविन् । सप्तमी विभक्ति का बहुवचन = मायाविषु । **मायिनः**—मायिन् शब्द का प्रथमा विभक्ति का बहुवचन = मायिनः । **प्रविश्य**—प्र √विश् + क्त्वा (ल्यप्) **घ्नन्ति** √हन् धातु लट् लकार, प्रथम पुरुष का एकवचन । **असंवृताङ्गान्**—असंवृत्तानि अङ्गानि येषां ते । बहुव्रीहि समास । सम् √वृ + क्त = संवृत्त = असंवृत । नञ् तत्पुरुष समास । **निशिताः**—नि √शो + क्त = निशित । **इषवः** √इष + उ = इषु । प्रथमा विभक्ति का बहुवचन = इषवः ।

अलङ्कार—उपमा और काव्यलिङ्ग ।

धूर्त मनुष्य तीक्ष्ण वाणों के समान अरक्षित अङ्ग वालों में प्रवेश करके उनका विनाश कर देते हैं। इस वाक्य में धूर्त मनुष्य और राजा में अरक्षित अङ्ग उपमेय, इषु और शरीर के अरक्षित अंग उपमान, प्रवेश करके विनाश करना साधारण धर्म तथा इव उपमा वाचक शब्द हैं। इस प्रकार उपमा के चारों अङ्गों के होने से **पूर्णोपमा** है।

द्रौपदी कहती हैं कि जो मनुष्य कपट का आचरण करने वालों के प्रति कपट का आचरण नहीं करते, वे पराजित होते हैं। इनका समर्थन करने के लिये वह कहती है कि धूर्त मनुष्य सरल हृदय वाले का विनाश कर देते हैं। इस प्रकार पदों के अर्थ से समर्थनीय वस्तु का समर्थन करने के कारण यहाँ **काव्यलिङ्ग** अलङ्कार है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—राजाओं के लिये सरल प्रकृति का होना उचित नही है। कूटनीति का आश्रय लेकर ही राजा अपनी और राज्य की रक्षा कर सकते हैं। कम से कम जो कपटी व्यक्ति है उसकी कूटनीति का प्रतिकार तो कूटनीति से ही किया जा सकता है। जो राजा सरल हृदय होते हैं और अपने राज्य के अङ्गों की उचित प्रकार से रक्षा नहीं कर सकते, वे निश्चित ही धूर्तों द्वारा विनाश को प्रप्त होते हैं।

घण्टापथ टीका—व्रजन्तीति। मूढधियो निर्विवेकबुद्धयस्ते पराभवं व्रजन्ति, ये मायाविषु मायावत्सु विषये। अस्मायामेधा—इत्यादिना विनिप्रत्ययः। मायिनो मायावन्तः। व्रीह्यादित्वादिनिप्रत्ययः। न भवन्ति। अत्रैवार्थान्तिरं न्यस्यति-प्रविश्येति। शठा अपकारिणो धूर्तास्तथाविधानकुटिलासंवृताङ्गानवर्मित-शरीरान्निशिता इषव इव प्रविश्य प्रवेशं कृत्वाऽऽत्मीया भूत्वा घ्नन्ति हि। आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिरिति भावः ॥३०॥

प्रकरण—दुर्योधन की सफलता के समाचारों से क्षुब्ध द्रौपदी युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीप्त करने का प्रयत्न कर रही है। वह कहती है कि दुर्योधन ने कपट का आश्रय लेकर आपका राज्य छीना है। आप भी कपट का प्रयोग करके अपना राज्य वापस लेने का उद्योग कीजिये। युधिष्ठिर के उत्तम साधनों का उल्लेख करते हुये वह पुनः उलाहना देती है—

गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः
कुलाभिमानी कुलजां नराधिपः ।
परैस्त्वदन्यः क इवापहारये-
न्मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम् ।।३१।।

अन्वयः—अनुरक्तसाधनः कुलाभिमानी त्वदन्यः कः इव नराधिपः गुणानुरक्ताम् कुलजाम् मनोरमाम् श्रियम् आत्मवधूम् इव परैः अपहारयेत् ।।३१।।

संस्कृत-व्याख्या—'अनुरक्तसाधनः' अनुरक्तानि स्नेहयुक्तानि अनुकूलानित्यर्थः साधनानि सैन्यादयः सहायताः यस्य तादृशः कुलाभिमानी कुलस्य श्रेष्ठक्षत्रियवंशस्य अभिमानः गर्वः यस्य तादृशैः वंशाभिमानी त्वदन्यः त्वत्तः भवतः युधिष्ठिरादन्यः अपरः भवद्व्यतिरिक्तः 'कः इव' को वा 'नराधिपः नराणां जनानाम् अधिपः स्वामी राजा 'गुणानुरक्तां' गुणेषु राज्ञः शौर्यदयादाक्षिण्यादिषु गुणेषु अथवा सन्धिविग्रहादिषड्गुणप्रयोगेषु अनुरागिणीं कुलजां कुले स्ववंशे जाता कुलपरम्पराप्राप्तां 'मनोरमां' मनः चित्तं रमयति आनन्दयति इति तां हृदयानन्दकारिणीं श्रियम्' राजलक्ष्मीम् 'आत्मवधूम् इव' आत्मनः' स्वस्य वधूम् भार्याम् इव—भार्या पक्षे—गुणानुरक्तां गुणेषु सौन्दर्यादिगुणेषु अनुरक्तां कुलजां श्रेष्ठकुले जातां 'मनोरमा' हृदयानन्दकारिणीम्—परैः' अन्यैः शत्रुभिः अपहारयेद्' अपहरणं कारयेत् । स्वयमेव तेभ्यः समर्पयेत् । कश्चिदपि स्वाभिमानी क्षत्रियो राजा स्वभार्याया अपहरणमिव स्वराजलक्ष्म्या अपहरणम् अपि न सहते इति भावः ।।३१।।

शब्दार्थ—गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः । **गुणानुरक्ताम्**=गुणों के कारण अनुराग करने वाली । **अनुरक्तसाधनः**=अनुराग रखने वाले सहायकों से युक्त। **कुलाभिमानी**=कुल के प्रति अनुराग रखने वाला । **कुलजाम्**=कुलीन । **नराधिपः**=राजा । परैस्त्वदन्यः । **परैः**=शत्रुओं द्वारा । **त्वत् इव**=तुम्हारे समान । **अन्यः**=दूसरा । **कः**=कौन । अपहारयेन्मनोरमामात्मवधूरिव । **अपहारयेत्**=अपहरण कर सकता है । **मनोरमाम्**=सुन्दर । **आत्मवधू**=अपनी पत्नी को । **इव**=समान । **श्रियम्**=राजलक्ष्मी को ।

हिन्दी अर्थ—अपने से अनुराग रखने वाले सैन्य आदि सहायकों से युक्त अपने उत्तम क्षत्रिय कुल के प्रति अभिमान रखने वाला तुम्हारे अतिरिक्त अन्य

कौन राजा गुणों के कारण अनुराग रखने वाली परम्परा से प्राप्त हुई और मन को आनन्दित करने वाली राजलक्ष्मी को गुणों के कारण प्रेम करने वाली, कुलीन और सुन्दर अपनी पत्नी के समान शत्रुओं द्वारा अपहरण करा सकता है ?॥३१॥

भाव—द्रौपदी युधिष्ठिर को उलाहना दे रही है कि आपकी सेना आदि सहायक आपके प्रति अनुराग रखने वाले थे, आप उत्तम कुल में उत्पन्न हुये थे, आपके शौर्य आदि गुणों के कारण राजलक्ष्मी आप में स्थिर थी। वह वंश-परम्परा से आपको प्राप्त हुई थी और उससे आपका मन प्रसन्न रहता था। आप कैसे क्षत्रिय हैं जो आपने स्वयं ही अपनी राजलक्ष्मी को शत्रुओं को सौंप दिया। आपका यह आचरण ऐसा ही है जैसे कोई व्यक्ति स्नेह करने वाली, सुन्दर और कुलीन पत्नी का स्वयं ही अपने शत्रुओं द्वारा अपहरण करा दे।

इस कथन द्वारा द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है कि आपने मुझको जुये में हार कर स्वयं ही दुर्योधन को सौंप दिया था आपके क्षत्रियत्व को धिक्कार है।

वाच्यपरिवर्तन—अनुरक्तसाधनेन कुलाभिमानिना त्वदन्येन केन इव नराधिपेन गुणानुरक्ता कुलजा मनोरमा श्री आत्मवधूः इव परैः अपहार्यते।

टिप्पणियाँ—गुणानुरक्ताम् = गुणेषु अनुरक्ताम्। सप्तमी तत्पुरुष समास। अनु + √रञ्ज् + क्त + टाप्—अनुरक्ता। अनुरक्तसाधन—अनुरक्तानि साधनानि यस्य सः। बहुव्रीहि समास। √साध् + ल्युट् (अन) = साधन। कुलाभिमानी—कुलस्य अभिमानी। षष्ठी तत्पुरुष समास। अथवा कुलस्य अभिमानः यस्य सः बहुव्रीहि समास। अभि + √मन् + घञ् = अभिमान। कुलजाम्—कुले जाताम् सप्तमी तत्पुरुष समास। कुल + √जन् + ड + टाप् = कुलजा। नराधिपः—नराणाम् अधिपः। षष्ठी तत्पुरुष समास। अधि पति रक्षति अर्थ में अधि + √पा + क = अधिप। त्वदन्यः—त्वत्तः अन्यः। पञ्चमी तत्पुरुष समास। अपहारयेत्—अप + √हृ + णिच् = अपहारय्। विधिलिङ् के प्रथम पुरुष के एकवचन में अपहारयेत्। मनोरमाम्—मनः रमयति अर्थ में मनः + √रम् + टाप् = मनोरमा। आत्मवधूम्—आत्मनः वधूम् षष्ठी तत्पुरुष समास।

अलङ्कार—उपमा।

छन्द—वंशस्थ।

कौन व्यक्ति लक्ष्मी का अपनी वधू के समान् अपहरण करा सकता है। इस वाक्य में लक्ष्मी उपमेय, वधू उपमान, अपहरण करा देना साधारण धर्म और इव उपमा वाचक शब्द हैं। उपमा के चारों अङ्गों के होने से यहाँ **पूर्णोपमा** है।

विशेष कथन—इस श्लोक द्वारा कवि यह व्यक्त करना चाहते है कि अनुकूल साधनों से युक्त होता हुआ भी उच्च कुल में उत्पन्न हुआ भी, दया दाक्षिण्य आदि गुणों से युक्त हुआ भी, सन्धि आदि छः गुणों का प्रयोग करता हुआ भी राजा यदि कायर है और कूटनीति का प्रयोग नहीं करता, तो उसकी कुल-परम्परागत राजलक्ष्मी का भी शत्रु अपहरण कर लेते हैं।

घण्टापथ टीका—गुणेति। अनुरक्तसाधनोऽनुकूलसहायवान्। उक्तं च कामन्दकीये '**उद्योगादनिवृत्तस्य ससहायस्य** धीमतः। छायेवानुगता तस्य नित्यं श्रीः 'सहचारिणी' इति। **कुलाभिमानी** क्षत्रियत्वाभिमानी कुलीनत्वाभिमानी च त्वदन्यस्त्वत्तोऽन्यः। 'अन्यारात्'—इत्यादिना पञ्चमी। क इव नराधिपो गुणैः सन्ध्यादिभिः सौन्दर्यादिभिश्चानुरागिणीं कुलजां कुलक्रमादागतां कुलीनां च मनोरमां श्रियमात्मवधूमिव स्वभार्यामिव 'वधूर्जाया स्नुषा स्त्री च' इत्यमरः। परैः शत्रुभिरन्यैश्चापहारयेत्। स्वयमेवापहारं कारयेदित्यर्थः। कलत्रापहार-वल्लक्ष्म्यपहारोऽपि राज्ञा मानहानिकरत्वादपेक्षणीय इति भावः ॥३१॥

प्रकरण—दुर्योधन द्वारा किये गये अपमानों से व्यथित चित्त वाली द्रौपदी उसकी सफलता से समाचारों से क्षुब्ध होकर युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीप्त करने के लिये पुनः कहती है—

भवन्तमेतर्हि मनस्विगर्हिते
विवर्त्तमानं नरदेव ! वर्त्मनि।
कथं न मन्युर्ज्वलयत्युदीरितः
शमीतरुं शुष्कमिवाग्निरुच्छिखः ॥३२॥

अन्वयः—नरदेव ! एतर्हि मनस्विगर्हिते वर्त्मनि विवर्त्तमानम् भवन्तम् उदीरितः मन्युः शुष्कम् शमीतरुम् उच्छिख अग्निः इव कथम् न ज्वलयति ॥३२॥

संस्कृत-व्याख्या—'हे नरदेव !, नरेषु मनुष्येषु देव नरदेव 'एतर्हि' इदानीम्

अस्मिन् दुरवस्थायामपि 'मनस्विगर्हिते' मनस्विभि: स्वाभिमानिभि: गर्हिते निन्दनीये 'वर्त्मनि' मार्गे 'विवर्त्तमान' सन्तिष्ठमानं शत्रुभि: कृतां दुरवस्थाम् अनुभवमानं 'भवन्तं' त्वाम् 'उदीरित:' उद्दीप्त: 'मन्यु:' क्रोध: 'शुष्क' नीरसं 'शमीतरुम्' शमीवृक्षम् 'उच्छिख:' उद्गता: उद्दीप्ता: शिखा ज्वाला: यस्य तादृश: 'अग्नि:' अनल: इव 'कथं' केन कारणेन न 'ज्वलयति' उद्दीपयति ॥२३॥

शब्दार्थ—भवन्तमेतर्हि ! **भवन्तम्**=आपको । **एतर्हि**=अब । **मनस्विगर्हिते**=स्वाभिमानियों द्वारा निन्दनीय । **विवर्तमानम्**=बिलबिलाते हुये । **नरदेव**=मनुष्यों में देवता । **वर्त्मनि**=मार्ग में । **कथम्**=किस प्रकार । मन्युर्ज्वलयत्युदीरित: । **मन्यु:**=क्रोध । **ज्वलयति**=जला देता है । **उदीरित**=उद्दीप्त हुआ । **शमीतरुम्**=शमी वृक्ष को । शुष्कमिदाग्निरुच्छिख । **शुष्कम्**=सूखा । **अग्नि: इव**=अग्नि के समान । **उच्छिख:**=उद्दीप्त ज्वालाओं वाला ।

हिन्दी अर्थ—हे मनुष्यों में देवता ! इस समय स्वाभिमानी व्यक्तियों द्वारा निन्दनीय मार्ग में बिलबिलाते हुए आपको उद्दीप्त हुआ क्रोध उसी प्रकार क्यों नहीं जला देता जिस प्रकार सूखे शमी के वृक्ष को उद्दीप्त ज्वालाओं वाली अग्नि जला देती है ॥३२॥

भाव—द्रौपदी युधिष्ठिर को उलाहना दे रही है कि आपका क्या कहना है आप तो मनुष्यों में देवता हैं । आप शत्रुओं द्वारा उत्पन्न की गई इस दुर्दशा में पड़े हुए, जिसको स्वाभिमानी मनुष्य कभी सहन नहीं कर सकते. बिलबिला रहे हैं । इस दुर्दशा को अनुभव करते हुए किसी स्वाभिमानी का हृदय क्रोध से जल नहीं जावेगा ? अब तो आपको अपने मन में क्रोध और उत्साह को भर कर अपनी विपत्तियों का प्रतिकार करने के लिये उद्यत हो जाना चाहिये ।

वाच्यपरिवर्तन —नरदेव ? एतर्हि मनस्विगर्हिते वर्त्मनि विवर्त्तमानो भवान् उदीरितेन मन्युना शुष्क: शमीतरु: उच्छिखेन अग्निना इव कथ न ज्वलयते ।

टिप्पणियाँ —एतर्हि—अस्मिन् काले अर्थ में इदम् शब्द से 'इदमोर्हिल' सूत्र से र्हिल् प्रत्यय होकर इदम् + र्हिल = एतर्हि । यहाँ इदम् शब्द को एत आदेश होता है । भवन्तम्—√भा + डवतु = भवत् । द्वितीया विभक्ति का एकवचन = भवन्तम् । मनस्विगर्हिते—मनस्विभि: गर्हिते । तृतीया तत्पुरुष समास । प्रशस्तं मन: यस्य अर्थ में मनस् शब्द में 'अस्मायामेधास्रजो विनि:' सूत्र से विनि प्रत्यय होकर मनस् + विनि - मनस्विन् । √गर्ह + क्त = गर्हित । विवर्त्तमानम्—वि

+ √वृत् + शानच् = विवर्त्तमान । नरदेव = नरेषु देवः । सप्तमी तत्पुरुष समास । वर्त्मनि—√वृत् + मनिन् = वर्त्मन् । सप्तमी विभक्ति का एकवचन = वर्त्मनि । मन्युः—√मन् + युच् । उदीरितः—उद् + ईर् + णिच् + क्त । शमीतरुम्—शमी चासौ तरुश्च । कर्मधारय समास । शुष्कम्—√शुष् + क्त ('शुषः कः' सूत्र से क्त को क आदेश) = शुष्कः । अग्नि—√अङ्ग + नि = अग्नि । उच्छिखः = उद्गताः शिखाः यस्य स । बहुव्रीहि समास ।

अलङ्कार—उपमा ।

जिस प्रकार अग्नि सूखे वृक्ष को जला देती है, उसी प्रकार क्रोध आप जैसे वीररस विहीन को क्यों नहीं जला देता । यहाँ अग्नि और शुष्क वृक्ष उपमान, क्रोध और युधिष्ठिर उपमेय, जला देना साधारण धर्म और इव उपमा वाचक शब्द हैं । उपमा के चारों अङ्गों के होने से यहाँ पूर्णोपमा है ।

छन्द—वंशस्थ ।

विशेष कथन—मनस्वी मनुष्य शत्रुओं द्वारा किये गये अपमान को कभी सहन नहीं करते ।

घण्टापथ टीका—भवन्तमिति । नरदेव ! हे नरेन्द्र ! एतर्हीदानीम्, अस्मिन्नापत्कालेऽपीत्यर्थः एतर्हि सम्प्रतीदानीमधुना साम्प्रतं तथा' इत्यमरः। 'इदमोर्हिल्' इति हिल् प्रत्ययः । 'एतेतौ रथोः' इति इत्यतादेशोः । आपदमेवाह-मनस्विगर्हिते शूरजनजुगुप्सिते वर्त्मनि मार्गे विवर्त्तमानं, शत्रुकृतां दुर्दशामनुभवन्त-मित्यर्थः । भवन्तं त्वामुदीरित उद्दीपितो मन्युः क्रोधः । शुष्कं नीरसम् 'शुषः कः' इति निष्ठातकारस्य ककारः । शमी चासौ तरुश्चेति विशेषणसमासः तम् । शमी-ग्रहणं शीघ्रज्वलनस्वभावात्कृतम् । उच्छिख उद्गतज्वालः 'घृणिज्वाले अपि शिखे' इत्यमरः । वह्निरिव । कथं न ज्वलयति । ज्वलयितुमुचितमित्यर्थः । 'मितां ह्रस्वः' ॥३२॥

प्रकरण—दुर्योधन की सफलता के समाचारों को सुनकर उसके द्वारा की गई अपनी दुर्दशा का स्मरण करके द्रौपदी अत्यधिक क्रोधित हो जाती है और युधिष्ठिर के क्रोध को भड़काने का प्रयत्न करती है । वह कहती है कि आपको क्रोध करके शत्रुओं के विनाश का उद्योग करना चाहिये । जो क्रोध नहीं करता उसका कहीं भी आदर नहीं होता—

अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां
भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः ।
अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना
न जातहार्देन न विद्विषादरः ॥३३॥

अन्वयः—अवन्ध्यकोपस्य आपदाम् विहन्तुः (जनस्य) देहिनः स्वयम् एव वश्याः भवन्ति । जन्तुना अमर्षशून्येन जनस्य न जातहार्देन न विद्विषा आदरः ॥३३॥

संस्कृत-व्याख्या—'अवन्ध्यकोपस्य' अवन्ध्यः अनिष्फलः कोपः क्रोधः यस्य तस्य सफलकोपस्य इति भावः; 'आपदाम्' आपत्तीनां शत्रूणामित्यर्थः 'विहन्तुः' विशेषेण नाशकस्य शत्रुनिग्रहक्षमस्य जनस्य 'देहिनः' प्राणिनः स्वयम् एव' स्वतः एव 'वश्याः' आधीनाः 'भवन्ति' जायन्ते । 'जन्तुना' जनेन 'अमर्षशून्येन' अमर्षात् क्रोधात् शून्येन रहितेन विप्रकृतेन अपि क्रोधं न कुर्वता तेन हेतुना 'जनस्य' देहिनः न 'जातहार्देन' जातं सम्भूतं हार्दं स्नेहः यस्य तेन मित्रेण इत्यर्थः न 'विद्विषां' शत्रूणा 'आदरः' सम्मानं भवति अथवा शत्रुणा दरः भयं न भवति अमर्षशून्यं जनं न मित्राणि गणयन्ति न शत्रवः । मित्राणि तस्य आदरं न कुर्वन्ति शत्रवः च तस्मात् भयं न कुर्वन्ति । अतः अस्मिन् विषये त्वया कोपः कर्त्तव्य एव ॥३३॥

शब्दार्थ—**अवन्ध्यकोपस्य**=सफल क्रोध करने वाले । विहन्तुरापदाम् । **विहन्तुः**=विनाश करने वाले । **आपदाम्**=आपत्तियों का । **भवन्ति**=हो जाते हैं । **वश्याः**=आधीन स्वयमेव । **स्वयम् एव**=अपने आप ही । **देहिनः**=प्राणी । **अमर्षशून्येन**=क्रोध से रहित । **जनस्य**=मनुष्य का । **जन्तुना**=प्राणी द्वारा । **जातहार्देन**=मित्र के द्वारा । विद्विषादरः । **विद्विषा**=शत्रु के द्वारा । **आदरः**=सम्मान ।

हिन्दी अर्थ—अनिष्फल क्रोध करने वाले और शत्रुओं का विनाश करने वाले व्यक्ति के वश में प्राणी स्वयं ही हो जाते हैं । व्यक्ति के क्रोध से हीन होने पर उनका न तो मित्रगण ही आदर करते हैं और नाहीं उससे शत्रु भय करते हैं ॥३३॥

भाव—क्रोध को यद्यपि मनुष्य का महान् शत्रु कहा गया है तथापि संसार में रहते हुये अवसर पड़ने पर क्रोध अवश्य करना चाहिये । तेजस्वी मनुष्य को अवसर उपस्थित होने पर क्रोध तो अवश्य करना चाहिये, परन्तु उसका क्रोध

निष्फल नहीं होना चाहिये। उसको सदा शत्रुओं का विनाश करने में उद्यत रहना चाहिये। अन्य व्यक्ति ऐसे मनुष्य के वश में स्वयं ही हो जाते हैं। जो व्यक्ति कभी भी क्रोध नहीं करता, वह न तो किसी से आदर पा सकता है, और न ही कोई उससे डरता है।

वाच्यपरिवर्तन—अवन्ध्यकोपस्य आपदां विहन्तुः देहिभिः स्वयम् एव वश्यैः भू:ते। जन्तुः अमर्षशून्येन जनस्य न जातहार्दाः न विद्विषः आदरं कुर्वन्ति।

टिप्पणियाँ—अवन्ध्यकोपस्य—अवन्ध्यः कोपः यस्य तस्य। बहुव्रीहि समास। √वन्ध् + यत् = वन्ध्य। न वन्ध्य = अवन्ध्य। नञ् तत्पुरुष समास। **विहन्तुः**—वि + √हन + तृच् = विहन्तृ। षष्ठी विभक्ति का एकवचन = विहन्तुः। **आपदाम्**—आ + √पद् + क्विप् = आपद्। षष्ठी विभक्ति का बहुवचन = आपदाम्। **वश्याः**—√वश् + यत् = वश्य। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन = वश्याः। **देहिनः**—देहः अस्य अस्ति अर्थ में देहि + इनि = देहिन्। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन = देहिनः। **अमर्षशून्येन** = अमर्षात् शून्येन। पञ्चमी तत्पुरुषसमास मृष् + घञ् = मर्ष सहनशीलता। न मर्ष = अमर्ष। क्रोध। शूना + यत् = शून्य। **जन्तुना**—√जन् + तुन् = जन्तु। तृतीया विभक्ति का एकवचन = जन्तुना। **जातहार्देन**—जात हार्दं यस्य तेन। बहुव्रीहि समास। √जन् + क्त = जात। हृदयस्य अयम् अर्थं में हृदय + अण् (हृदय को हृद् आदेश होकर) = हार्द। **विद्विषा**—विशेषेण द्वेष्टि अर्थ में वि + √द्विष् + क्विप् = विद्विष्। तृतीया विभक्ति का एकवचन = विद्विषा। **आदरः**—आ + √दृ + अप् = आदर। **दरः**—√दृ + अप् + दर।

अलङ्कार—काव्यलिङ्ग।

जो व्यक्ति क्रोध नहीं करता इस वाक्य के अर्थ को, उसका न मित्र आदर करते हैं और न शत्रु भय करते हैं इस वाक्य के हेतु रूप में प्रस्तुत करने के कारण यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

छन्द--वंशस्थ।

विशेष कथन—यद्यपि शास्त्रों में क्रोध को मनुष्य के अन्दर स्थित महान् शत्रु कहा गया है, तथापि लोक-व्यवहार का पालन करने के लिये उचित अवसर पर मनुष्य को क्रोध करना ही चाहिये। क्रोध करने वाले मनुष्य का आदर तभी होता है, जबकि उसके अन्दर क्रोध को सफल करने का सामर्थ्य हो।

घण्टापथ टीका—अवन्ध्येति । अवन्ध्यः कोपो यस्य तस्यावन्ध्यकोपस्यात एवापदां विहन्तुर्निग्रहासमर्थत्येत्यर्थः । पुंस इति शेषः । देहिनो जन्तवः स्वयमेव वश्या वशंगता भवन्ति । 'वशं गतः' इति यत्प्रत्ययः । अतस्त्वया कोपिना भवितव्यमित्यर्थः । व्यतिरेके त्वनिष्टमाचष्टे-अमर्षशून्येन निष्कोपेन जन्तुना । कन्यायाः शोक इतिवत् हेतौ इति तृतीया । हृदयस्य कर्म हार्दं स्नेहः । 'प्रेमा ना प्रियता हार्दं प्रेम स्नेहः इत्यमरः ।' युवादित्वादण् । हृदयस्य हृल्लेखयदण्डलासेषु' इति हृदादेशः । जातहार्देन जातस्नेहेन सता जनस्यादरो न । विद्विषा द्विषता च तस्यादरो न । अमर्षहीनस्य रागद्वेषावकिञ्चित्करत्वादगण्यावित्यर्थः । अथवा विद्विषा सतां दरो भयं न । दरोऽस्त्रियां भये श्वभ्रे इत्यमरः । एतस्मिन्नेव प्रयोगे सन्धिवशाद् द्विधा परिच्छेदः पुंवाक्येषु न दोषः । अतः स्थाने कोपः कार्यस्त्याज्यस्त्वस्थाने को इति भावः ।।३३।।

प्रकरण—दुर्योधन की सफलता के समाचारों से क्रोधित हुई द्रौपदी युधिष्ठिर के क्रोध को उभारने का प्रयत्न कर रही है । वह कहती है कि जो व्यक्ति क्रोध नहीं कर सकता और उस क्रोध को सफल करने की सामर्थ्य नहीं रखता उसका न तो मित्र आदर करते हैं और न शत्रु उसका भय करते हैं । अब वह भीम आदि की दुरवस्था का उल्लेख करके युधिष्ठिर को उभारती है—

परिभ्रमंल्लोहितचन्दनोचितः
पदातिरन्तर्गिरि रेणुरूषित ।
महारथः सत्यधनस्य मानसं
दुनोति नो कच्चिदयं वृकोदरः ।।३४।।

अन्वयः—लोहितचन्दनोचितः रेणुरूषित महारथः पदातिः अन्तर्गिरि परिभ्रमन् अयम् वृकोदरः कच्चित् सत्यधनस्य मानसम् न दुनोति ।।३४।।

संस्कृत-व्याख्या—'लोहितचन्दनोचित' लोहितं रक्तवर्णं चन्दनं मलयजम् उचितं न्याय्यं यस्य तादृशः रक्तचन्दनस्य लेपनस्य अभ्यासी इत्यर्थः परन्तु अधुना 'रेणुरूषितः' रेणुभि, धूलिभिः रूषितः च्छुरितः 'महारथः' महान् रथः स्यन्दनः यस्य स महति रथे गमनशीलः परन्तु अधुना 'पदातिः पादाभ्याम् अतति संचरति इति तादृशः पादचारी इत्यर्थः । अन्तर्गिरि' गिरिषु पर्वतेषु अन्तः मध्ये 'परिभ्रमन्'

पर्यटन् 'अयम्' एषः सम्मुखे अवतिष्ठन् 'वृकोदरः भीमः 'कच्चित्' किम् इति दुःखसूचकः 'प्रश्नः' 'सत्यधनस्य' सत्यमेव धनं वित्तं यस्य तस्य सत्यप्रतिज्ञस्य 'मानस' चित्तं नो 'दुनोति' व्यथयति ? वृकोदरस्य एताम् अवस्थां दृष्ट्वा अपि किं भवतः मनसि पीडा न जायते ? ॥३४॥

शब्दार्थ—परिभ्रमल्लोहितचन्दनोचितः । **परिभ्रमन्**=घूमता हुआ । **लोहितचन्दनोचितः**=लालचन्दन के लेप का अभ्यासी । पदातिरन्तर्गिरि-रेणुरूषितः । **पदातिः**=पैदल । **अन्तर्गिरि**=पर्वतों के बीच में । **रेणुरूषितः**=धूलियों से धूसरित होता हुआ । **महारथः**=विशाल रथ पर घूमने वाला। **सत्यधनस्य**=सत्य प्रतिज्ञा वाले । **मानसम्**=मन को । **दुनोति**=पीडित करता है । **नो**=नहीं । कच्चिदयम् । **कच्चित्**=क्या । **अयम्**=यह । **वृकोदरः**=भीम ।

हिन्दी अर्थ—लाल चन्दन के लेप का अभ्यासी, परन्तु अब धूलियों से धूसरित होता हुआ विशाल रथ पर घूमने वाला, परन्तु अब पैदल विचरण करता हुआ पर्वतों के बीच भटकता हुआ यह भीम क्या सत्यप्रतिज्ञा वाले आपके मन को व्यथित नहीं करता ? ॥३४॥

भाव—छोटे भाई भीम की दुरवस्था को देखकर भी क्या आपके मन में व्यथा उत्पन्न नहीं होती ? कहाँ तो पहले लाल चन्दन का लेप किया करता था और कहाँ अब यह धूलियों से धूसरित हो रहा है । कहाँ पहले यह विशाल और उत्तम रथ की सवारी किया करता था और कहाँ अब पैदल ही भटकता फिरता है । कम से कम प्यारे भीम की इस अवस्था को देखकर आपके मन में क्रोध का संचार होना चाहिये । अपनी इस प्रतिज्ञा को आप कब तक ढोते रहेंगे ।

वाच्यपरिवर्तन—लोहितचन्दनोचितेन रेणुरूषितेन महारथेन पदातिनान्तर्गिरि परिभ्रमता अनेन वृकोदरेण कच्चित् सत्यधनस्य मानसं न दूयते ?

टिप्पणियाँ—**परिभ्रमन्**—परि√भ्रम्+शतृ=परिभ्रमत् । **पुल्लिंग में** प्रथमा विभक्ति का एकवचन—परिभ्रमन् । **लोहितचन्दनोचितः**—लोहित-चन्दनम्=लोहितचन्दनं कर्मधारय समास । लोहितचन्दनस्य उचितः लोहित-चन्दनोचितः । षष्ठी तत्पुरुष समास । अथवा लोहितचन्दनम् उचितं यस्य स

बहुव्रीहि समास। √रुह् + इतन् (र को ल होकर) लोहित। ताम्बे का बना हुआ लाल रंग का। √चन्द + ल्युट् (अन) = चन्दन। **पदातिः**—पादाभ्याम् अतति अर्थ में पाद√अत् + √इण् = पदाति। **अन्तर्गिरि**—गिरिषु इस अर्थ में सप्तमी विभक्ति के अर्थ में अन्तर् अव्यय का प्रयोग होकर उसका गिरि के साथ अव्ययीभाव समास होकर अन्तर्गिरि। **रेणुरूषितः**—रेणुभिः रूषितः। तृतीया तत्पुरुषसमास। री + नु = रेणु। √रूष् + क्त + रूषित। **महारथः**—महान् रथः यस्य सः। बहुव्रीहि समास। **सत्यधनस्य**—सत्य धनं यस्य तस्य। बहुव्रीहि समास। सते हितम् अर्थ में सत् + यत् + सत्य। **मानसम्**—मनस् + अण् = मानस। **कच्चित्**—किम् + विन् = कत्√चि + क्विप् = चित्। कत् च चित् च कच्चित्। हर्ष, पीड़ा आदि भावों को व्यक्त करने के लिये यह प्रश्नवाचक अव्यय है।

वृकोदरः—वृकः इव उदर यस्य स। बहुव्रीहि समास। भीम के बहुत अधिक मात्रा में भोजन करने के कारण उसको वृकोदर कहा जाता था।

अलङ्कार—विषम। विषम अलङ्कार का लक्षण—

विषमं वर्ण्यते यत्र घटनाननुरूपयोः।

जहाँ परस्पर विरुद्ध वस्तुओं का वर्णन किया जावे, वहाँ विषम अलङ्कार होता है। इस पद्य में कहाँ तो यह भीम लाल चन्दन का लेपन का अभ्यासी था और कहाँ यह अब धूल में धूसरित है, कहाँ तो यह विशाल रथ पर सवारी करता था और कहाँ अब पैदल भटकता है, इस प्रकार विरुद्ध वस्तुओं का वर्णन करने के कारण विषम अलङ्कार है।

छन्द वंशस्थ।

विशेष कथन—इन व्यंग्यात्मक वचनों द्वारा द्रौपदी ने युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीप्त करने का प्रयत्न किया है। इस छोटे भाई भीम की दुर्दशा को देख-कर भी क्या आप तेरह वर्ष तक ऐसे चुपचाप बैठे हुये सत्य की रक्षा करते रहेंगे और प्यारे भाइयों को दर-दर की ठोकरें खिलाते रहेंगे।

घण्टापथ टीका—परिभ्रमन्निति। लोहितचन्दनोचित उचितलोहितचन्दनः। 'वाऽऽहिताग्न्यादिषु' इति साधुः। अभ्यस्तरक्तचन्दन इत्यर्थः। अभ्यस्तेऽप्युचितं न्याय्यम् इति यादवः। महारथो रथचारी। उभयत्रापि प्रागिति शेषः। अद्य तु

रेणुरूषितो धूलिच्छुरित: पादाभ्यामितति गच्छतीति पदाति: पादचारी 'अज्यतिभ्यां च' इत्यनुवृत्तौ पादे च इत्यौणादिक इण्प्रत्यय: । पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु' इति पदादेश: अन्तर्गिरि गिरिष्वन्त: । विभक्त्यर्थेऽव्ययीभाव: 'गिरेश्च सेनकस्य इति विकल्पात्समासान्ताभाव: परिभ्रमन्नयं वृकोदरो भीम: । सत्यधनस्येति सोल्लुण्ठनवचनम् । अद्यापि त्वया सत्यमेव रक्ष्यते, न तु भ्रातर इति भाव: । तवेति शेष: । मानसं नो दुनोति कच्चिन्न परितापयति किम् कच्चित्कामप्रवेदने' इत्यमर: । स्वाभिप्राया विष्करणं कामप्रवेदनम् ।।३४।।

प्रकरण—दुर्योधन की सफलता के समाचारों से अत्यधिक क्रुद्ध हुई द्रौपदी युधिष्ठिर के हृदय में क्रोध के भावों को उद्दीप्त करने का प्रयत्न कर रही है। वह छोटे भाई की दुर्दशा को दिखा रही है पहले भीम की अवस्था का वर्णन करके अब वह अर्जुन की दुरवस्था दिखाती है ।

विजित्य य प्राज्यमयच्छदुत्तरान्
कुरूनकुप्यं वसु वासवोपम: ।
स वल्कवासांसि तवाधुनाऽऽहरन्
करोति मन्युं न कथं धनञ्जय: ।।३५।।

अन्वय:—वासवोपम: य: धनञ्जय: उत्तरान् कुरून् विजित्य प्राज्य अकुप्यम् वसु अयच्छत्, अधुना स वल्कवासांसि आहरन् तव मन्युम् कथम् न करोति ।।३५।।

संस्कृत-व्याख्या—'वासवोपम: वासव: इन्द्र: उपमा यस्य स इन्द्रसदृश य: पराक्रमी 'धनञ्जय' अर्जुन: 'उत्तरान् कुरून्' उत्तरं कुरूदेशं 'विजित्य' जित्वा 'प्राज्यं' अभूतम् 'अकुप्यं' स्वर्णरजतात्मकं 'वसु' धनम् 'अयच्छत्' तुभ्यं दत्तवान्, 'अधुना' अस्मिन् काले 'स' असौ पराक्रमी तव उपकारी च अर्जुन: 'वल्कवासांसि' वृक्षत्वग्वसनानि आहरन्' उपनयन् 'कथं' कस्मात् कारणात् 'तव' भवत: युधिष्ठिरस्य 'मन्युं' न क्रोध 'करोति' जनयति । य: अर्जुन: इन्द्रतुल्य: पराक्रमी सन् उत्तरकुरून् विजित्य तुभ्यं प्रभूतं धनं दत्तवान् स एव अधुना वल्कलवसनानि आहरति । एतद् दृष्ट्वा अपि त्वं निर्विकार एव इत्येव आश्चर्यम् ।।३५।।

शब्दार्थ—**विजित्य**=जीत कर । प्राज्यमयच्छदुत्तरान् । **प्राज्यम्**=प्रभूत मात्रा में । **अयच्छत्**=दिया था । **उत्तरान्**=उत्तर । वर्ती । कुरूनकुप्यम् ।

कुरून् = कुरु देश को। अकुप्यम् = स्वर्ण और रजत से युक्त। वसु = धन। वासवोपमः = इन्द्र के समान। वल्कलवासांसि = वल्कल वस्त्रों को। तवाधुना-ऽऽहरन्। तव = तुम्हारा। अधुना = अब। आहरन् = एकत्रित करता हुआ। करोति = करता है। मन्युम् = क्रोध को। कथम् = किस प्रकार। धनञ्जयः = अर्जुन।

हिन्दी अर्थ—इन्द्र के समान पराक्रमी जिस अर्जुन ने उत्तर कुरु देश को जीतकर आपके लिये प्रभूत मात्रा में स्वर्ण रजत आदि से युक्त धन लाकर दिया था, इस समय वह ही अर्जुन वनवास की अवधि में वल्कल वस्त्रों को एकत्रित करता हुआ किस कारण से आपके मन में क्रोध को उत्पन्न नहीं कर रहा है? ॥३५॥

भाव—आपका छोटा भाई इन्द्र के समान पराक्रमी है। उसने उत्तर कुरु देश को जीता है और आपके लिये प्रभूत मात्रा में धन सम्पत्ति लाकर दी है। उस अर्जुन की दुरवस्था को देखकर तो आपको दुर्योधन के प्रति क्रोध आना चाहिये। क्या आप यह देखकर भी प्रतिज्ञा के लिए ही बैठे रहेंगे?

वाच्यपरिवर्तन—वासवोपमेन येन धनञ्जयेन उत्तराः कुरवः विजित्य प्राज्यम् अकुप्य वसु अयच्छत्, अधुना तेन वल्कवासांसि आहरता तव मन्युः कथं न क्रियते।

टिप्पणियाँ—विजित्य—वि √जि + क्त्वा (ल्यप्)। प्राज्यम्—प्र √अज् + ण्यत् = प्राज्य। अयच्छत्—√दाण् धातु लङ् लकार प्रथम पुरुष एकवचन। दाण् के स्थान पर यच्छ् आदेश होता है। उत्तरान् कुरून्—उत्तर कुरुदेश। वर्तमान देहली के चारों ओर के प्रदेश से लेकर हरिद्वार के पास पर्वतों के तलहटियों तक कुरुदेश कहलाता था। यह प्रदेश कुरुवंशियों के अधिकार में था। इसके उत्तर का पर्वतीय प्रदेश उत्तर कुरुदेश कहलाता था। पुराणों के अनुसार मेरु पर्वत के उत्तर का देश कुरुदेश है। राजसूय यज्ञ के अवसर पर अर्जुन ने इसको जीता था। अकुप्यम्—√गुप् + क्यप् (ग को क आदेश होकर) = कुप्य। स्वर्ण और रजत को छोड़कर अन्य धातुओं को कुप्य कहा जाता है। अकुप्य कुप्य। स्वर्ण और रजत धातुओं से युक्त धन। वल्कवासांसि—वल्कलस्य वासांसि। षष्ठी तत्पुरुष। √वल् + क = वल्क। अस्यते आच्छाद्यते अनेन

अर्थ में √अस् + असुन् = वासम् । नपुंसकलिङ्ग में द्वितीया विभक्ति का एकवचन =वासांसि । आहरन्—आ + √हृ + शतृ = आहरत् । प्रथमा विभक्ति का एकवचन = आहरन् । धनञ्जयः—धनादि जयति अर्थ में धनो + जि + णिच् =(मुम् का आगम) = धनञ्जय । अर्जुन का एक नाम धनञ्जय भी था ।

अलङ्कार—उपमा और परिकराङ्कुर ।

'वासवोपम धनञ्जयः' इस वाक्य में अर्जुन का सादृश्य इन्द्र से दिखाया गया है । यहाँ वासव उपमान, धनञ्जय उपमेय और उपमा उपमावाचक शब्द हैं । साधारण धर्म का लोप होने से यह धर्मलुप्त उपमा है । **परिकराङ्कुर** का लक्षण—

साभिप्राये विशेष्यतु भवेत्परिकराङ्कुरः ।

जहाँ किसी विशेष अभिप्राय से विशेष्य के लिये किसी शब्द का प्रयोग किया जावे वहाँ **परिकराङ्कुर** अलङ्कार होता है । यहाँ धनञ्जय शब्द में **परिकराङ्कुर** अलङ्कार है । जिस अर्जुन ने उत्तर कुरुदेश को जीतकर प्रचुर धनों को प्राप्त किया था और उसको दूसरों को दे दिया था, वही अब वल्कल वस्त्रों का संचय कर रहा है । इसमें अर्जुन की अति दयनीय अवस्था व्यञ्जित होती है ।

छन्द—वंशस्थ ।

विशेष कथन—इस श्लोक द्वारा भी द्रौपदी ने युधिष्ठिर के प्रति तीव्र व्यङ्ग्य किया है । जिस अर्जुन ने तुम्हारे कोष को प्रचुर सम्पत्तियों से भर दिया था, उसकी भी तुम्हारे कारण यह विपन्नावस्था है ।

घण्टापथ टीका—विजित्येति । वासव इन्द्र उपमा उपमानं यस्य स वासवोपम इन्द्रतुल्यो यो धनञ्जयः उत्तरान्कुरून्मेरोरुत्तरान्मानुपान्देशविशेषान्विजित्य प्राज्यं प्रभूतम् । 'प्रभूतं प्रचुरं प्राज्यम्' इत्यमरः । कुप्यादन्यदकुप्यम् हेमरूप्यात्मकम् । 'स्यात्कोशश्च हिरण्यं च हेमरूप्यं कृताकृते । ताभ्यां यदन्यत्तत्कुप्यम् इत्यमरः । वसु धनमयच्छद् दत्तवान् । 'पाघ्रा०'—इत्यादिना दाणो यच्छादेशः । स धनं जयति इति धनञ्जयोऽर्जुनः । 'संज्ञायां भृतृवृजि'—इत्यादिना खच्प्रत्ययः । 'अरुर्द्विषद्'—इत्यादिना मुमागमः । अधुनाऽस्मिन् काले । 'अधुना' इति निपातनात्साधुः । तव वल्कवासांस्याहरन् कथं तव मन्युं क्रोधं दुःखं वा न करोति ॥३५॥

प्रकरण—दुर्योधन की सफलताओं के समाचारों को सुनकर अत्यधिक क्रोधित हुई द्रौपदी युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीप्त करने के लिये पुनः कहती है कि दुर्योधन के कारण आप सबको इतने अधिक कष्ट और अपमान सहन करने पड़ रहे हैं। अर्जुन की अवस्था का वर्णन करके वह नकुल और सहदेव की दुरवस्था को बताती है—

वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती
कचाचितौ विष्वगिवागजौ गजौ।
कथं त्वमेतौ धृतिसंयमौ यमौ
विलोकयन्नुत्सहसे न बाधितुम् ॥३६॥

अन्वयः—वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती विष्वक् कचाचितौ अगजौ गजौ इव एतौ यमौ विलोकयन् त्वं धृतिसंयमौ बाधितुम् कथम् न उत्सहसे ? ॥३६॥

संस्कृत-व्याख्या—'वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती' वनान्तः वनप्रदेशः एव शय्या आस्तरणं तया कठिनीकृते कठोरीकृते आकृती शरीरे ययोः तौ 'विष्वक्' सर्वतः 'कचाचितौ कचैः केशैः आचितौ व्याप्तौ केशानाम् असंस्कारेण विशीर्ण-केशौ अत एव 'अगजौ' अगे पर्वते जातौ उत्पन्नौ 'गजौ' करिणो इव दृश्यमानौ 'एतौ' इमौ यमौ युग्मजातौ नकुलसहदेवौ 'विलोकयन्' पश्यन् अपि त्वं युधिष्ठिरः 'धृतिसंयमौ' धृतिः धैर्यं च संयमः क्रोधनिग्रहः च तौ 'बाधितुं' परित्यक्तुं, 'कथं' कस्मात् कारणात् न 'उत्सहसे' उत्साहितो भवसि। नकुलसहदेवयोः ईदृशीं दुर-वस्थां विलोक्य अपि त्वं कोपेन कथं न प्रज्वलसि ? ॥३६॥

शब्दार्थ—**वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती**=वनप्रदेश रूप शय्या से कठोर आकृति वाले। **कचाचितौ**=बिखरे बालों वाले। विष्वगिवागजौ। **विष्वक्**=सब ओर। **इव**=समान। **अगजौ**=पर्वत पर उत्पन्न हुये। **गजौ**=हाथी। **कथम्**=किस प्रकार। त्वमेतौ। **त्वम्**=तुम। **एतौ**=इन दोनों। **धृतिसंयमौ**=धैर्य और संयम। **यमौ**=यमज। विलोकयन्नुत्सहसे। **विलोकयन्**=देखते हुये। **उत्सहसे**=उत्साहित होते हो। **बाधितुम्**=बाधित होने के लिये।

हिन्दी अर्थ—वनप्रदेश की शय्या पर सोने से कठोर आकृति वाले, चारों ओर से बिखरे बालों वाले, इसलिये पर्वत पर उत्पन्न हुए हाथियों के समान

दिखाई देने वाले इन यमज भाइयों नकुल और सहदेव को देखते हुये भी तुम धैर्य और संयम का परित्याग करने के लिये क्यों नहीं बाधित होते ? ॥३६॥

भाव—ये नकुल और सहदेव कितनी कोमल और सुन्दर आकृति वाले थे। वन की कठोर भूमि पर सोने से इनकी आकृति कठोर हो गई है। इनके बाल कभी संवारे नहीं जाते। वे चारों ओर बिखर रहे हैं। इसलिये ये पर्वतों पर उत्पन्न हुए हाथियों के समान प्रतीत हो रहे हैं। इनको देखकर तुम भी १२ वर्ष के वनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास की प्रतिज्ञा को लिये ही बैठे रहोगे ? अब तुमको धैर्य और संयम का परित्याग कर दुर्योधन से बदला लेने के लिए उद्यत हो जाना चाहिए।

वाच्यपरिवर्तन—वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती विष्वक् कचाचितौ अगजौ गजौ इव एतौ यमौ विलोकयता त्वया धृतिसंयमौ बाधितुं कथं न उत्सह्यते !

टिप्पणियाँ—**वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती**—वनस्य अन्तः वनान्तः। षष्ठी तत्पुरुष समास। वनान्तश्चासौ शय्या च वनान्तशय्या। कर्मधारय समास। वनान्तशय्या कठिनीकृता आकृतिः ययोः तौ वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती बहुव्रीहि समास। अकठिना कठिना कृता अर्थ में √कृ धातु के योग में कठिन शब्द से च्वि प्रत्यय कठिन + च्वि + कृता = कठिनीकृता। √कृ + क्त + टाप् = कृता। आ + √कृ + क्तिन् आकृति। शी + क्यप् + टाप् = शय्या। **कचाचितौ**—कचैः आचितौ। तृतीया तत्पुरुष समास। √कच् + अच् = कच। आ + √चि + क्त = आचित। **विष्वक्**—विषुम् अञ्चती अर्थ में विषु + √अञ्च् + क्विन् = विष्वक्। **अगजौ**—अगे जातः अर्थ में अग + √जन् + ड = अगज। द्वितीया विभक्ति का द्विवचन = अगजौ। न गच्छति अर्थ में न + √गम् + ड = अग। पर्वत। **गजौ**—गज् धातु का अर्थ है—मदोन्मत्त होकर शब्द करना। √गज् + अच् = गज। **धृतिसंयमौ**—धृतिश्च संयमश्च। द्वन्द्व समास। धृ + क्तिन् = धृति। सम् + यम् + अच् = संयम। **विलोकयन्**—वि + लोक + शतृ + विलोकयत्। प्रथमा विभक्ति का एकवचन = विलोकयन्। **उत्सहसे**—उत् उपसर्ग पूर्वक सह् धातु का लट् लकार मध्यम पुरुष का एकवचन। **बाधितुम्**—बाध् + तुमुन्।

अलङ्कार—उपमा परिकर और विरोधाभास।

अगजौ गजौ इव यहाँ गज उपमान, यमौ उपमेय, भूमि पर शयन करना

आदि साधारण धर्म और इव उपमा वाचक शब्द हैं। उपमा के चारों अंगों के होने से **पूर्णोपमा** है।

नकुल और सहदेव के विशेषणों 'वनान्तशय्या' आदि से उनकी अति दयनीय अवस्था का बोध होता है। साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग करने से यहाँ **परिकर** अलङ्कार है।

'आभासत्वे विरोधस्य विरोधाभास उच्यते'। जहाँ प्रस्तुतः विरोध न हो परन्तु विरोध का आभास होता हो, वहाँ विरोधाभास अलङ्कार होता है। अगजौ गजौ इव में जो गज नहीं हैं और गज के समान हैं, इस प्रकार विरोध की प्रतीति होती है। परन्तु जो पर्वतों पर उत्पन्न हुये गजों के समान हैं, इस प्रकार अर्थ करने पर विरोध न रहने से **विरोधाभास** अलङ्कार होता है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—इन श्लोकों में छोटे भाइयों की दशा को दिखाकर युधिष्ठिर में क्रोध का संचार करने का प्रयत्न किया गया है।

घण्टापथ टीका—वनान्तेति। वनान्तो वनभूमिरेव शय्या तया कठिनीकृताकृती कठिनीकृतदेहौ। 'आकारो देह आकृतिः' इति वैजयन्ती। विष्वक्समन्तात्। 'समन्ततस्तु परितः सर्वतो विष्वगित्यपि' इत्यमरः। कचाचितौ कचव्याप्तौ। विशीर्णकेशौ इत्यर्थः। अतः एवागजौ गिरिसम्भवौ गजाविव स्थितावेतौ यमौ युग्मजातौ, माद्रीपुत्रावित्यर्थः। 'यमौ दण्डधरे ध्वाङ्क्षु संयमे यमजेऽपि च' इति विश्वः। विलोकयंस्त्वं कथं धृतिसंयमौ संतोषनियमौ। धृतिर्योगान्तरे धैर्ये धारणाध्वरतुष्टिषु' इति विश्वः। बाधितुं नोत्सहसे न प्रवर्तसे। 'शकधृ'—इत्यादिना तुमुन्। अहो ते महद्धैर्यम् इति भावः॥३६॥

प्रकरण—दुर्योधन की सफलताओं के समाचारों को सुनकर अत्यधिक क्रोधित हुई द्रौपदी युधिष्ठिर के क्रोध को उभारने का प्रयत्न कर रही है। दुर्योधन द्वारा दिये गये कष्टों और अपमानों का वर्णन करती हुई वह पहले भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव इन चारों भाइयों की दुरवस्था को बताती है, इसके बाद वह स्वयं युधिष्ठिर की दशा की ओर संकेत करती है—

इमामहं वेद न तावकीं धियं
विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः ।
विचिन्तयन्त्या भवदापदं परां
रुजन्ति चेतः प्रसभं ममाधयः ॥३७॥

अन्वयः—अहम् इमाम् तावकीम् धियम् न वेद । खलु चित्तवृत्तयः विचित्ररूपाः । इमाम् भवदापदम् विचिन्तयन्त्याः मम चेतः आधयः प्रसभम् रुजन्ति ॥३७॥

संस्कृत व्याख्या—अहम् द्रौपदी 'इमाम्' एनां 'तावकीं' त्वदीयां 'धियं' बुद्धि न 'वेद' जानामि । 'खलु' निश्चयेन 'चित्तवृत्तयः' चित्तानां मनसां वृत्तयः व्यवहाराः मनोवृत्तयः इत्यर्थः 'विचित्ररूपाः' विचित्राणि अद्भुतानि रूपाणि प्रकाराः यासां तादृशाः भवन्ति । परन्तु 'परां' महतीं 'भवदापदं' भवतः तव आपदं विपत्ति 'विचिन्तयन्त्याः' विचारयन्त्याः मम द्रोपद्याः 'चेतः' मनः 'आधयः' मनोव्यथाः 'प्रसभं' हठात् 'रुजन्ति' पीडयन्ति । तव दुर्दशां दृष्ट्वा मम मनसि सततं पीडा जायते इत्यर्थः ।

शब्दार्थ--इमामहम् । **इमाम्** = इस । **अहम्** = मैं । **तावकीम्** = तुम्हारी । **बुद्धिम्** = बुद्धि को । **विचित्ररूपाः** = विचित्र रूपों वाली नाना प्रकार की । **खलु** = निश्चिय से । **चित्तवृत्तयः** = मनोवृत्तियाँ । **विचिन्तयन्त्या** = ध्यान करते हुए । **भवदापम्** = आपकी आपत्ति को । **पराम्** = महान् । **रुजन्ति** = पीडित करती हैं । **चेतः** = मन को । **प्रसभम्** = बलात् । ममाधयः । **मम** = मुझे । **आधयः** = मनोव्यथायें ।

हिन्दी अर्थ—**मैं आपकी बुद्धि के विषय में तो नहीं जानती । निश्चय से मनोवृत्तियाँ नाना प्रकार की होती हैं । परन्तु आपकी महान् विपत्ति का ध्यान करते हुये मेरे मन को मनोव्यथायें बलात् पीड़ित करती हैं ॥३७॥**

भाव—आपकी बुद्धि की बात मैं समझ नहीं पा रही हूँ । यद्यपि आपको भी कष्ट कम नहीं हो रहे हैं, तो भी आप इस प्रकार शान्त बैठे हुए हैं । ठीक है संसार में अनेक प्रकार की मनोवृत्तियों के मनुष्य होते हैं । सबकी चित्तवृत्तियाँ एक-सी नहीं होती । आपकी बुद्धि भी इस प्रकार बड़ी विचित्र है । आपको अपनी अवस्था पर शोक हो या न हो, परन्तु आपकी दुर्दशा को देखकर मेरे मन को बहुत अधिक पीड़ा होती है ।

वाच्यपरिवर्तन—मया इयं तावकी धीः न वेद्यते। खलु चित्तवृत्तिभिः चित्ररूपाभिः (भूयते)। परां भवापदं विचिन्तयन्त्याः मम मनः आधिभिः प्रसभं (रु)ज्यते।

टिप्पणियाँ—तावकीम्—तव इयम् अर्थ में युष्मद् + अण् + ङीप्। युष्मद् (शब्)द को तवक आदेश होता है। धियम्—√ध्यै + क्विप् = धी द्वितीया विभक्ति (का) एकवचन = धियम्। विचित्ररूपाः—विचित्राणि रूपाणि यासां ताः। बहुव्रीहि (स)मास। अथवा अतिशयेन विचित्राः अर्थ में विचित्र शब्द से रूपप् प्रत्यय होकर (वि)चित्र + रूपप् = विचित्ररूपाः। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन = विचित्ररूपाः। (चि)त्तवृत्तयः = चित्तानां वृत्तयः। षष्ठी तत्पुरुष समास। √चित् + क्त = चित्त (√)वृत् + क्तिन् = वृत्ति। विचिन्तयन्त्याः—वि + √चिन्त् + शतृ + ङीप् = (वि)चिन्तयन्ती। षष्ठी विभक्ति का एकवचन विचिन्तयन्त्याः। भवदापदम्—(भ)वतः आपदम् षष्ठी तत्पुरुषसमास। आ + √पद + क्विप् = आपद। द्वितीया (वि)भक्ति का एकवचन = आपदम्। आधयः—आ + √धा + कि = आधि। (प्र)थमा विभक्ति का बहुवचन = आधयः।

अलङ्कार—अर्थान्तरन्यास और काव्यलिङ्ग।

'इमामहं वेद न तावकीं धियम्' में आपकी बुद्धि की बात को तो नहीं (ज)ानती। इस विशेष का समर्थन विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः, मनोवृत्तियाँ (अ)नेक प्रकार की होती हैं, इस सामान्य से किया जाने के कारण यहाँ अर्थान्तर-(न्य)ास अलङ्कार है।

"परां भवदापदं विचिन्तयन्त्याः" आपकी परम आपत्ति का विचार करते (ह)ुये इन पदों के अर्थों को 'आधयः मम चेतः रुजन्ति' मनोव्यथायें मेरे मन को (प)ीड़ित करती हैं, इस वाक्य के हेतु के रूप में कहा जाने से यहाँ काव्यलिङ्ग (अ)लङ्कार है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—संसार में मनुष्यों की मनोवृत्तियाँ अनेक प्रकार की देखी (ज)ाती हैं। कोई तो थोड़े से अपमान और कष्ट को भी सहन नहीं कर पाते और (क)ोई थोड़ा भी कारण उपस्थित होने पर अत्यधिक क्रोधित हो जाते हैं। परन्तु (क)ई व्यक्ति अत्यधिक शान्त स्वभाव के होते हैं और बड़े से बड़ा अपमान किये

जाने पर भी निर्विकार रहते हैं और बदला लेने के लिये उनके मन में किसी प्रकार का उत्साह नहीं होता ।

घण्टापथ टीका—इमामिति । इमां वर्त्तमानाम् । तवेमां तावकीं त्वदीयाम् । 'तस्येदम्' इति अण् प्रत्ययः । 'तवकममकावेकवचने' इति तवकादेशः । धियं त्वदापद्विषयां चित्तवृत्तिमहं न वेद कीदृशी वा न वेद्मि । परबुद्धेप्रत्ययक्षत्वादिति भावः । 'विदो लटो वा' इति लटो णलादेशः । न चात्मदृष्टान्तेनापन्नत्वाद् दुःखित्वमनुमातं शक्यते । धीरादिष्वनेकान्तिकत्वादित्याशयेनाह—चित्तवृत्तयो विचित्ररूपाः धीराधीराद्यनेकप्रकाराः खलु । किन्तु परामुत्कृष्टां भवदाप्रदं विचितन्यन्त्या भावयन्त्या मम चेतश्चित्तम् आधयो मनोव्यथाः । 'उपसर्गे घोः किः' इति कि प्रत्ययः । प्रसभं प्रसह्य रुजन्ति भञ्जन्ति । 'रुजोभङ्गे' इति धातोर्लट् । पश्यतामपि दुःसहा दुःखजननी त्वद्विपत्तिरनुभवितारं त्वां न विकरोतीति महच्चित्रमित्यर्थः । चेत इति 'रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः' इति षष्ठी न भवति । तत्र शेषाधिकाराच्छेषत्वस्य विवक्षितत्वादिति ॥३७॥

प्रकरण—दुर्योधन की सफलताओं को सुनकर अत्यधिक क्रोधित हुई द्रौपदी युधिष्ठिर के भावों को उद्दीप्त करने का प्रयत्न कर रही है । वह कह रही है कि दुर्योधन के कारण न केवल आपके भाइयों भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को ही विपत्तियाँ झेलनी पड़ रही हैं, आपकी भी दुर्दशा हो रही है । वह क्रमशः दशाओं का वर्णन करती हैं । पहली दुर्दशा यह है—

पुराऽधिरूढः शयनं महाधनं
विबोध्यसे यः स्तुतिगीतिमङ्गलैः ।
अदभ्रदर्भामधिशय्य स स्थलीं
जहासि निद्रामशिवैः शिवारुतैः ॥३८॥

अन्वयः—यः पुरा महाधनम् शयनम् अधिरूढः स्तुतिगीतिमङ्गलैः विबोध्यसे स अदभ्रदर्भाम् स्थलीम् अधिशय्य अशिवैः शिवारुतैः निद्राम् जहासि ॥३८॥

संस्कृत-व्याख्या—यः त्वं युधिष्ठिरः 'पुरा' पूर्वम् इन्द्रप्रस्थनगरे प्रसादेषु निवसन् 'महाधनं' महत् बहु धनं मूल्यं यस्य बहुमूल्यम् इत्यर्थः 'शयनम्' शय्याम् अधिरूढः' आरुह्य सुप्तः 'स्तुतिगीतिमङ्गलैः' स्तुतीनां स्तवानां गीतयः गानवि

शेषाः स्तुतिगीतयः अथवा स्तुतयश्च गीतयश्च स्तुतिगीतयः ताः मङ्गलानि तैः विबोध्यसे' बोधितः क्रियसे । अनद्यतनभूतार्थे लट् लकारः । स एव त्वम् अधुना 'अदभ्रदर्भाम्' अदभ्राः बहुलाः दर्भाः यत्र तादृशीं 'स्थलीं' वनभूमिम् 'अधिशय्य' सुप्त्वा निद्रितः सन् इत्यर्थः 'अशिवैः' अमङ्गलकारकैः 'शिवारुतैः' शिवानां शृगालीनां रुतैः रोदनध्वनिभिः 'निद्रां' स्वापं 'जहासि' परित्यजसि । विनिद्रो भवसि इत्यर्थः ।

शब्दार्थ—पुराऽधिरूढः । पुरा=पहले । अधिरूढः=आरूढ हुये । शयनम् =बिस्तर । महाधनम्=बहुमूल्य । विबोध्यसे=जगाये जाते थे । यः=जो । स्तुतिगीतिमङ्गलैः=मङ्गलकारी स्तुतियों और गीतों से । अदभ्रदर्भामधिशय्य । अदभ्रदर्भाम्=बहुत से कुशों से युक्त । अधिशय्य=सोकर । स=वह । स्थलीम् =भूमि पर । जहासि=छोड़ते हो । निद्रामशिवैः । निद्राम्=नींद को । अशिवैः=अमङ्गलकारी । शिवारुतैः=गीदड़ियों की ध्वनियों से ।

हिन्दी अर्थ—जो आप पहले प्रासादों में रहते हुए बहुमूल्य बिस्तरे पर आरूढ होकर सोये हुए मंगलकारी स्तुतियों और गीतों से जगाये जाते थे, वे ही अब आप बहुत से कुशों से युक्त वन की भूमि पर सोये हुये अमंगलकारी गीदड़ियों की ध्वनियों से जगाये जाते हैं ।

भाव—हे महाराज ! आप पहले महलों में बहुमूल्य कोमल शय्याओं पर सोते थे । अब आप चुभने वाले दर्भों से युक्त वन की भूमि पर सोते हैं । आप को जगाने के लिये पहले मंगलकारी स्तुतियां और गीत गाये जाते थे । परन्तु अब आप गीदड़ियों की अमंगलकारी रोने की आवाजों से ही जाग जाते हैं । यह आप पर क्या कम विपत्ति है ?

वाच्यपरिवर्तन—यं पुरा महाधनं शयनम् अधिरूढं स्तुतिगीतमंगलानि विबोधयन्ति स्म तेन अदभ्रदर्भा स्थली अधिशय्य अशिवैः शिवारुतैः निद्रा हार्यते ।

टिप्पणियाँ—पुरा—पुर्+का=पुरा । अधिरूढः—अधि+√रुह+क्त =अधिरूढ । शयनम्—√शी+ल्युट् (अन)=शयन । द्वितीया विभक्ति का एकवचन=शयनम् । महाधनम्=महत् धनं यस्य तम् । बहुव्रीहि समास । विबोध्यसे—वि+√बुध+णिच्=विबोधि । लट् लकार मध्यम पुरुष का

एकवचन = विबोध्यसे। **स्तुतिगीतिमंगलैः**—स्तुतीनां गीतयः स्तुतिगीतयः षष्ठी तत्पुरुष समास। अथवा स्तुतयश्च गीतयश्च स्तुतिगीतयः। द्वन्द्व समास स्तुतिगीतयः एव मंगलानि तैः स्तुतिगीतिमंगलैः। कर्मधारय समास। √स्तु + क्तिन् = स्तुति। √गै + क्तिन् = गीति। √मङ्ग धातु (हित करना) में अलच प्रत्यय होकर = मङ्गल। **अदभ्रदर्भाम्**—अदभ्राः दर्भाः यत्र ताम्। बहुव्रीहि समास। **स्थलीम्**—√स्थल् धातु (स्थिर होना) से √स्थल् + अच् + ङीप् = स्थली। द्वितीया विभक्ति का एकवचन = स्थलीम्। **अधिशय्य**—अधि + √शी + क्त्वा (ल्यप्) = अधिशय्य। **स्थलीम् अधिशय्य**–यहाँ अधि उपसर्ग पूर्वक √शी धातु के आधार पर स्थली की 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' से कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति हुई। **अशिवैः**—न शिवैः। नञ् तत्पुरुष समास। **शिवारुतैः**—शिवानां रुतैः। षष्ठी तत्पुरुष समास। √रु + क्त = रुत।

अलङ्कार—**विषम**।

जो बहुमूल्य बिस्तरे पर सोने योग्य है, यह दर्भबहुल भूमि पर सोता है जो मंगलकारी गीतों से जगाये जाने योग्य है वह अमंगलकारी गीदड़ियों की रुदनध्वनियों से जगाया जाता है, इस प्रकार परस्पर अनुरूप पदार्थों का वर्णन करने से यहाँ **विषम** अलङ्कार है।

छन्द—**वंशस्थ**।

विशेष कथन—पहले समृद्धियों को भोगकर उसके बाद गरीबी की अवस्था को सहन करना बहुत अधिक कठिन होता है।

घण्टापथ टीका—पुरेति। यस्त्वं महाधनं बहुमूल्यं श्रेष्ठम्। 'महाधनं बहुमूल्ये' इति विश्वः। शयनं शय्यामधिरूढः सन् स्तुतयो गीतयश्च ता एव मगलानि तैः। करणभूतैः पुरा विबोध्यसे। वैतालिकैरिति शेषः। पूर्वं बोधित इत्यर्थः। 'पुरि लुङ् चास्मे' इति भूतार्थे लट्। त्वमदभ्रदर्भां बहुकुशाम् 'स्त्री कुशं कुशो दर्भः' इति। 'अदभ्रं बहुलं, बहु इति चामरः। स्थलीमकृत्रिमभूमिम्। 'जानपद,—इत्यादिना कृत्रिमार्थे ङीष्। एतेन दुःसहस्पर्शत्वमुक्तम्। 'अधिशीङ्स्थाऽऽसां कर्म' इति कर्मत्वम्। अधिशय्य शयित्वा। 'अयङ्यिङ्क्ति' इत्ययङादेशः। अशिवैरमंगलैः शिवारुतैः क्रोष्ट्रीवासितैः 'शिवा हरीतकी क्रोष्ट्री शमी मद्यामलक्युभे' इति वैजयन्ती। निद्रां जहासि। अद्येति शेषः ॥३८॥

प्रकरण—दुर्योधन के विरुद्ध युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीप्त करने के लिये द्रौपदी ने उसके भाइयों भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव की आपत्तियों का वर्णन करके उसको स्वयं की आपत्तियाँ बताईं। पहली विपत्ति थी—युधिष्ठिर पहले महलों में बहुमूल्य बिस्तरों पर सोता था और उसको जगाने के लिये मंगलगीत गाये जाते थे। वही अब कुशों से युक्त वनस्थलियों में सोता है और गीदड़ियों की अमंगलकारी रुदनध्वनियों से जागता है। युधिष्ठिर की दूसरी विपत्ति का वह वर्णन करती है—

पुरोपनीतं नृप ! रामणीयकं
द्विजातिशेषेण यदेतदन्धसा ।
तदद्य ते वन्यफलाशिनः परं
परैति कार्श्यं यशसा समं वपुः ॥३९॥

अन्वयः—नृप ! पुरा ते यद् एतद् वपुः द्विजातिशेषेण अन्धसा रामणीयकम् उपनीतम्, अद्य वन्यफलाशिनः तद् यशसा समम् परम् कार्श्यम् परैति ।

संस्कृत-व्याख्या—'नृप !' हे राजन् ! 'पुरा, पूर्वम् इन्द्रप्रस्थस्य राजप्रासादेषु निवसता 'ते' तव युधिष्ठिरस्य 'यद् एतद् वपुः' यद् इदं पुरः दृश्यमानं शरीरं 'द्विजातिशेषेण' द्विजातीनां ब्राह्मणानां शेषेण उपभुक्तावशिष्टेन 'अन्धसा' अन्नेन 'रामणीयकं' सौन्दर्यशालिताम् 'उपनीतं' प्रापितम् 'अद्य' अधुना अस्मिन् वनवासकाले 'वन्यफलाशिनः' वन्यानि आरण्यकानि फलानि अश्नाति भुनक्ति इति तस्य 'तद्' पूर्वोक्तं सौन्दर्यशालि वपुः 'यशसा' कीर्त्या 'समं' सार्धं 'परम्' अत्यधिकं 'कार्श्यं' क्षीणत्वं 'परैति' प्राप्नोति । तव शरीरं यशश्च उभयमपि क्षीयते इति भावः ।

शब्दार्थ—नृपः=हे राजन् । पुरोपनीतम् । पुरा=पहले । उपनीतम्=प्राप्त कराया गया । रामणीयकम्=सौन्दर्य को । द्विजातिशेषेण=ब्राह्मणों के उपभोग से बचे हुए । यदेतदन्धसा । यत्=जो । एतत्=यह । अन्धसा=अन्न से । तदद्य । तत्=वह । अद्य=आज । ते=तुम्हारा । वन्यफलाशिनः=जंगली फलों को खाने वाले । परम्=अत्यधिक । परैति=प्राप्त होता है । कार्श्यम्=क्षीणता को । समम्=साथ । वपुः=शरीर ।

हिन्दी अर्थ—हे राजन् ! पहले तो तुम्हारा यह शरीर ब्राह्मणों के उपभोग

से बचे हुये अन्न से सौन्दर्य को प्राप्त हुआ था, आज जंगली फलों को खाने वाला तुम्हारा वही शरीर, यश के साथ अत्यधिक क्षीण हो रहा है।

भावार्थ—राजप्रासाद की भोजनशाला में पौष्टिक और स्वादिष्ट भोजन तैयार होते थे। पहले ब्राह्मणों को भोजन कराकर उसके बाद आप भोजन किया करते थे। उस पौष्टिक अन्न को खाकर आपका शरीर अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता था। अब शत्रु द्वारा तिरस्कृत होकर वनों में चले आने से आपका यश तो क्षीण हो ही रहा है, साथ ही जंगली फलों के खाने से शरीर भी क्षीण होता जा रहा है।

वाच्यपरिवर्तन—नृप: पुरा ते यद् एतद् वपु: द्विजातिशेषं अन्ध: रामणीयकम् उपानयत् अद्य वन्यफलाशिना तेन वपुषा यशसा समं परं कार्श्यं परीयते।

टिप्पणियाँ—उपनीतम्—उप + √नी + क्त। **रामणीयकम्**—√रम् + अनीयर = रमणीय। रमणीयस्य भाव: अर्थ में रमणीय + वुञ् (अक) = रामणीयक। **द्विजातिशेषेण**—द्विजातीनां शेषेण। षष्ठी तत्पुरुष समास। द्वाभ्यां जन्म संस्काराभ्यां जायते अर्थ में द्वि + √जन् + क्तिन् = द्विजाति। ब्राह्मण का दो बार जन्म होता है। प्रथम माता के गर्भ से और दूसरी बार विद्या पढकर गुरु के गर्भ से। शिष् + घञ् = शेष। **अन्धसा**—√अद् + असुन्, नुम् और ध होकर = अन्धस्। तृतीया विभक्ति का एकवचन = अन्धसा। **वन्यफलाशिन:**—वन्यानि फलानि वन्यफलानि। कर्मधारय समास। वन्यफलानि अश्नानि अर्थ में वन्यफल + √अश् + णिनि = वन्यफलाशिन्। षष्ठी विभक्ति का एकवचन = वन्यफलाशिन:। **परैति**—परा + √इण् धातु का लट् लकार प्रथम पुरुष का एकवचन। **कार्श्यम्**—कृशस्य भाव: अर्थ में कृश + ष्यञ् = कार्श्य। **यशसा**—'सहयुक्तेऽप्रधाने' सूत्र से सह के योग में तृतीया विभक्ति हुई।

अलङ्कार—हेतु और सहोक्ति। हेतु अलङ्कार का लक्षण—

हेतोर्हेतुमता सार्धं वर्णनं हेतुरुच्यते।

कारण के साथ कार्य का कथन करने पर हेतु अलङ्कार होता है। इस पद्य में 'वन्यफलाशिन: ते वपु: कार्श्यं परैति' में कार्य कृशता के कारण वन्य फलों के खाने का कथन किया जाने से हेतु अलङ्कार है। **सहोक्ति** अलङ्कार का लक्षण—

सहोक्तिः सहभावश्चेद् भासते जनरञ्जनः ।

जहाँ मनोरञ्जक सहभाव का कथन किया जावे, वहाँ सहोक्ति अलङ्कार होता है । यहा 'यशसा सह ते वपुः' इस मनोरञ्जक सहभाव का कथन करने से सहोक्ति अलङ्कार है ।

छन्द—वंशस्थ ।

विशेष कथन—राजाओं का कर्त्तव्य है कि वे पहले ब्राह्मणों को भोजन कराकर उसके बाद स्वयं भोजन करें ।

घण्टापथ टीका—पुरेति । हे नृप ! यदेतत्पुरोवर्ति वपुः पुरा द्विजातिशेषेण द्विजभुक्तावशिष्टेनान्धसाऽन्नेन । 'भिक्षा स्त्री भक्तमन्धोऽन्नम्' इत्यमरः । रमणीयस्य भावो रामणीयकम् मनोहरत्वमुपनीतं प्रापितम् । नयतेर्द्विकर्मकत्वात् प्रधाने कर्मणि क्तः । प्रधानकर्मण्याख्येये लादीनाहुर्द्विकर्मणाम् इति वचनात् । अद्य वन्यफलाशिनस्ते तव तद्वपुर्यशसा समं परमतिमात्रं कार्श्यं परैति प्राप्नोति । उभयमपि क्षीयत इत्यर्थः । अत्र सहोक्तिरलङ्कारः । तदुक्तं काव्यप्रकाशे—'सा सहोक्तिः सहार्थस्य बलादेकं द्विवाचकम् इति ॥३९॥

प्रकरण—दुर्योधन के विरुद्ध युधिष्ठिर के क्रोध के भावों को उद्दीप्त करने के लिये द्रौपदी ने पहले उसके भाईयों–भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव की दुरवस्था का वर्णन करके उसकी स्वयं की बुरी अवस्था का वर्णन करना आरम्भ किया । वह उसकी दो अवस्थाओं, शयन, और भोजन को बताकर अब तीसरी दुर्दशा को बताती हैं—

अनारतं यौ मणिपीठशायिना-
वरञ्जयद्राजशिरःस्रजां रजः ।
निषीदतस्तौ चरणौ वनेषु ते
मृगद्विजालूनशिखेषु बर्हिषाम् ॥४०॥

अन्वयः—मणिपीठशायिनौ यौ राजशिरः स्रजाम् रजः अनारतम् अरञ्जयत् तौ ते चरणौ मृगद्विजालूनशिखेषु बर्हिषाम् वनेषु निषीदतः ॥४०॥

संस्कृत-व्याख्या—'मणिपीठशायिनौ' मणिजटितं पीठं मणिपीठं तस्मिन्

शयाते तिष्ठतः इति तौ मणिपीठशायिनौ मणिपीठस्थितौ इत्यर्थः 'यौ' इमौ पुरः दृश्यमानौ चरणौ 'राजशिरःस्रजां' राज्ञां प्रणमतां भूपतीनां शिरसा मस्तकानां स्रजां दाम्नां शिरोनिहितानां पुष्पमालानाम् इत्यर्थः 'रजः' परागः 'अरञ्जयत्' अलंचकार 'तौ' तादृशौ 'ते' तव 'चरणौ' पादौ 'मृगद्विजालूनशिखेषु' मृगैः हरिणैः द्विजैः ब्राह्मणैः च आलूनाः छिन्नाः शिखाः अग्रभागा येषां तेषां बर्हिषां' दर्भाणां 'वनेषु' अरण्येषु 'निषीदतः' स्थितिं लभेते ।

शब्दार्थ—**अनारतम्**=निरन्तर। **यौ**=जो। मणिपीठशायिनावरञ्जयद्राज-शिरःस्रजाम्। **मणिपीठशायिनौ**=मणिजटित पीठ पर रखे हुये। **अरञ्जयत्**=रंगा करता था। **राजशिरःसृजाम्**=राजाओं के सिरों की मालाओं का। **रजः**=पराग। निषीतः। **निषीदतः**=पड़ रहे हैं। **तौ**=वे दोनों। **चरणौ**=पैर। **वनेषु**=वनों में। **मृगद्विजालूनाशिखेषु**=हरिणों तथा तपस्वियों द्वारा काटे गये सिरों वाले। **बर्हिषाम्**=कुशाओं के।

हिन्दी अर्थ—मणिपीठ पर रखे हुए जिन तुम्हारे पैरों को प्रणाम करते हुये राजाओं के सिरों की मालाओं का पराग निरन्तर रंगा करता था, तुम्हारे वे ही पैर हरिणों और तपस्वियों द्वारा काटे गये सिरों वाले कुशों के वनों में पड़ रहे हैं ॥४०॥

भाव—जब आप राज सभा में बैठकर पैरों की मणियों के बने हुए पीठ पर रखा करते थे, उस समय आपके अधीनस्थ राजा आपको प्रणाम किया करते थे। राजाओं के मस्तकों पर धारण की हुई मालाओं का पराग आपके पैरों पर गिर जाता था और उससे आपके पैर रंग जाते थे। परन्तु आपको अब वनों में घूमना पड़ता है। इन वनों में नोकीली कुशायें उगी हुई हैं, जो हरिणियों द्वारा चलने के कारण और तपस्वियों द्वारा काट लिये जाने के कारण ऊपर के कोमल भाग के न रहने से और भी अधिक नोकीली हो गई है। आपके कष्टों का कोई अन्त दिखाई नहीं देता।

वाच्यपरिवर्तन—मणिपीठशायिनौ यौ राजशिरःस्रजां रजसां अनारतम् अरज्येतां ताभ्यां ते चरणाभ्यां मृगद्विजालूनशिखेपु बर्हिषां वनेषु निषद्यते ।

टिप्पणियाँ—**अनारतम्**—आ + √रम् + क्त=आरत । न + आरत= अनारत। नञ् तत्पुरुष समास। निरन्तर बने रहना। **मणिपीठशायिनौ**—मणि-

निर्मितं पीठं शाकपार्थिवादिनां सिद्धये उत्तर-पदलोपसंख्यानम्' नियम से समास होकर निर्मित का लोप होकर, मणिपीठम्। कर्मधारय समास। मणिपीठं शयितुं शीलं यस्य स अर्थ में मणिपीठ + √शी + णिनि = मणिपीठशायिन्। द्वितीया विभक्ति का द्विवचन = मणिपीठशायिनौ। **अरञ्जयत्**—√रञ्ज् धातु का लट्लकार प्रथम पुरुष का एकवचन। **निषीदतः**—नि + √सद् धातु का लट् लकार प्रथम पुरुष का द्विवचन। **वनेषु**—वन शब्द का सप्तमी विभक्ति का बहुवचन। **मृगद्विजालूनशिखेषु**—मृगाश्च द्विजाश्च मृगद्विजाः। द्वन्द्व समास मृगद्विजैः आलूनाः मृगद्विजालूनाः। तृतीय तत्पुरुष समास। मृगद्विजालूनशिखा येषु तेषु मृगद्विजालूनशिखेषु। बहुव्रीहि समास। द्वाभ्यां जन्मसंस्काराभ्यां जातः अर्थ में द्वि + √जन् = ड = द्विज। (आ + √लू + क्त = आलून)।

अलङ्कार—विषम और परिकर।

कहाँ तो फूलों की कोमलता और पराग की सुगन्धि के योग्य तुम्हारे चरण और कहाँ यह कुशाओं का नोकीलापन और वन की धूल। इस प्रकार परस्पर अनुरूप वस्तुओं की घटना का वर्णन करने से विषम अलङ्कार है।

'मृगद्विजालूनशिखेषु वनेषु' ने वन के मृगद्विजालूनशिखेषु इस विशेषण को विशेष अभिप्राय से कहा गया है। इससे वन में घूमने से पैरों में होने वाले अत्यधिक कष्ट का बोध होता है। विशेषण के साभिप्राय होने से परिकर अलङ्कार है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—वनों में रहना अत्यधिक कष्ट का कारण होता है। जिसको वहाँ रहने का अभ्यास नहीं है वे कष्ट को अत्यधिक अनुभव करते हैं।

घण्टापथ टीका—अनारतमिति। अनारतमजस्रं मणिपीठशायिनौ मणिमय-पादपीठशायिनौ यौ चरणौ राजशिरः स्रजां नमद्भूपालमौलिस्रजां रजः परागोऽरञ्जयत्, तौ ते चरणौ मृगैः द्विजैश्च तपस्विभिरालूनशिखेषु छिन्नाग्रेषु बर्हिषां कुशानाम्। 'बर्हिः कुशहुताशयोः' इति विश्वः। वनेषु निषीदतस्तिष्ठतः ॥४०॥

प्रकरण—दुर्योधन के विरुद्ध युधिष्ठिर के भावों को उद्दीप्त करती हुई द्रौपदी कह रही है कि हे राजन्! इस प्रकार आपके छोटे भाइयों और स्वयं

आपकी इस दुर्योधन के कारण वनों में यह दुर्दशा हो रही है। आपकी इस दशा के शत्रुओं द्वारा किये जाने के कारण ही मुझको अत्यधिक दुःख होता है—

द्विषन्निमित्ता यदियं दशा ततः
समूलमुन्मूलयतीव मे मनः।
परैरपर्यासितवीर्यसम्पदां
पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम् ॥४१॥

अन्वयः—यत् इयम् दशा द्विषन्निमित्ता ततः मे मनः समूलम् उन्मीलयति इव। परैः अपर्यासितवीर्यसम्पदाम् मानिनाम् पराभव अपि उत्सव एव ॥२१॥

संस्कृत-व्याख्या—'यत्' यस्मात् कारणात् 'इयम्' एषा ते 'दशा' दुरवस्था 'द्विषन्निमित्ता' द्विषन्तः शत्रवः एव निमित्त हेतु यस्याः तादृशी वर्तते 'ततः' तस्मात् कारणात् एव इयं 'मे' मम 'मनः' चित्तं 'समूलं' सम्पूर्णरूपेण 'उन्मूलयति इव' समुत्पाटयति इव। 'परैः' शत्रुभिः 'अपर्यासितवीर्यसम्पदां' पर्यासिता न समापिता वीर्यस्य शौर्यस्य सम्पद् सम्पत्ति येषां 'मानिनां मनस्विनां 'पराभवः' पराजयः अपि 'उत्सवः एव' हर्षस्य कारणम् एव। पराक्रमं प्रदर्शयता यदि पराजयः भवेत् तत्र न शोकस्य अवसरः। युद्धे जयः पराजयो वा भवत्येव। परं युद्धं विनैव कातरत्वेन यत् शत्रुभिः तिरस्कारः तदेव मे मन व्यथयति इति भावः।

शब्दार्थ—**द्विषन्निमित्ता** = शत्रुओं के कारण उत्पन्न। यदियम्। **यत्** = जो। **इयम्** = यह। **दशा** = अवस्था। **ततः** = इसलिये। समूलमुन्मूलयतीव। **समूलम्** = जड़ से। **उन्मूलयति इव** = मानों उखाड़ रही है। **मे** = मेरा। **मनः** = मन। **परैरपर्यासितवीर्यसम्पदाम** = **परैः** = शत्रुओं द्वारा। **अपर्यासितवीर्यसम्पदाम्** = नहीं समाप्त की जा सकती है, शौर्य की सम्पत्ति, ऐसे। पराभवोऽप्युत्सवः। **पराभवः** = पराजय। **अपि** = भी। **उत्सवः** हर्ष। **एव** = ही। **मानिनाम्** = स्वाभिमानियों का।

हिन्दी अर्थ—क्योंकि तुम्हारी यह बुरी अवस्था शत्रुओं द्वारा उत्पन्न की गई है, इसीलिये वह मेरे मन को मानो जड़ से उन्मूलित कर रही है। जिसकी शौर्य की सम्पत्ति को शत्रु समाप्त नहीं कर सके, उन स्वाभिमानी व्यक्तियों की पराजय भी हर्ष का ही कारण होती है ॥४१॥

भाव—यद्यपि सभी प्राणियों पर विपत्ति का आना स्वाभाविक है, तथापि हम पर यह आपत्ति स्वाभाविक रूप से नहीं आई है। यदि यह स्वाभाविक रूप से आई होती तो मेरे मन को इतना कष्ट नहीं होता। यह विपत्ति हम पर शत्रुओं द्वारा लाई गई है और आपने कायरतावश इसका प्रतिकार नहीं किया। इसलिये मेरे मन में इतनी अधिक पीड़ा है। युद्ध में हारना और जीतना तो क्षत्रियों के लिये होता ही रहता है। यदि पराक्रम को प्रदर्शित करते हुये हार हो जावे, तो इससे कोई शोक की बात नहीं है, परन्तु पौरुषहीनता के कारण होने वाली पराजय तीव्रदुःख का कारण होती है।

वाच्यपरिवर्तन—यद् अनया दशया द्विषन्निमित्तया भूयते ततः मे मनः समूलम् उन्मूल्यते। परैः अपर्यासितवीर्यसम्पदां मानिनां पराभवेन अपि उत्सवेन इव (भूयते)।

टिप्पणियाँ—द्विषन्निमित्ता—द्विषन्तः एव निमित्तं यस्या सा। बहुव्रीहि समास। √द्विष् + शतृ = द्विषत्। नि + √मिद् + क्त = निमित्त। ततः = तद् सर्वनाम शब्द से पञ्चमी विभक्ति के अर्थ में तसिल् प्रत्यय। तद् + तसिल्। समूलम्—मूलेन सह वर्तमानः यः समूलः। बहुव्रीहि समास। तद् तथा स्यात् तथा समूलम्। यह क्रियाविशेषण है। अपर्यासितवीर्यसम्पदाम्—न पर्यासिता अपर्यासिता। नञ् तत्पुरुष समास। वीर्यस्य सम्पत् = वीर्यसम्पत्। षष्ठी तत्पुरुष समास। अपर्यासिता वीर्यसम्पद् येषां तेषाम् अपर्यासितवीर्यसम्पदाम् बहुव्रीहि समास : परि + √आस् + णिच् + क्त = पर्यासित। सम् + √पद् + क्विप् = सम्पत्। पराभवः—परा + √भू + अच्। उत्सवः—उत् + √सू + अप्। मानिनाम्—मानः अस्य अस्ति अर्थ में मान + णिनि = मानिन्। षष्ठी विभक्ति का बहुवचन = मानिनाम्।

अलङ्कार—उत्प्रेक्षा और अर्थान्तरन्यास।

उपमेय के स्थान पर उपमा की सम्भावना करने से उत्प्रेक्षा अलङ्कार होता है। यहाँ बहुत अधिक पीड़ित कर रही है, इस क्रिया के स्थान पर मानो जड़ से उन्मूलित कर रही है, इस क्रिया की सम्भावना किये जाने से क्रिया-उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

'शत्रुओं द्वारा उत्पन्न की गई दशा मेरे मन को अत्यधिक पीड़ित कर रही है' इस विशेष का समर्थन 'शत्रुओं द्वारा अप्रतिहत शौर्य वाले स्वाभिमानियों

की पराजय भी हर्ष के कारण है', इस सामान्य से वैधर्म्य द्वारा किये जाने से यहाँ **अर्थान्तरन्यास** अलङ्कार है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—क्षत्रियों का धर्म वीरतापूर्वक युद्ध करना है। पौरुष का प्रदर्शन करते हुये उनका पराजित हो जाना भी दुःखद नहीं होता, जितना कि कायरतापूर्वक पलायन कर जाना होता है।

घण्टापथ टीका—द्विषदिति। यद्यतः कारणादियं दशाऽवस्था। दशा वर्त्तावस्थायाम्' इति विश्वः। द्विषन्तो निमित्तं यस्याः। 'द्विषोऽमित्रे' इति शतृप्रत्ययः। अतो मे मनः समूलं साशयमुन्मूलयतीवोत्पाटयतीव। दैवकी त्वापन्नदुःखायेत्याह—परैरिति। परैः शत्रुभिरपर्यासिताऽपर्यावर्त्तिता वीर्यसंपद्येषां तेषां मानिनां मानहानिर्दुःसहा, न त्वापदिति भावः ॥४१॥

प्रकरण—दुर्योधन के प्रति युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीप्त करने का प्रयत्न करती हुई द्रौपदी ने चारों भाइयों और उसके बाद स्वयं युधिष्ठिर की दुर्दशाओं का वर्णन करके बताया है कि क्षत्रियों के लिये कायरतापूर्वक पराजय स्वीकार कर लेने से बड़ा दुःख दूसरा नहीं है। अब वह राजधर्म को बताती है—

विहाय शान्तिं नृप ! धाम तत्पुनः
प्रसीद संधेहि वधाय विद्विषाम्।
व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहाः
शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः ॥४२॥

अन्वयः—नृप ! शान्तिं विहाय विद्विषां वधाय तद् धाम-पुनः सन्धेहि। प्रसीद। निःस्पृहाः मुनयः शमेन शत्रून् अवधूय सिद्धिम् व्रजन्ति न भूभृतः ॥४२॥

संस्कृत-व्याख्या—'नृप' ! हे राजन् ! 'शान्तिं' शमं 'विहाय' परित्यज्य 'विद्विषां' शत्रूणां 'वधाय' विनाशाय 'तद्' पूर्वं प्रसिद्धं 'धाम' तेजः 'पुनः' भूयः 'सन्धेहि' स्वीकुरु। 'प्रसीद' प्रसन्नो भव। 'निःस्पृहाः' निष्कामा, 'मुनयः' तपस्विनः 'शमेन' शमो दमः इत्यादिगुणैः क्रोधवर्जनेन इति भावः 'शत्रून्' कामादीन् षड्रिपून् 'अवधूय' विजित्य 'सिद्धिं' सफलतां 'व्रजन्ति' गच्छन्ति परैः

'भूभृत:' राजानः 'शमेन' शान्त्या रिपून् अवधूय सिद्धि न व्रजन्ति । शान्तिमवलम्ब्य वयं शत्रून् जेष्यामः' इति तु न अस्माकं धर्मः परन्तु मुनीनामेवैष धर्मः । राज्ञां तु पौरुषावलम्बनमेव धर्मः ।

शब्दार्थ—विहाय=छोड़कर । **शान्तिम्**=शान्ति को । **नृप**=हे राजन् । **धाम**=तेज । **तत्**=उस । **पुनः**=फिर । **प्रसीद**=प्रसन्न होइये । **संधेहि**=स्वीकार कीजिये । **वधाय**=वध करने के लिये । **विद्विषाम्**=शत्रुओं का । **व्रजन्ति**=प्राप्त करते हैं । शत्रूनवधूय । **शत्रून्**=शत्रुओं को । **अवधूय**=जीत कर । **निःस्पृहाः**=कामनाओं से रहित । **शमेन**=शम आदि गुणों से । **सिद्धिम्**=सफलता को । **मुनयः**=मुनिजन । **भूभृतः**=राजा ।

हिन्दी अर्थ—हे राजन् ! शान्ति को छोड़कर शत्रुओं का वध करने के लिये आप उस तेज को पुनः स्वीकार कीजिये । आप प्रसन्न होइये । कामनाओं से रहित मुनिजन शम आदि गुणों से शत्रुओं को जीतकर सफलता को प्राप्त करते हैं, परन्तु राजा शान्ति को स्वीकार करके सफलता प्राप्त नहीं कर सकते ।।४२।।

भाव—इसलिये हे राजन् ! क्षात्रधर्म का विचार करते हुए आपको शान्ति की नीति का परित्याग कर देना चाहिये और युद्ध करने के लिये तत्पर हो जाना चाहिए । इसी में आपकी हमारे लिये प्रसन्नता है । यह मुनियों का ही काम है कि वे अपकार करने वाले व्यक्तियों के प्रति भी शान्ति और स्नेह का व्यवहार करें । राजाओं का कार्य तो पौरुष का प्रदर्शन करते हुए शत्रुओं को नष्ट कर देना है ।

वाच्यपरिवर्तन—नृप ! शान्ति विहाय विद्विषां वधाय भवता तद् धाम पुनः सन्धातव्यम्, प्रसीदितव्यम् । निःस्पृहः मुनिभिः शमेन शत्रवः अवधूय सिद्धिः व्रज्यते न भूभृद्भिः ।

टिप्पणियाँ—शान्ति—√शम्+क्तिन् । **विहाय**—वि+√हा+क्त्वा (ल्यप्) । **प्रसीद**—प्र+√सद् धातु का लोट् लकार मध्यम पुरुष का एकवचन । **सन्धेहि**—सम्+√धा धातु का लोट् लकार मध्यम पुरुष का एकवचन । **धाम**—दधाति इदम् अथवा धीयते अनेन अर्थ में √धा+मनिन्=धामन् । नपुंसकलिंग में प्रथमा विभक्ति का एकवचन=धाम । **विद्विषाम्**—वि+√द्विष्+क्विप्=विद्विष् । षष्ठी विभक्ति का बहुवचन=विद्विषाम् ।

शत्रून्—√ शद् + क्रुन = शत्रु । द्वितीया विभक्ति का बहुवचन = शत्रून् ! **अवधूय** = अव + √ धू । क्त्वा (ल्यप्) । **निस्पृहाः**—निरस्ता स्पृहा येषां ते । बहुव्रीहि समास । √ स्पृह् + अ + टाप् = स्पृहा । **सिद्धिम्** = √ सिध् + क्तिन् । **मुनयः**—मनुते जानाति अर्थ में √ मन् + इन् (अ को उ आदेश) = मुनि । प्रथमा विभक्ति का बहुवचन = मुनयः । **भूभृतः**—भुव बिभर्ति अर्थ में भू + भृ + क्विप् = भूभृत् । प्रथमा विभक्ति का बहुवचन = भूभृतः ।

अलङ्कार—अर्थान्तरन्यास और परिसंख्या ।

हे राजन् ! आप शान्ति को छोड़कर शत्रुओं के विनाश के लिये तेज को स्वीकार कीजिये', इस विशेष का 'राजा शान्ति द्वारा सफलता को प्राप्त नहीं करते' इस सामान्य द्वारा समर्थन किया जाने से **अर्थान्तरन्यास** अलङ्कार है ।

परिसंख्या अलङ्कार का लक्षण—

परिसंख्या निषिध्यैकमन्यस्मिन् वस्तुयन्त्रणम् ।

एक में निषेध करके दूसरी वस्तु की स्थापना करने से परिसंख्या अलङ्कार होता है । शम का राजा में निषेध करके मुनियों में स्थापना करने से परिसंख्या अलङ्कार है ।

छन्द—वंशस्थ ।

विशेष-कथन—राजाओं का शासन तेजस्विता से ही बना रह सकता है, शान्ति को धारण करने से नहीं । प्रजा का पालन, राज्य की सुरक्षा और शत्रुओं का विनाश क्षात्रतेज से ही सम्भव है ।

घण्टापथ टीका—विहायेति । हे नृप ! शान्ति विहाय तत्प्रसिद्धं धाम तेजो विद्विषां वधाय पुनः सन्धेह्यङ्गीकुरु प्रसीद । प्रार्थनायां लोट् । ननु शमेन कार्यसिद्धौ किं क्रोधेनेत्यत्राह—व्रजन्तीति । निःस्पृहा मुनयः शत्रूनवधूय निर्जित्य शमेन क्रोधवर्जनेन सिद्धिं व्रजन्ति । भुभृतस्तु न । कैवल्यकार्यं वद्राजकार्यं न शान्तिसाध्यमित्यर्थः ।।४२।।

प्रकरण—युधिष्ठिर की क्षात्र भावनाओं को उद्दीप्त करने के लिये द्रौपदी दुर्योधन द्वारा किये जाने वाले अपमानों और कष्टों का वर्णन कर वह पाँचों भाइयों की दुर्दशा का वर्णन करके कहती है कि आपको क्षत्रिय राजाओं के

योग्य व्यवहार करना चाहिए। शान्ति राजाओं का कार्य नहीं। अब वह युधिष्ठिर की शान्त वृत्ति पर पुनः व्यंग्य करती है—

पुरः सराः धामवतां यशोधनाः
सुदुःसहं प्राप्य निकारमीदृशम्।
भवादृशाश्चेदधिकुर्वते रतिं
निराश्रया हन्त ! हता मनस्विता ॥४३॥

अन्वयः—धामवताम् पुरस्सराः यशोधनाः भवादृशाः ईदृशम् सुदुःसहम् निकारम् प्राप्य चेत् रतिम् अधिकुर्वते, हन्त निराश्रया मनस्विता हता ॥४३॥

संस्कृत-व्याख्या—'धामवतां' धाम तेजः एवां अस्ति इति तेषां तेजस्विनां 'पराभवम्' असहमानानाम् इति भावः 'पुरःसुरा' पुरः अग्रे सरन्ति यान्ति इति ते अग्रयायिनः इति भावः यशोधनाः' यशः एव कीर्तिः एव धनं वित्तं येषां ते 'भवादृशाः' भवद्विधाः 'ईदृशम्' एवंविधं 'सुदुःसहम्' अत्यन्तम् असह्यं 'निकारम्' अपमानं 'प्राप्य' अधिगम्य 'चेद्' यदि 'रतिं' सन्तोषम् 'अधिकुर्वते' आश्रयन्ति, 'हन्त इति खेदे 'निराश्रया' निरस्तः आश्रयः शरणं यस्याः तथाभूता मनस्विता' स्वाभिमानिता 'हता' विनष्टा। यदि भवादृशाः तेजस्विनः क्षत्रियाः अपि शत्रुकृतम् अपमानं सहन्ते, मनस्विता विनष्टा भविष्यति अतः शान्तिं परित्यज्य शत्रुविनाशाय क्षात्रं तेजः सन्धेहि इति भावः।

शब्दार्थ—पुरःसरा = अग्रणी। **धामवताम्** = तेजस्वियों में। **यशोधनाः** = यश को ही धन मानने वाले। **सुदुःसहम्** = अत्यन्त असह्य। **प्राप्य** = प्राप्त करके। निकारमीदृशम्। **निकारम्** = अपमान को। **ईदृशम्** = इस प्रकार के। भवादृशाश्चेदधिकुर्वते। **भवादृशाः** = आप जैसे। **चेत्** = यदि। **अधिकुर्वते** = आश्रय लेते हैं। रतिम् = सन्तोष का। निराश्रया = आश्रय से रहित। **हन्त** = खेद है। हता = नष्ट हो गई। मनस्विता = स्वाभिमानिता।

हिन्दी अर्थ—तेजस्वियों में अग्रणी, यश को ही धन समझने वाले आप जैसे व्यक्ति इस प्रकार अत्यन्त असह्य लाञ्छन को पाकर यदि सन्तोष का आश्रय लेते हैं, तो बड़ा खेद है कि स्वाभिमानिता आश्रयहीन होकर नष्ट हो गई ॥४३॥

भाव—आप तेजस्वियों में अग्रणी है। आप यश को धन मानते हैं। अतः

आपके लिये इस प्रकार का अपमान सहन करना उचित नहीं है। यदि आप जैसे तेजस्वी और बलशाली व्यक्ति भी शत्रुओं द्वारा किये गये अपमानों को सहन करते रहेंगे, तो और कौन व्यक्ति अत्याचारों का अन्त करेगा। अतः शान्ति को छोड़कर तथा क्षात्र तेज को स्वीकार करके शत्रुओं को परास्त करने के लिये तैयार हो जाइये।

वाच्यपरिवर्तन—धामवतां पुरःसरैः यशोधनैः भवादृशैः सुदुस्सहं निकारं प्राप्य चेद् रतिः अधिक्रियते हन्त निराश्रया मनस्वितया हतम्।

टिप्पणियाँ—**पुरःसराः**—पुरः सरन्ति इति पुरःसराः। पूर्व + असि = पुरस्। √सृ + अच् = सर। **धामवताम्** = धाम अस्य अस्ति अर्थ में धाम + मतुप् = धामवत्। षष्ठी विभक्ति का बहुवचन = धामवताम्। **यशोधनाः**—यशः एव धनं येषां ते बहुव्रीहि समास। **सुदुस्सहम्**—दुःखेन सह्यम् दुस्सहम्। अत्यन्तं दुस्सहम् सुदुस्सहम्। √दुर् + सह + खल् = दुस्सह। **प्राप्य**—प्र + आप् + क्त्वा (ल्यप्)। **निकारम्**—नि + √कृ + घञ् = निकार। **ईदृशम्**—इदम् इवदृश्यते अथवा इदम् इव पश्यन्ति एवम् अर्थ में इदम् + √दृश् + क 'इदं किमोरीश्किः' सूत्र से इदम् को, ई आदेश = ईदृश। **भवादृशाः** = भवान् इव दृश्यन्ते अथवा भवन्तम् इव पश्यन्ति एनम् अर्थ में भवत् + √दृश + क = भवादृश। **अधिकुर्वते**—अधि + √कृ धातु से आत्मनेपद में लट् लकार प्रथमा का बहुवचन। यहाँ क्रिया रति को धारण करने का प्रभाव कर्त्ता पर पड़ने से आत्मनेपद हुआ। **रतिम्**—√रम् + क्तिन् = रति। द्वितीया विभक्ति का एकवचन = रतिम्। **निराश्रया**—निरस्तः आश्रयः यस्याः सा। बहुव्रीहि समास। आ + √श्रि + अच् = आश्रयः। **हन्त**—अव्यय है। इसका प्रयोग आश्चर्य, शोक, हर्ष आदि आवेगों को प्रकट करने के लिये किया जाता है। **हता**—√हन् + क्त + टाप्। **मनस्विता**—प्रशस्तं मनः यस्य अस्ति अर्थ में मनस् + विनि = मनस्विन्। मनस्विनः भावः अर्थ में मनस्विनः + तल + टाप् = मनस्विता।

अलङ्कार—**परिकर**।

धामवतां पुरः सराः और यशोधनाः, इन विशेषणों का प्रयोग इस अभिप्राय से किया गया है, क्योंकि इस प्रकार के व्यक्ति अपमान को भी सहन नहीं करते,

अतः इस प्रकार कहने पर युधिष्ठिर निश्चय ही अपमान का प्रतिशोध लेगा, ऐसी आशा की जा सकती है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—तेजस्वी और मनस्वी मनुष्य अपमान को सहन नहीं कर सकते।

घण्टापथ टीका—पुर इति। किं च धामवतां तेजस्विनाम्। परनिकारासहिष्णूनाम् इत्यर्थः। पुरः सरन्तीति पुरः सराः अग्रेसराः। पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्तेः इति ट प्रत्ययः। यशोधूना भवादृशाः सुदुःसहमतिदुःसहमीदृशमुक्तमुक्तप्रकारं निकारं पराभवं प्राप्य रतिं सन्तोषमधिकुर्वते चेर्ताहि हन्त इति खेदे। मनस्विता ऽभिमानिता निराश्रया सती हता। तेजस्विजनैकशरणत्वात्मनस्वितायाः इत्यर्थः। अतः पराक्रमितव्यमिति भावः। यद्यप्यत्र प्रहसनस्यासङ्गतेरधि पूर्वात्करोतेः 'अधेः प्रहसने इत्यात्मनेपदं न भवति, 'प्रहसनं परिभवः' इति काशिका, तथाऽप्यस्याः कर्त्रभिप्रायविवक्षायामेव प्रयोजकत्वात्कर्त्रभिप्राये 'स्वरितञितः'— इत्यात्मनेपदं प्रसिद्धम् ॥४३॥

प्रकरण—युधिष्ठिर की क्षात्र भावनाओं को उद्दीप्त करने के लिये द्रौपदी ने उसके द्वारा किये जाने वाले अपमानों और कष्टों का विस्तार से उल्लेख करके कहा कि आपको क्षत्रिय राजाओं के कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये और शान्ति का परित्याग करके अपमान का प्रतिशोध लेना चाहिये। फिर वह कहती है कि यदि आप क्षमा को ही उचित समझते हैं तो—

अथ क्षमामेव निरस्तविक्रम-
श्चिराय पर्येषि सुखस्य साधनम्।
विहाय लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुकं
जटाधरः सञ्जुहुधीह पावकम् ॥४४॥

अन्वयः—अथ निरस्तविक्रमः क्षमाम् एव चिराय सुखस्य साधनम् पर्येषि लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुकम् विहाय जटाधरः इह पावकम् सञ्जुहुधि ॥४४॥

संस्कृत-व्याख्या—'अथ' यदि त्वं 'निरस्तविक्रमः' निरस्तः समाप्तः विक्रमः शौर्यं यस्य तथाभूतः निर्वीर्यः सन् 'क्षमां' शान्तिम् एव 'चिराय' चिरकालं यावद्

'सुखस्य' आनन्दस्य 'साधनं' कारणं 'पर्येषि' मन्यसे। क्षमा एव सुखसाधनहेतुः इति त्वम् अवगच्छसि, क्षात्रं तेजः समालम्ब्य प्रतिशोधं न करोषि इति भावः। तदा लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुकं' लक्ष्मीः राज्यश्री तस्याः पतिः स्वामी राजा तस्याः लक्ष्मं चिह्नं यस्मिन् तादृशं कार्मुकं धनुः 'विहाय' परित्यज्य 'जटाधरः' जटिलः सन् 'इह' अस्मिन् वने 'पावकम्' अग्निं 'सञ्जुहुधि' सम्यक् प्रकारेण हवनं कुरु आहवस्व इत्यर्थः। राजचिह्नानि परित्यज्य तपस्विनां चिन्हानि धारणीयानि इत्यर्थः।

शब्दार्थ—**अथ**=यदि। क्षमामेव। **क्षमाम्**=क्षमा को। **एव**=ही। निरस्तविक्रमश्चिराय। **निरस्तविक्रमः**=निर्वीर्य होकर। **चिराय**=चिरकाल तक। **पर्येषि**=समझते हो। **सुखस्य**=सुख का। **साधनम्**=साधन। **विहाय** =छोड़कर। **लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुकम्** = राजचिन्हों से अंकित धनुष। **जटाधरः** =जटाओं को धारण करने वाला। सञ्जुहुधीह। **सञ्जुहुधि** =हवन करो। **इह** =इस वन में **पावकम्** = अग्नि।

हिन्दी अर्थ—यदि तुम निर्वीय होकर क्षमा को ही चिरकाल तक सुख का साधन समझते हो, तो राजचिह्नों से अङ्कित धनुष को छोड़कर जटाओं को धारण करके वन में अच्छी प्रकार से हवन करो ॥४४॥

भाव—यदि तुम में क्षात्र तेज समाप्त हो गया है, तुम प्रतिशोध लेने में असमर्थ हो और क्षमा करने को ही सदा के लिये सुख प्राप्त करने का साधन समझते हो; तो इन राजचिन्हों को धारण करने की आवश्यकता ही क्या है। विरक्त को इस धनुप से क्या लेना है। इसे तुम त्याग दो और जटाओं को धारण कर लो तथा यहीं वन में हवन करते रहो।

वाच्यपरिवर्तन—अथ निरस्तविक्रमेण त्वया क्षमा एव चिराय सुखस्य साधनं पर्येष्यते, लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुकं विहाय जटाधरेण इह पावकः संवहनीयः।

टिप्पणियाँ—**क्षमाम्**—√क्षम् + अङ् + टाप् =क्षमा। द्वितीया विभक्ति का एकवचन=क्षमाम्। **निरस्तविक्रमः**—निःशेषेण अस्तः विक्रमः यस्य सः। बहुव्रीहि समास। निर् + √अस् + √क्त=निरस्त। वि + क्रम + घञ् = विक्रम **चिराय**—चिरेण अथते अर्थ में चिर् + √अय् + अण्। **पर्येषि**—परि + √इण् धातु से लट् लकारमध्यमपुरुष का एकवचन। **साधनम्**—√साध + ल्युट् (अन)। **विहाय**—वि + √क्त्वा (ल्यप्)। **लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुकम्**—लक्ष्म्याः

पतिः लक्ष्मीपतिः। षष्ठी तत्पुरुष समास। लक्ष्मीपतेः लक्ष्म यस्मिन् तत् लक्ष्मीपति लक्ष्मम्। बहुब्रीहि समास। लक्ष्मीपतिलक्ष्मं च तत् कार्मुकम् लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुकम्। कर्मधारय समास। लक्षयति पश्यति उद्योगिनं अर्थ में √लक्ष् + ई (मुट् का आगम) = लक्ष्मी। पाति रक्षति अर्थ में √पा + डति = पति। लक्षति चिह्नयति अर्थ में √लक्ष् + मनिन् = लक्ष्मन्। कर्मणे प्रभावित अर्थ में कर्म + उकञ् = कार्मुक। जटाधरः—जटाः धरति अर्थ में जटा + √धृ + अच् = जटाधर। सज्जुहुधि —सम् + हु धातु से लोट् लकार मध्यम पुरुष का एकवचन। पावकम्—पुनाति पवित्रं करोति अर्थ में √पू + ण्वुल (अक) पावक। द्वितीया विभक्ति का एकवचन = पावकम्।

अलङ्कार—अनुप्रास और परिकर।

'लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुकम्' में लक्ष्मी और लक्ष्म में अनेक वर्णों का एक बार सादृश्य होने के कारण यह वृत्ति अनुप्रास है।

इस पद में युधिष्ठिर के लिये 'निरस्तविक्रमः' और 'जटाधरः' विशेषणों का प्रयोग अभिप्राय से गर्भित है। प्रशस्त क्षत्रिय राजवंश में उत्पन्न युधिष्ठिर के लिये इन शब्दों का प्रयोग उसकी क्रोधाग्नि को भड़काने के लिये किया गया है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—क्षमा गुण संसार में विरक्त और मोक्ष साधना में लगे हुए तपस्वियों के लिए हो सकता है। राजा के लिये क्षमा गुण का आश्रय न लेकर शत्रुओं के प्रति पराक्रम का प्रदर्शन करना ही योग्य है।

घण्टापथ टीका—अथेति। अथ पक्षान्तरे निरस्तविक्रमः सन्। चिराय चिरकालेनापि क्षमां क्षान्तिमेव। 'क्षितिक्षान्त्योः क्षमा' इत्यमरः। सुखस्य साधनं पर्येष्यवगच्छसि तर्हि लक्ष्मीपतिलक्ष्म राजचिह्नं कार्मुकं विहाय। धरतीति धरः। पचाद्यच्। जटानां धरो जटाधरः सन्निह वने पावकं जुहुधि। पावके होमं कुर्वित्यर्थः। अधिकरणे कर्मत्वोपचारः। विरक्तस्य किं धनुषा इत्यर्थः। 'हुझल्भ्यो हेर्धिः'॥४४॥

प्रकरण—युधिष्ठिर के क्षात्र तेज को उद्दीप्त करने और उसकी प्रतिशोध लेने की भावनाओं को भड़काने के लिये द्रौपदी ने पहले दुर्योधन द्वारा दिये

जाने वाले कष्टों और अपमानों का वर्णन किया। उसके बाद उसने क्षत्रिय राजाओं के लिये योग्य कर्त्तव्यों का उपदेश दिया। अब वह प्रतिज्ञा के भय से डरने वाले युधिष्ठिर से कहती है—

न समयपरिरक्षणं क्षमं ते
निकृतिपरेषु परेषु भूरिधाम्नः।
अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशाः
विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि ॥४५॥

अन्वयः—परेषु निकृतिपरेषु भूरिधाम्नः ते समयपरिरक्षणम् क्षमम् न। हि विजयार्थिनः क्षितीशाः अरिषु सोपधि सन्धिदूषणानि विदधति।

संस्कृत-व्याख्या—'परेषु शत्रुषु' 'निकृतिपरेषु' निकृतिः अपमानं नीचता अपकारो या तत्परेषु सत्सु शत्रुषु कपटमार्गेण अपकारं कुर्वत्सु इति भावः 'भूरिधाम्नः' भूरि महत् धाम तेजः यस्य तस्य प्रतिशोधसमर्थस्य इत्यर्थः ते' तव युधिष्ठिरस्य 'समयपरिरक्षणं' समयस्य प्रतिज्ञायाः परिरक्षणं परिपालनं कालस्य प्रतीक्षणं वा 'न क्षमं' न युक्तम्। 'हि' निश्चयेन 'विजयार्थिनः' विजस्य जयस्य अर्थिनः अभिलाषिणः 'क्षितीशा' 'राजनः 'अरिषु' शत्रुषु सोपधि उपधि कपटं तेन सह सोपधि सकपटम् इति भावः 'सन्धिदूषणानि' सन्धिभङ्गदोषान् विदधति' आरोपयन्ति। विजय एव राज्ञां प्रधानलक्ष्यम्। यदा शत्रवः कपटाचरणं कुर्वन्ति तदा तेजस्विनः समर्थाः राजानः शत्रुषु सकपटं सन्धिभङ्गदोषान् आरोप्य स्वयमेव आक्रमणं कुर्वन्ति इति भावः।

शब्दार्थ—**समयपरिरक्षणम्**=प्रतिज्ञा का पालन करना। **क्षमम्**=उचित। **निकृतिपरेषु**=अपमान या धूर्तता का व्यवहार करने वाले। **परेषु**=शत्रुओं द्वारा। **भूरिधाम्नः**=अत्यधिक तेजस्वी। **अरिषु**=शत्रुओं पर। **विजयार्थिनः**=विजय को चाहने वाले। **क्षितीशाः**=राजा। **विदधति**=आरोपित करते हैं। **सोपधि**=कपट के साथ। **सन्धिदूषणानि**=सन्धिभंग के दोषों को।

हिन्दी अर्थ—शत्रुओं द्वारा धूर्तता और अपमान का व्यवहार करने पर अत्यधिक तेजस्वी तुम्हारे लिये प्रतिज्ञा पालन करना उचित नहीं। क्योंकि विजय को चाहने वाले राजा शत्रुओं पर कपट के साथ सन्धिभंग के आरोप लगा देते हैं ॥४४॥

भावार्थ—प्रतिज्ञा का भङ्ग होगा इस पाप से आप डरते हैं, इसलिये युद्ध का आश्रय नहीं ले रहे हैं। परन्तु राजनीति में प्रतिज्ञा का विशेष महत्व नहीं होता। यहाँ शक्ति और विजय का ही महत्व है। विजय पाने वाले राजा शत्रु को कमजोर देखकर उस पर कोई भी झूठा आरोप लगाकर सन्धि तोड़ देते हैं और उस पर आक्रमण कर देते हैं। फिर दुर्योधन तो आपके प्रति कपट का आचरण कर रहा है। इसलिए उसके साथ की गई प्रतिज्ञा की रक्षा करने का कोई औचित्य नहीं है। बारह वर्षों के बनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास की प्रतिज्ञा की रक्षा करना और उस समय की प्रतीक्षा करते रहना आपके लिये उचित नहीं है। आपको शत्रुओं से प्रतिशोध लेने और उनके द्वारा किये जाने वाले षड्यन्त्र का प्रतिकार करने के लिए तुरन्त सन्नद्ध हो जाना चाहिये।

वाच्यपरिवर्तन—परेषु निकृतिपरेषु भूरिधाम्नः ते समयपरिरक्षणं क्षमं न हि विजयार्थिभि क्षितिशैः अरिषु सोपधिसन्धिदूषणानि विधीयन्ते।

टिप्पणियाँ—**समयपरिरक्षणम्**–समयस्य परिरक्षणम्। षष्ठी तत्पुरुष समास। सम् + √इ + अच् = समय। परि + √रक्ष् + ल्युट् (अन्) = परिरक्षण। **क्षमम्**—क्षम् + अच् = क्षम। **निकृतिपरेषु**—निकृतिः परम् एषाम् तेषु। बहुव्रीहि समास। नि + √कृ + क्तिन् = निकृति। **भूरिधाम्नः**—भूरि धाम येषां तेषाम्। बहुव्रीहि समास। **अरिषु**—√ऋ + इन् = अरि। सप्तमी विभक्ति का बहुवचन = अरिषु। **विजयार्थिनः**—विजयस्य अर्थिनः। षष्ठी तत्पुरुष समास। वि + √जि + अच् = विजय। अर्थ + इनि = अर्थिन् प्रथमा विभक्ति का बहुवचन = अर्थिनः। **क्षितीशाः**—क्षितेः ईशाः। षष्ठी तत्पुरुष समास। √क्षि + क्तिन् —क्षितिः। **सोपधि**—उपाधिना सह सोपधि। यह क्रिया विशेषण है। उप + √धा + कि = उपधि। **सन्धिदूषणानि**—सन्धेः दूषणानि। षष्ठी तत्पुरुष समास। सम् + √धा + कि = सन्धि। √दुष् + णिच् + ल्युट् (अन)—दूषण। **विदधति**—वि + √धा धातु लट् लकार प्रथमा बहुवचन।

अलङ्कार—**अर्थान्तरन्यास।**

इस पद्य में 'तुम्हारे लिये प्रतिज्ञा का पालन करना उचित नहीं है' इस विशेषण का समर्थन 'विजय को चाहने वाले राजा शत्रुओं पर सन्धिभंग के आरोप लगा देते हैं' इस सामान्य से किया जाने के कारण अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

इस पद्य में पुष्पिताग्रा छन्द है। लक्षण नीचे है—

अयुजि नयुगरेफतोयकारो।
युजि च नजौ जरगाश्चपुष्पिताग्रा॥

विषम पादों—प्रथम और तृतीय में नगण (।।।), नगण (।।।), रगण् (ऽ।ऽ) और सगण (।ऽऽ) होने पर और सम पादों—द्वितीय और चतुर्थ में नगण (।।।), जगण (।ऽ।), जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ) एवं अन्तिम गुरु होने पर पुष्पिताग्रा छन्द होता है। इस श्लोक में यही स्थिति है—

। । । । । । ऽ । ऽ । ऽ ऽ
न सम य परि रक्षणं क्षमं ते
। । । । ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ ऽ
नि कृति परेषु परेषु भूरिधाम्न:।
। । । । । । ऽ । ऽ । ऽ ऽ
अरिपु हि विज यार्थिन: क्षितीशा:
। । । । ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ ऽ
विदध ति सोप धि सन्धि दूषणानि

विशेष कथन—राजनीति में प्रतिज्ञा या सन्धियों के पालन करने का अधिक महत्व नहीं होता। वे अवसर के अनुसार की जाती है और अवसर पर तोड़ दी जाती है। विजय के अभिलाषी राजा शत्रु को कमजोर पाकर उसी पर सन्धि भंग करने का आरोप लगाकर आक्रमण कर देते हैं।

घण्टापथ टीका—नेति। परेषु शत्रुपु। निकृति: परं प्रधानं येषु तेषु। तथोक्तेष्वपकारतत्परेषु सत्सु भूरिधाम्नो: महौजस: प्रतीकारमक्षमस्य ते तव समयस्त्रयोदशसंवत्सरान् वने वत्स्यामीत्येवरूपा संवित्। 'समया: शपथाचारकालसिद्धान्तसंविद: इत्यमर:। तस्य परिरक्षणं प्रतीक्षणं न क्षमं न युक्तम्। 'युक्ते क्षमं शक्ते हिते त्रिषु' इत्यमर:। 'हि यस्माद् विजयार्थिनो विजिगीषव: क्षितीशा अरिपु विषये सोपधि सकपटं यथा तथा। कपटोऽस्त्री व्याजदम्भोपधयश्छद्मकैतवे। इत्यमर:। सन्धिदूषणानि विदधति केनचिद् व्याजेन तोषमापाद्य संधिं दूषयन्ति। विघटयन्ति इत्यर्थ:। शक्तस्य हि विजिगीषो: सर्वथा कार्यसाधनं प्रधानमन्यत्समयपरिरक्षणादिकमशक्तस्येति भाव:। अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कार:।

प्रकरण—द्रौपदी युधिष्ठिर से आग्रह कर रही है कि आप क्षमा और

शान्ति का परित्याग करके क्षत्रिय राजाओं के धर्म को स्वीकार करके शत्रु से प्रतिशोध लेने के लिये उद्यत हो जाइये। राजनीति में प्रतिज्ञा और सन्धियों की रक्षा करना अवसर के अनुसार ही होता है। इस प्रकार का आचरण करने पर आपको अवश्य ही लक्ष्मी प्राप्ति होगी—

विधिसमयनियोगाद्दीप्तिसंहारजिह्मं
शिथिलवसुमगाधे मग्नमापत्पयोधौ
रिपुतिमिरमुदस्योदीयमानं दिनादौ
दिनकृतमिव लक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु भूयः ॥४६॥

अन्वयः—विधिसमयनियोगात् अगाधे आपत्योधौ मग्नम् दीप्तिसंहारजिह्मम् शिथिलवसुम् रिपुतिमिरम् उदस्य उदीयमानम् त्वाम् दिनादौ दिनकृतम् इव भूयः लक्ष्मीः समभ्येतु ॥४६॥

संस्कृत-व्याख्या—'विधिसमयनियोगात्' विधेः भागस्य समयस्य कालस्य च नियोगात् शासनात्, विधेः समयस्य च गतिः अनतिक्रमणीया भवति तस्मात् कारणात् 'अगाधे' अतलस्पर्शे अतः तरितुमशक्ये 'आपत्पयोधौ' आपद् विपत्तिः एव पयोधिः समुद्रः तस्मिन् 'मग्नं' निमज्जन्तं 'दीप्तिसंहारजिह्मं' दीप्त्या तेजसः संहारेण विनाशेन जिह्मं खिन्नं 'शिथिलवसुं' शिथिलानि क्षीणानि वसूनि धनानि यस्य तादृशं 'रिपुतिमिरं' रिपुः शत्रुः एव तिमिरं तमः अन्धकारः तम् 'उदस्य' विनाश्य 'उदीयमानम्' उन्नति प्राप्नुवन्तं त्वां युधिष्ठिरं 'दिनादौ' दिनस्य दिवसस्य आदौ प्रारम्भे प्रातःकाले 'दिनकृतम् इव' सूर्यम् इव 'भूयः' पुनः लक्ष्मीः राज्यश्रीः 'समभ्येतु' समागच्छतु।

यथा विधेः समयस्य नियोगात् सूर्यः अगाधे पश्चिमसागरे निमज्जति आतपस्य विनाशेन मन्दः भवति तस्य रश्मयः शिथिलाः भवन्ति, परन्तु यदा तिमिरं निरस्य प्रातःकाले उदयन् स शोभासम्पन्नो भवति, तथैव विधेः समयस्य च नियोगात् आपत्सु मग्नोऽपि, प्रतापस्य विनाशेन दुःखितोऽपि शिथिलधनोऽपि उत्साहमवलम्ब्य शत्रुं विनाश्य भवान् पुनः राज्यश्रीं प्राप्स्यति इति भावः।

शब्दार्थ— **विधिसमयनियोत्** = भाग्य और समय के प्रभाव से। **दीप्तिसंहार-जिह्मम्** = प्रताप के विनाश से दुःखी। शिथिलवसुमगाधे। **शिथिलवसुम्** = क्षीणधन वाले अथवा मन्द किरणों वाले। **मग्नमापत्ययोधौ**। **मग्नम्** = डूबे हुये।

आपत्पयोधौ=आपत्ति रूपी समुद्र में। रिपुतिमिरमुदस्योदीयमानम्। **रिपुतिमिरम्**=शत्रुरूपीअन्धकार को। **उदस्य**=विनष्ट करके। **उदीयमानम्**=उन्नति को प्राप्त होते हुये अथवा उदय होते हुये। **दिनादौ**=दिन के प्रारम्भ में। **दिनकृतम् इव**=सूर्य के समान। लक्ष्मीस्त्वाम्। **लक्ष्मीः**=राजलक्ष्मी। **त्वाम्**=तुमको। **समभ्येतु**=प्राप्त होवे। **भूयः**=पुनः।

हिन्दी अर्थ—भाग्य और समय के प्रभाव के कारण अगाध आपत्ति के समुद्र में डुबे हुये प्रताप के विनाश से दुःखी होते हुये, क्षीण धन वाले परन्तु अन्धकार रूपी शत्रु को विनष्ट करके उन्नति को प्राप्त करते हुये आपको राज्यलक्ष्मी उसी प्रकार प्राप्त होवे, जिस प्रकार पश्चिम समुद्र में डूबे हुये शातप के विनाश से दुःखी होते हुये, और मन्द किरणों वाले, परन्तु अन्धकार रूप शत्रु को विनष्ट करके उदय होते हुये सूर्य को शोभा प्राप्त होती है ॥४६॥

भाव—भाग्य और समय के नियम अनतिक्रमणीय होते हैं। इसके कारण सूर्य भी पश्चिम समुद्र में डूब जाता है, उसकी धूप का विनाश हो जाता है, उसकी किरणें शिथिल पड़ जाती हैं, परन्तु अन्धकार को नष्ट करके जब वह उदय होता है, तो उसकी अपनी शोभा पुनः प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकार आप यद्यपि आपत्तियों में ग्रस्त हो चुके हैं, राज्य के छिन जाने से दुःखी हैं और आपका धन क्षीण हो चुका है, तथापि जब आप शत्रुओं का विनाश करके उन्नति को प्राप्त करेंगे, तो राज्यलक्ष्मी पुनः आपका वरण करेंगी।

वाच्यपरिवर्तन—विधिसमयनियोगाद् अगाधे आपत्पयोधौ मग्नः दीप्तिसंहारजिह्मः शिथिलवसुः रिपुतिमिरम् उदस्य उदीयमानः त्वं दिनादौ दिनकृतमिव इव भूयः लक्ष्म्या समभ्येष्यते।

टिप्पणियाँ—विधिसमयनियोगात्—विधिश्च समयश्च विधिसमयौ। द्वन्द्व समास विधिसमययोः नियोगात् विधिसमयनियोगात्। षष्ठी तत्पुरुष समास। वि + √धा + कि = विधि। सम + √इ + अच् = समय। नि + √युज् + घञ् = नियोग। **दीप्तिसंहारजिह्मम्**—दीप्त्याः संहारः दीप्तिसंहारः। षष्ठी तत्पुरुष समास। दीप्तिसंहारेण जिह्मम् दीप्तिसंहारजिह्मम्। तृतीया तत्पुरुष समास। √दीप् + क्तिन् = दीप्ति। सम् + √हृ = घञ् = संहार। **शिथिलवसुम्**—शिथिलानि वसूनि यस्य तम्। बहुव्रीहि समास। **अगाधे**—गाध्यते पारः क्रियते अर्थ में √गाध + घञ = गाध। न + गाधः अगाधः। नञ् तत्पुरुष समास।

सप्तमी विभक्ति का एकवचन = अगाधे। **मग्नम्**—√मस्ज् + क्त। **आपत्पयोधौ**—आपद् एवं पयोधिः तस्मिन्। उपमित समास। अथवा—आपदः पयोधिः। षष्ठी तत्पुरुष समास। आ + √पद् + क्विप् = आपत्। पयांसि धीयते अस्मिन् अर्थ में पयस् + √धा + कि = पयोधि। **रिपुतिमिरम्**—रिपुः एव तिमिरं तम्। उपमित कर्मधारय समास। अनिष्टं रपति अर्थ में √रप् + कु (अ को इ होकर) = रिपु। √तिम् + किरच् = तिमिर। **उदस्य**—उत + √अस् + क्त्वा (ल्यप्)। **उदीयमानम्**—उत् + √इङ् + शानच् = उदीयमान। द्वितीया विभक्ति का एकवचन = उदीयमानम्। **दिनादौ** - दिनस्य आदौ। षष्ठी तत्पुरुष समास। **दिनकृतम्**—दिनं करोति अर्थ में दिन + √कृ + क्विप् दिनकृत्। द्वितीया विभक्ति का एकवचन = दिनकृतम्। **लक्ष्मीः**—लक्षयति पश्यति उद्योगिनम् अर्थ में √लक्ष ई (मुट् का आगम) = लक्ष्मी। समभ्येतु सम् + √अधि इ धातु लोट् लकार प्रथम पुरुष का एकवचन। भूयः—अयम् अनयोः अतिशयेन बहुः अर्थ में बहु ईयसुन् (बहु को भू आदेश और इयसुन् के ई का लोप होकर) भू + यस् = भूयः।

अलङ्कार उपमा।

इस पद्य में युधिष्ठिर उपमेय, दिनकर उपमान, लक्ष्मी का प्राप्त हो जाना, दीप्तिसंहारजिह्म आदि साधारण धर्म और इव उपमा वाचक शब्द हैं। उपमा के चारों अङ्गों के होने से यह पूर्णोपमा है।

छन्द—मालिनी। मालिनी छन्द का लक्षण—

ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः

जिस पद्य के चारों चरणों में प्रत्येक में नगण (।।।), नगण (।।।), नगण (SSS), यगण (।SS) और यगण (।SS) हों और इस प्रकार पांच गण तथा पन्द्रह वर्ण हों, आठ और सात वर्णों पर विराम होता हो, वह मालिनी छन्द होता है।

।।।	।।।	SSS	।SS	।SS
विधिस	मयनि	योगाद्दी	प्तिसंहा	राजह्मम्
।।।	।।।	SS S	।SS	।SS
शिथिल	वसुम	गाधे मग्न	मापत्	पयोधौ।

। । ।	। । ।	ऽ ऽ	ऽ	। ऽ ऽ	। ऽ ऽ
रिपुति	मिरमु	दस्यो,	दी	यमानं	दिनादौ
। । ।	। । ।	ऽ ऽ	ऽ	। ऽ ऽ	। ऽ ऽ
दिनकृ	तमिव	लक्ष्मी,	स्त्वां	समभ्ये	तुभूयः ॥

विशेष कथन—प्रथम सर्ग के इस अन्तिम श्लोक को कवि ने 'लक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु' इस मंगल के साथ पूरा किया है। यद्यपि यह ग्रन्थ का अन्त नहीं है, तथापि सर्ग के अन्त को भी मंगलाचरण के साथ पूरा करना अच्छा होता है। महाभाष्यकार पतञ्जलि का कथन है—

मंगलादीनि मंगलमध्यानि मंगलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुष-काण्यायुष्मत्पुरुषकाणि च भवन्त्यध्येतारश्च प्रवक्तारो भवन्ति।

अर्थात् शास्त्रों के आदि में, मध्य में और अन्त में मंगल का विधान करने से वे प्रसिद्ध होते हैं, मनुष्य को वीर और दीर्घायु बनाते हैं तथा उन शास्त्रों के पाठक प्रशस्त बोलने वाले होते हैं।

इसी सर्ग में कवि ने प्रारम्भ से वंशस्थ छन्द का प्रयोग किया है। परन्तु सर्ग के अन्त में कवि ने छन्द को बदल दिया है। काव्यशास्त्र के नियमों के अनुसार सर्ग के अन्त में छन्द बदल देना लोकानुरञ्जक होता है।

घण्टापथ टीका—विधिति। विधिर्दैवम्। 'विधिर्विधाने दैवे च' इत्यमरः। समयः कालस्तयोर्नियोगान्नियमनाद्धेतोः। तयोर्दुरतिक्रमत्वादिति भावः। अगाधे दुस्तरे। आपत्पयोधिरिवेत्युपमितसमासः। दिनकृतमिवेति। वक्ष्यमाणानुसारात्त-स्मिन्नापत्पयोधौ मग्नम्। सूर्योऽपि सायं सागरे मज्जति परेद्युरुन्मज्जती' त्यागमः। दीप्तिः। प्रताप आतपश्च तस्या संसारेण जिह्मप्रसन्नम् शिथिलवसुं शिथिलधनम अन्यत्र शिथिलरश्मिम्। 'वसुर्देवेऽग्नौ रश्मौ च वसु तोये धने मणौ' इति वैजयन्ती। 'शिथिलबलम्' इति पाठे तूभयत्रापि शिथिलशक्तिकमित्यर्थः। रिपुस्तिमिरमिवेति रिपुतिमिरमुदस्य निरस्योदीकयानमुद्यन्तम्। 'इङ् गतौ' इति धातोर्दिवादिकात्कर्त्तरि शानच्। त्वां दिनादौ दिनकृतमिव लक्ष्मी भूयः समभ्येतु भजतु। 'आशिषि लिङ् लोटौ' इति लोट्। चमत्कारितया मंगलाचरणरूपतया च सर्गान्तश्लोकेषु लक्ष्मीशब्दप्रयोगः। तथाऽऽह भगवान् भाष्यकारः—'मंगला-दीनि मंगलमध्यानि मंगलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषकाण्यायुष्मत्पुरुष-

भवन्त्यध्येतारश्च प्रवक्तारो भवन्ति इति। पूर्वोपमेयम्। मालिनी वृत्तम्। सर्गान्तकाणि च त्वाद् वृत्तभेदः। यथाऽऽह दण्डी—सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्राव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः। सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरञ्जकम् इति ॥५६॥

इति भारविकृतौ महाकाव्ये किरातार्जुनीये प्रथमः सर्गः ॥

इस प्रकार भारवि द्वारा रचित इस किरातार्जुनीय नामक महाकाव्य का प्रथम सर्ग पूरा हुआ।

अथ कविः काव्यवर्णनीयाख्यानपूर्वकं सर्गपरिसमाप्तिं कथयति—इतीत्यादि। इति शब्दः परिसमाप्तौ। भारविकृताविति कविनामकथनम्। महाकाव्य इति महच्छब्देन लक्षणसम्पत्तिः सूचिता। किरातार्जुनीय इति काव्यवर्णनीययोः कथनम्। प्रथमः सर्गः समाप्त इति शेषः। एवमुत्तरत्रापि द्रष्टव्यम्। किरातार्जुनावधिकृत्य कृतो ग्रन्थः किरातार्जुनीयम्। शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः' इति द्वन्द्वाच्छः प्रत्ययः। राघवपाण्डवीयमितिवत्। तथा ह्यर्जुन एवात्र नायकः। किरातस्तु तदुत्कर्षाय प्रतिभटतया वर्णितः यथाऽऽह दण्डी—वंशवीर्यप्रतापादि वर्णयित्वा रिपोरपि। तज्जयान्नायकोत्कर्षकथनं च धिनोति नः ॥इति॥ अथायं संग्रहः—नेता मध्यमपाण्डवो भगवतो नारायणस्यांशजस्तस्योत्कर्षकृते त्ववर्ण्यततरां दिव्यः किरातः पुनः शृङ्गारादिरसोऽङ्गमत्र विजयी वीरः प्रधानो रसः शैलाद्यानि च वर्णितानि बहुशो दिव्यास्त्रलाभः फलम् ॥ इति ॥

॥ इति ॥

श्लोकानुक्रमणिका

———